मराठा-मारवाड़ सम्बन्ध

(१७२४-१८४३ ई०)

जी. आर. परिहार



राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित उपयुक्त पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामत भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग की स्थापना की थी और इसी क्रम में 1969 में पाँच हिन्दी ग्रंथ अकादमियों की स्थापना भी पाँच हिन्दी-भाषी प्रान्तों में की गयी। यद्यपि पाठ्य-पुस्तक-निर्माण का अभियान शब्दावली आयोग के द्वारा ही आरंभ किया गया था किन्तु वह प्रयत्न वैसा सफल नहीं हो सका जैसा अपेक्षित था। अनुभव किया गया कि इस असफलता का कारण इस अभियान में व्यापक सहयोग का अभाव है। इस प्रकार पाँचों हिन्दी-भाषी प्रदेशों में अकादमियों की स्थापना का प्रयोजन विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य पुस्तक-निर्माण के इस अभियान में अधिकाधिक व्यापक सहयोग प्राप्त करना ही था।

गत छ वर्षों में अकादमियों ने शास्त्र और विज्ञान के विभिन्न विषयों में लगभग 850 पुस्तकों का प्रकाशन कर दिया है और भविष्य में भी प्राय इसी गति से पुस्तक-निर्माण होगा। किन्तु इस क्षेत्र में पुस्तक-निर्माण की आवश्यकताओं का कोई अन्त नहीं है, इसीलिए अकादमियों का कार्य भी पूर्णता से असीमत दूर है।

हमारी अकादमी की पुस्तक-निर्माण-प्रक्रिया ऐसी है कि उसके द्वारा तैयार करवायी गयी पुस्तकों का स्तर बहुत उत्कृष्ट होना चाहिए और वे निर्दोष होनी चाहिए। अकादमी विषय-विशेषज्ञ समितियों की अनुशंसा पर लेखकों को आमंत्रित करती है, लेखन के पश्चात् पुस्तक किसी विद्वान को परामर्श के लिए भिजवायी जाती है और उस परामर्श के अनुसार लेखक पुस्तक का संशोधन करता है। तदुपरांत इसका भाषा-परिमार्जन कराया जाता है। इस पर भी यदि दोष रहते हैं तो यही कहा जा सकता है कि 'यत्न कृतेऽपि यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोष ?

प्रस्तुत पुस्तक हमारे आमंत्रण पर डॉ जी आर. परिहार, विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग डूंगर महाविद्यालय बीकानेर ने लिखी जिसके लिए अकादमी इनके प्रति बहुत आभारी है। डॉ गोपीनाथ शर्मा ने लेखक को विषय विवेचन में और डॉ मदनगोपाल शर्मा, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने भाषा परिमार्जन में सहयोग दिया है। हम इनके प्रति भी अनुगृहीत हैं।

मोहन छांगाणी,
शिक्षा मन्त्री, राजस्थान सरकार एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

यशदेव शल्य
का वा निदेशक

प्राक्कथन

यह पुस्तक मेरे शोध ग्रन्थ 'मारवाड एण्ड दी मराठाज' पर आधारित है। मैंने हिन्दी म इसका रूपान्तर करते समय शोध-ग्रन्थ के मूल आधारो मे कोई परिवर्तन नहीं किया है। अत यह ग्रन्थ समकालीन फारसी, सस्कृत, राजस्थानी मराठी और अंग्रेजी प्रलेखो पर आधारित मारवाड के राठौड शासको का मराठा शक्ति से सबधो की विवेचनात्मक व्याख्या करता है। मारवाड के इतिहास पर कई ग्रन्थ रचे गए हैं। परन्तु ओझा, रेऊ, आसोपा और गहलोत की कृतिएँ मराठो के सम्बन्ध मे मारवाड के इतिहास का सही मूल्याकन नही कर पायी। अट्ठारहवी शताब्दी एव उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक चरण मे मुगल साम्राज्य के अवनति के युग मे, मराठो और राठौड शक्तियो ने प्रसार की नीतियाँ अपनाई। दोनो के आपसी सघर्ष के परिणाम-स्वरूप वे परिस्थितियाँ बन गई जिससे अंग्रेजो ने दोनो पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। प्रथम बार, उस युग की राजनैतिक शक्तियो के आपसी सघर्ष का, समकालीन तथ्यो की पृष्ठभूमि म, विवेचनात्मक अध्ययन कर इस ग्रन्थ की रचना की गई है।

ग्रन्थ मे नौ अध्याय हैं। नवें अध्याय को सामान्यत 'पुस्तक अनुक्रमणिका' के रूप मे ही लिया जाता रहा है परन्तु मैंने प्रलेखो, ग्रन्थो, तवारीखो आदि की व्याख्या एव विवेचना करना उचित मान कर एक अध्याय के रूप मे इसको स्थान दिया है। सात परिशिष्ट पृथक है।

परिशिष्ट 'द' को मूल रूप म अंग्रेजी मे रखना मैंने उचित समझा। इसका हिन्दी रूपान्तर इसकी महत्ता को कम कर देता। ग्रन्थ म अंग्रेजी पुस्तको लेखों आदि क नाम देवनागरी लिपि मे परिणत किये गये हैं। उनके हिन्दी रूपान्तर नही किये गये क्योकि ऐसा करने से यह प्रतीत होता है कि पुस्तकें हिन्दी मे हैं और सदर्भ पृष्ठ भी हिन्दी पुस्तको पर आधारित है। प्रलेखों पर अंकित तिथियाँ विक्रम सम्वत् हिजरी सम्वत् एव शक सम्वत् की पायी गई। अन्तर्राष्ट्रीय कलेन्डर की तिथियो म परिवर्तन करते समय यह ध्यान मे रखा गया है कि मारवाड मे नववर्ष 'श्रावण' माह से प्रारम्भ होता था जब कि अन्य स्थानों म 'चैत्र' माह से।

विषय-प्रवेश के रूप में 'मारवाड म राठौड-शक्ति का उत्थान' ग्रन्थ के मूल विषय की पृष्ठभूमि मे इसलिए सम्बन्धित किया गया है कि जिससे राठौडो की राजनैतिक उपलब्धियो को जाना जा सके और जब वे मराठो के सम्पर्क म आए तब उनकी मारवाड और भारत मे राजनैतिक स्थिति का सही मूल्याकन किया जा सके। परिशिष्ट 'ग' मे 'मारवाड का शासन प्रबन्ध' राठौड उपलब्धि के रूप में ही दिया गया है।

मेरे शोध-ग्रन्थ मे, जो कि इस ग्रन्थ का प्रेरणा-विन्दु है, मुझे डॉ० गोपीनाथ शर्मा, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, डॉ० दशरथ शर्मा, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर, एव स्व श्री नाथुराम खडगावत, निदेशक, राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर से न सिर्फ मूल्यवान निर्देशन प्राप्त हुए बल्कि उनकी सलाह, व्याख्या एव विवेचना से मुझे कार्य करने की प्रेरणा भी प्राप्त हुई। अत उनका मैं बडा आभारी हूँ। मेरे शोध-परीक्षक प्रो० नुरुल हसन, शिक्षा मन्त्री, भारत सरकार, दिल्ली (भू पू. अध्यक्ष, इतिहास विभाग, मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ) ने जो बहुमूल्य सुझाव मुझे दिए, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभार प्रदर्शन करता हूँ।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए निदेशक, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर ने जो धैर्य रखा, उसके लिए मैं उनका बडा कृतज्ञ रहूँगा। अकादमी के निदेशक चाहते थे कि यह ग्रन्थ जल्दी से जल्दी प्रकाशित हो जाय पर देरी का कारण मैं ही हूँ। हिन्दी मे शोध-ग्रन्थो को उपलब्ध कराने का उनका कार्य सराहनीय है।

बीकानेर (राज०)
मार्च, 1977

—जी. आर. परिहार

विषय-सूची

विषय-प्रवेश—मारवाड़ मे राठौड़-शक्ति का उत्थान

———

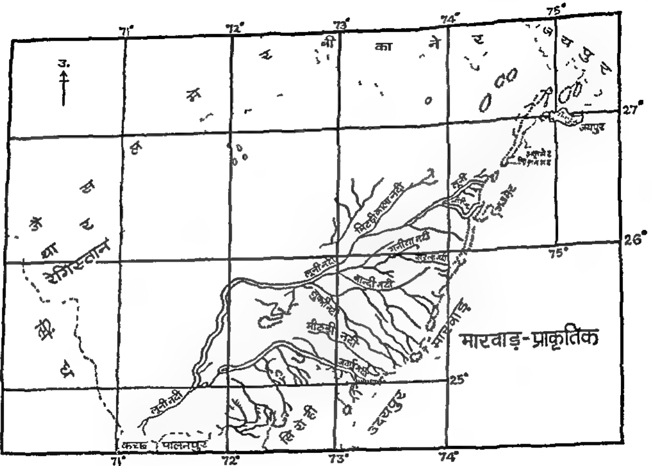
———

मानचित्र-सूची

संक्षेपण-संकेत

अ.ब. : अर्जीबही
अख़बारात : अख़बारात-दरबार-ए-मुल्ला
आर.ए.ओ. : राजपूताना एजेन्सी ऑफिस
आई.एच.सी. : इण्डियन हिस्ट्री काँग्रेस प्रोसीडिंग्ज
आई.एच.आर.सी. : इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्ड कमीशन प्रोसिडिंग्ज
ओर्मी : हिस्टोरिकल फ्रेगमेन्टस ऑफ दें मुग़ल एम्पॉयर
एच.एस.आइ.एस. : होल्कर शाहीच्या इतिहांची साधणें
एच. पी. : सिंधिया संबधी ऐतिहासिक पत्रें
एफ. एस. : फोरेन सिक्रेट प्रोसिडिंग्ज
एफ.पी. : फोरेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्ज
एफ.आर. : फोरेन रिकार्ड
एम.एम. : मार्टिन मोगरी द्वारा संकलित वेलेजली के पत्र
एस.एस.आई.एस. : शिंदे शाही इतिहासाची साधणें
एस.सी.सी.आर. : चन्द्रचूड़ रिकार्ड से संकलन
ऐति.पत्रें : ऐतिहासिक पत्रें आदि वगैर लेख
कपड़ : कपड द्वार विभाग के अभिलेख, जयपुर
के.के.दत्ता : दें सर्वे ऑफ सोशल लाईफ एण्ड इकोनोमिक कन्डीशन्स ऑफ इण्डिया इन 18 सेन्चुरी ।
जय. : जयपुर
जोध. : जोधपुर
जोध.येथील : जोधपुर येथील राज करणें
जी.एम.जी.आर. : ग्लोरीज ऑफ मारवाड़ एण्ड ग्लोरियस राठौड़
जे.आई.एच. : जॉरनल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री
जे.बी.आर.एस. : जॉरनल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी
पे.द.का : सेलेक्शन्स फ्रॉम पेशवा दफ्तर
पी.आर.सी. : पूना रेजीडेन्सी कॉरसपोन्डेन्स
पी.फो. : पोर्टफोलियो फाईल, दस्तरी रिकार्ड, जोधपुर
बर्नियर : ट्रेवल्स इन मोग़ुल इण्डिया
बाम्बे गजेटियर : गजेटियर ऑफ दें बाम्बे प्रेसीडेन्सी

मनुसी	• स्टोरियों दे मेगोर
महेश दरबार	: महेश्वर दरबाराचीन बादामी पत्रें
दिल्ली येथील	दिल्ली येथील मराठांयाची राजकरणें
दिलकुश	नश्र ए दिन कुश
टॉड	एनल्स एण्ड एन्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान
बोलिया	बोल्दियों का कोठार विभाग के पत्र–जोधपुर
रजवाडे	मराठाच्या इतिहासाचीन साधनें
राज गजेटियर	राजपूताना गजेटियर
वि स	विक्रम–सम्वत्
विल्सन	मिल्स हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया
वीलर जे टालबॉयज	समेरी ऑफ दें एफेयस आफ दें मराठा स्टेट
सियर	सियर मुताखरीन
स भ लाइब्रेरी	सरस्वती भंडार लाइब्रेरी, उदयपुर
सभासद	शिव छत्रपति चरित्रेन भारवर
सी पी सी	कलेन्डर फॉर पशियन कॉरस्पोन्डेंस
थाटन	गजेटियर ऑफ द टेरीटरी अण्डर दें गवर्नमेंट ऑफ ई आई कम्पनी एण्ड नेटिव स्टेट्स इन दें का टीने ट ऑफ इण्डिया बाई थाटन एडवर्ड
हेमिल्टन	ज्योग्राफीकल, स्टेटीकल एण्ड हिस्टोरीकल डिस्क्रीप्शन आफ हिन्दुस्तान बाई हेमिल्टन वाल्टर



चित्र 1. मारवाड़ प्राकृतिक

मारवाड़ में राठौड़–शक्ति का उत्थान

तेरहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध–भाग में, मारवाड़, (वह प्रादेशिक इकाई जिस पर 30 मार्च 1949 तक महाराजा हनुतसिंह का शासन था) के अधिकांश भाग पर जालोर के चौहान राजपूतों का शासन था। प्रतिहार नगर माण्डव्यपुर (मण्डोर) भी उनके अधिकार में था।[1] चौहानों के पतन के बाद मारवाड़ में राठौड़ शक्ति का उदय हुआ और उसे मण्डोर पर अधिकार करने में करीब एक शताब्दी से कम समय लगा।[2]

चौहान, प्रतिहार साम्राज्यवादियों के सामन्त शासक थे। उनकी राजधानी शाकम्भरी (सांभर) थी। वे 973 ई० तक अपना स्वतन्त्र शासन स्थापित करने में सफल हो गये। उन्होंने मारवाड़ में अपना प्रसार किया। शीघ्र ही उन्हें दक्षिण-पूर्व में चालुक्यों से संघर्ष में जूझना पड़ा। नाडोल, पाली और जालोर पर अधिकार करने के लिए चौहान शासक व्याघ्रराज (4) (1151–1163 ई०) ने गुजरात के चालुक्य शासक कुमारपाल से युद्ध किया। पृथ्वीराज (3) (1180-1194) के समय मण्डोर नागोर प्रदेश चौहान प्रान्त था। पहले नाडोल के चौहानों ने, बाद में, जालोर के चौहानों ने कालान्तर में मण्डोर को अपने प्रभाव–क्षेत्र में मिला लिया।[3]

चौहान कितीपाल ने 1181 ई० में जालोर में चौहान राज्य की स्थापना की। उसके पौत्र उदयसिंह (1205-1257) के समय जालोर राज्य में नाडोल, जालोर, मण्डोर, बाड़मेर, सुराचन्द, रटाहृदा, खेड रामसरिया, श्रीमाल, रतनपुर, सत्यपुर, आदि के प्रदेश थे। वह कुतुबुद्दीन ऐबक, आरामशाह और इल्तुतमिश का समकालीन था। उसकी बढ़ती हुई शक्ति अजमेर के मुसलिम क्षेत्रों को खतरा पैदा करने लगी। इल्तुतमिश ने उदयसिंह पर आक्रमण किया। इस युद्ध में चौहान शासक हार गया। उसने मन्डोर का प्रदेश, सौ ऊँट और दो सौ घोड़े सुल्तान को दिए। 1221 ई एक बार पुन. इल्तुतमिश पश्चिमी-राजस्थान की ओर चला और गुजरात की ओर बढ़ा। उदयसिंह और गुजरात के बाघेला शासक ने उसे लौटने को मजबूर किया। इल्तुतमिश के लौटते ही चौहान शासक ने पुन मन्डोर पर अधिकार कर लिया। यह अधिकार कुछ समय तक ही रहा क्योंकि 1226 ई में सुल्तान ने इस नगर को अपने अधिकार में कर लिया था।[4]

1244 ई० में सुल्तान मसूद ने काशलीखाँ को मन्डोर, नागौर ग्रौर अजमेर का प्रान्तपति नियुक्त किया ।[5] चौहानो के 1319 वि स (1262 ई०) के एक अभिलेख के अनुसार मन्डोर चौहान राज्य के अन्तर्गत था ।[6] 1291 ई० मे खिलजी सुल्तान ने मन्डोर पर अधिकार कर साचोर पर आक्रमण कर दिया ।[7] तत्कालीन जालोर शासक सावन्तसिंह उसका विरोध न कर सका । 1296 ई० मे उसके पुत्र कान्हडदेव ने राज्य का कार्यभार अपने पिता से ले लिया ।[8] कान्हड एक योग्य सेनापति, प्रशासक ग्रौर राजनीतिज्ञ सिद्ध हुआ । 1301 ई० मे उसने खिलजियो से मन्डोर छीन लिया ग्रौर इन्दा परिहार को उसकी सुरक्षा का भार सौपा ।[9] 1308 में अल्लाउद्दीन खिलजी का आक्रमण हुआ । मन्डोर, साचौर ग्रौर सिवाना पर उसका अधिकार हो गया । 1311 ई० मे जालोर पर खिलजी का आक्रमण हुआ । कान्हड हार गया । चौहान साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया ।[10]

राठौडो का आदि पुरुष सीहा माना जाता है । उसका मूल निवास गगा-जमना के दो-आब प्रदेश मे बदायु का क्षेत्र था । इल्तुतमिश का उस क्षेत्र पर अधिकार हो जाने के बाद सीहा को वहा से भागना पडा । उसने 1226-1236 ई० के बीच राजस्थान की ग्रोर प्रस्थान किया ।[11] उसने ग्रौर उसके पुत्र आसथान ने भीनमाल ग्रौर पाली के महाजनों के यहां नौकरी करली ।[12] उस समय ये दोनो नगर जालोर के चौहान राज्य के अधीन थे । मारवाड के इतिहासकार नेनसी, टॉड, ग्रोझा, रेऊ, आसोपा ग्रौर गहलोत इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि आसथान ने खेड, जो कि चौहान साम्राज्य का एक मुख्य नगर था, पर अधिकार कर लिया । समकालीन या अर्द्ध-समकालीन ग्रन्थो या तवारीखो मे इसका उल्लेख नही पाया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि जब खिलजी आक्रमण हुए (1308-1311) तब तक राठौड एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति नहीं बन सके । यदि ऐसा होता तो खिलजी खेड के राठौडो को स्वतन्त्र शक्ति नही बने रहने देते ग्रौर समकालीन तवारीखों में इसका उल्लेख अवश्य किया जाता । मारवाड के इतिहासकार इस बात का उल्लेख करते हैं कि 1291 ई० मे आसथान जल्लालुद्दीन के आक्रमण का सामना करता हुआ पाली मे मारा गया ।[13]

1314 ई० मे कान्हडदेव की मृत्यु हुई । उसकी मृत्यु के बाद राठौडों को उन्नति करने की अनुकूल परिस्थितिया प्राप्त हुई । खिलजी शासकों का जालोर पर अधिकार हो चुका था, नागोर पर भी मुस्लिम शासन था ग्रौर उन्होंने मन्डोर भी अपने अधीन कर रखा था ।[14] 1316 ई० मे अल्लाउद्दीन की मृत्यु हो गयी । उसका लाभ उठाकर इन्दा परिहार वेरपाल ने मन्डोर पर आक्रमण कर खिलजियों को वहा से निकाल दिया । मन्डोर पर परिहार राज्य पुन. स्थापित हो गया ।[15] दिल्ली राजनीति की असन्तुलित परिस्थितियों (1316-1320), तुगलक

राज्य क्रान्ति (1321) और गियसुद्दीन तुगलक की प्रारम्भिक कठिनाईयों के कारण मारवाड़ मुस्लिम आक्रमण से मुक्त रहा। खेड़ मे राठौड़ रायपाल और उसके पुत्र कान्हपाल (मृत्यु 1328 ई०) मे अपनी शक्ति मजबूत करली।[16] चौदहवीं शताब्दी के मध्य में खेड़ ने राठौड़ों को मुल्तान के मुसलमानी शासकों से लगातार युद्ध करना पड़ा फलस्वरूप उनके कई शासक, टोडा (मृत्यु 1357) आदि युद्ध करते हुए मारे गए।[17]

1374 ई० के बाद राठौड़-शक्ति के उत्थान का दूसरा चरण प्रारम्भ होता है। खेड़ के शासक कान्हड़ की मृत्यु (करीब 1374 ई०) के पश्चात् उसके भाई त्रिभुवनसी और भतीजे मल्लिनाथ (दूसरा भाई सलखा का पुत्र) के बीच उत्तराधिकारी संघर्ष प्रारम्भ हुआ।[18] मल्लीनाथ ने महुवे मे एक पृथक राठौड़ शासन की स्थापना की। बाद मे उसने खेड़ पर अधिकार कर लिया। जालोर के मुस्लिम शासक ने उसे राठौड़ों का नेता स्वीकार कर रावल' की उपाधि से सम्मानित किया। मल्लीनाथ ने लूणी नदी तक अपने राज्य का प्रसार किया। अपने राज्य का नाम उसने 'मालानी' रखा।[19] उसकी मृत्यु (1393 ई०) के बाद दूसरा उत्तराधिकारी युद्ध शुरू हुआ। उसके पुत्र जगमाल को गद्दी से उतार कर उसके छोटे भाई [illegible] पुत्र चूंडा ने राज्य पर अधिकार कर लिया।

1383 ई० में मल्लीनाथ का छोटा भाई वीरम जोहिया राजपूतों के विरुद्ध युद्ध करता हुआ मारा गया। उस समय उसका पुत्र चूंडा अल्पावस्था मे था।[20] अत उसका लालन पालन मल्लीनाथ ने किया। 1393 ई० मे चूंडा ने इन्दाके परिहार, जागलू के सांखला और जोहिया राजपूतों की सहायता से महुवे पर अधिकार कर लिया।[21] वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी था। अब उसने मण्डोर लेने की योजना बनाई। चौदहवीं शताब्दी के मध्य मे तुगलकों ने परिहारों से मण्डोर छीन लिया था। 1388 में सुलतान फिरोज की मृत्यु के बाद दिल्ली पुन राजनैतिक अस्थायित्व तत्वों का केन्द्र बन गई। सुलतान मोहम्मद शाह तुगलक अत्यन्त कमजोर था। अत मन्डोर के मुस्लिम शासक को उसके सहायता की आशा नहीं रही। उसने चूंडा की बढ़ती हुई शक्ति से सुरक्षित होने के लिये गुजरात के सुल्तान से सहायता की प्रार्थना की।[22] चूंडा ने परिहारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उनसे सैनिक-समझौता कर लिया। राठौड़-परिहार सेना ने 1394 ई० मे मन्डोर पर अधिकार कर लिया। प्रारम्भ में द्वैध शासन स्थापित किया गया परन्तु यह व्यवस्था अधिक समय तक नहीं रह सकी। राठौड़ व परिहारों मे शक्ति के लिए संघर्ष छिड़ गया। चूंडा सफल रहा। उसने मन्डोर को अपनी राजधानी बना लिया। उसने 'राव' की पदवी धारण की।[23]

गुजरात के शासक मुज्जफरखाँ ने पुन मण्डोर पर इस्लामी राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। उसने 1396 ई० मे मन्डोर पर आक्रमण कर दिया। गुजराती घेरा एक वर्ष छ माह तक पडा रहा परन्तु राठोडो ने आत्म-समर्पण नहीं किया। 1398 के प्रारम्भ में तैमूर के आक्रमण की सम्भावनाओं ने और उसके पौत्र पीर मोहम्मद का मुलतान पर अधिकार ने राठौड और गुजरातियो को सन्धि करने को मजबूर किया। मार्च 1398 की सन्धि के अनुसार मुज्जफर खाँ ने मण्डोर पर राठोडो के अधिकार को मान्यता दे दी। चूडा ने उसे वार्षिक-कर, जो मुस्लिम शासक, तुगलक शासकों को देते थे, देने का वचन दिया। तैमूर आक्रमण के पश्चात् चूडा ने यह कर देना बन्द कर दिया।[24]

चूडा ने 1399 मे नागौर से जलालखाँ खोखर को निकालकर वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया।[25] परन्तु 1408 मे मुज्जफर शाह ने नागौर पुन ले लिया और शम्स खाँ को वहा का गवर्नर नियुक्त किया।[26] इसके बाद दो शताब्दी तक राठोडो और गुजराती शासको के बीच नागौर के लिए सघर्ष होता रहा [27]

चून्डा ने नाडोल पर भी अधिकार कर लिया।[28] अब उसके राज्य की सीमा चित्तौड के सिसोदिया राज्य से जा मिली। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे राठौड राज्य राजस्थान को सिसोदिया शक्ति से टक्कर लेने लगा। पर उसके बीच सघर्ष नहीं हुआ। चूडा की शक्ति शिशु अवस्था मे ही थी जबकि सिसोदिया सात शताब्दियो से मेवाड मे जमे हुए थे। चूडा ने अत्यन्त कूटनीति से काम किया। उसने अपनी पुत्री हसा बाई की शादी चित्तौड के वृद्ध शासक लाखा से कर दी। शादी इस शत पर की गई थी कि हसा की सतान ही मेवाड की भावी शासक होगी। उसका पुत्र रणमल चित्तौड रहने लगा।[29] इससे मेवाड की राजनीति मे हस्तक्षेप का अवसर उसे प्राप्त होने लगा। जीवन के अतिम समय मे उसने फलोदी जैसलमेर की ओर अपना प्रसार करना शुरू किया। 1422 1423 ई० मे वह जागलू के साखला, जैसलमेर और पूगल के भाटी शासकों से युद्ध करता हुआ मारा गया। उस समय उसका बडा पुत्र रणमल चित्तौड मे था। अत राठोडो ने उसके छोटे भाई कान्हा को शासक घोषित कर युद्ध जारी रखा। कान्हा एक वर्ष के भीतर ही मर गया। युद्ध का नेतृत्व सत्ता ने सम्हाला। उसे नया शासक मान लिया गया।

मन्डोर की राजनीति मे रणमल का समर्थक कोई नहीं था अत उसे राज्य गद्दी से वचित रखा गया। पर वह शांत रहने वाला नही था। सिसोदिया की सहायता से 1427 ई० मे उसने मण्डोर पर अधिकार कर लिया। 1428 1438 तक राजस्थान मे वह सर्वशक्तिमान व्यक्ति था। उसकी सहायता से ही 1433 मे कुम्भा चित्तौड की गद्दी प्राप्त कर सका। वह (कुम्भा) अल्पावस्था मे था अत राज्य का 'रिजेन्ट' वह बन गया। 1433-1438 के काल में मेवाड पर कई मुस्लिम आक्रमण

हुए। उसने सफलतापूर्वक उनका सामना कर मेवाड़ की रक्षा की। अपार-शक्ति के कारण वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी हो गया। उसने अपने विरोधियों को बुरी तरह कुचलकर मेवाड़ का राठौड़ीकरण करना शुरू किया। राज्य के ऊँचे पद राठौड़ों को दिए गए। मेवाड़ी लड़कियों को राठौड़ों के साथ शादी करना अनिवार्य कर दिया। इससे वह अप्रिय होने लगा। जब उसने 1439 में मेवाड़ के सामन्त राघवदेव की हत्या करवादी तो उसके विरुद्ध विद्रोह हो गया। स्वयं कुम्भा रणमल विरोधी बन गया। वह किले में मार डाला गया। उसका पुत्र जोधा भाग गया। कुम्भा ने जोधा का पीछा किया और मन्डोर पर अधिकार कर लिया।[30]

बीस वर्ष तक जोधा पश्चिमी-राजस्थान के प्रदेशों में घुम्मकड़ जीवन बिताता रहा। धीरे-धीरे उसने देवड़ा, चौहानों, इन्दापरिहारों, रूण के साखला, पूगल व जांगलू के भाटी राजपूतों से सहयोग प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।[31] उसकी शक्ति बढ़ने लगी। वह मन्डोर पुन. प्राप्त करने का सुअवसर खोजने लगा। 1457-1458 में चित्तौड़ के राणा कुम्भा की स्थिति शोचनीय होने लगी। मालवा के महमूद खिलजी और गुजरात के कुतुबद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। इसी समय कुम्भा के भाई क्षेमा ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

राणा ने मन्डोर, मेड़ता और सोजत-स्थित अपनी सेना को बुला लिया। ऐसी स्थिति में जोधा ने आक्रमण कर कोसना, चौकड़ी और मन्डोर पर अधिकार कर लिया।[32] नेनसी लिखता है कि[33] जोधा ने मेवाड़ पर भी आक्रमण किया और पिछोली प्रदेश को लूटा। कुम्भा सभी मोर्चों पर लड़ नहीं सकता था अतः उसने नेपा साखला के द्वारा जोधा से समझौता कर लिया।[34] इसके अनुसार कुम्भा ने जोधा को मन्डोर का शासक स्वीकार किया तथा गोडवाड़ तक उसके राज्य सीमा को मान्यता दी। इसके बदले में जोधा राणा को मुस्लिम आक्रमण के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। जोधा ने अपनी पुत्री की शादी राणा के पुत्र से कर पारिवारिक सम्बन्ध भी दृढ़ कर लिए।[35] मेवाड़ पर मुसलमानों के आक्रमण काल 1458-1468 के समय सिसोदिया-राठौड़ सहयोग बना रहा।[36]

जोधा के समय में मारवाड़ में राठौड़-शक्ति के उत्थान का तीसरा युग प्रारम्भ होता है। उसने नयी राजधानी बनाई। मन्डोर से पांच मील दूर पहाड़ी पर एक गढ़ निर्मित किया तथा एक नगर बसाया, जो जोधपुर कहलाता है। उसने राठौड़ राज्य को नई सैद्धान्तिक मान्यता प्रदान की कि राज्य पर व्यक्ति का नहीं बल्कि राठौड़ परिवार का अधिकार रहेगा तथा शासक 'समान में प्रथम व्यक्ति' होगा। राज्य प्रसार के लिए उसने अपने भाइयों एवं पुत्रों को सीमान्त पर नियुक्त किया एवं पड़ोसी प्रदेशों पर प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने की नीति को प्रोत्साहित किया। जो क्षेत्र नये जीते जाते थे उन पर विजेताओं के अधिकार की मान्यता दी।

गुजरात के शासक मुज्जफरखां ने पुन. मण्डोर पर इस्लामी राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। उसने 1396 ई० में मन्डोर पर आक्रमण कर दिया। गुजराती घेरा एक वर्ष छ माह तक पड़ा रहा परन्तु राठौड़ों ने आत्म-समर्पण नहीं किया। 1398 के प्रारम्भ में तैमूर के आक्रमण की सम्भावनाओं ने और उसके पौत्र पीर मोहम्मद का मुल्तान पर अधिकार ने राठौड और गुजरातियों को सन्धि करने को मजबूर किया। मार्च 1398 की सन्धि के अनुसार मुज्जफर खाँ न मण्डोर पर राठौड़ों के अधिकार को मान्यता दे दी। चूण्डा ने उसे वार्षिक-कर, जो मुस्लिम शासक, तुगलक शासकों को देते थे, देने का वचन दिया। तैमूर आक्रमण के पश्चात् चूण्डा ने यह कर देना बन्द कर दिया।[24]

चूण्डा ने 1399 मे नागौर से जलालखां खोखर को निकालकर वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया।[25] परन्तु 1408 मे मुज्जफर शाह ने नागौर पुन ले लिया और शम्स खाँ को वहा का गवर्नर नियुक्त किया।[26] इसके बाद दो शताब्दी तक राठौड़ो और गुजराती शासकों के बीच नागौर के लिए संघर्ष होता रहा[27]

चून्डा ने नाडोल पर भी अधिकार कर लिया।[28] अब उसके राज्य की सीमा चित्तौड के सिसोदिया राज्य से जा मिली। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे राठौड़ राज्य राजस्थान की सिसोदिया शक्ति से टक्कर लेने लगा। पर उनके बीच संघर्ष नहीं हुआ। चूण्डा की शक्ति शिशु अवस्था मे ही थी जबकि सिसोदिया सात शताब्दियो से मेवाड मे जमे हुए थे। चूंडा न अत्यन्त कूटनीति से काम किया। उसने अपनी पुत्री हसा बाई की शादी चित्तौड़ में वृद्ध शासक लाखा से कर दी। शादी इस शर्त पर की गई थी कि हसा की संतान ही मेवाड़ की भावी शासक होगी। उसका पुत्र रणमल चित्तौड रहने लगा।[29] इससे मेवाड की राजनीति मे हस्तक्षेप का अवसर उसे प्राप्त होने लगा। जीवन के अन्तिम समय मे उसने फलोदी-जैसलमेर की ओर अपना प्रसार करना शुरू किया। 1422-1423 ई० मे वह जागलू के साखला, जैसलमेर और पूगल के भाटी शासकों से युद्ध करता हुआ मारा गया। उस समय उसका बड़ा पुत्र रणमल चित्तौड मे था। अत राठौड़ो ने उसके छोटे भाई कान्हा को शासक घोषित कर युद्ध जारी रखा। कान्हा एक वर्ष के भीतर ही मर गया। युद्ध का नेतृत्व सता ने सम्हाला। उसे नया शासक मान लिया गया।

मन्डोर की राजनीति मे रणमल का समर्थक कोई नहीं था अत. उसे राज्य गद्दी से वंचित रखा गया। पर वह शांत रहने वाला नहीं था। सिसोदिया की सहायता से 1427 ई० मे उसने मण्डोर पर अधिकार कर लिया। 1428-1438 तक राजस्थान में वह सर्वशक्तिमान व्यक्ति था। उसकी सहायता से ही 1433 मे कुम्भा चित्तौड़ की गद्दी प्राप्त कर सका। वह (कुम्भा) अल्पावस्था में था अत राज्य का 'रिजेन्ट' यह बन गया। 1433-1438 के काल मे मेवाड़ पर कई मुस्लिम आक्रमण

हुए। उसने सफलतापूर्वक उनका सामना कर मेवाड़ की रक्षा की। अपार-शक्ति के कारण वह अत्यन्त महत्वाकांक्षी हो गया। उसने अपने विरोधियों को बुरी तरह कुचलकर मेवाड़ का राठौड़ीकरण करना शुरू किया। राज्य के ऊँचे पद राठौड़ों को दिए गए। मेवाड़ी लड़कियों को राठौड़ों के साथ शादी करना अनिवार्य कर दिया। इससे वह अप्रिय होने लगा। जब उसने 1439 में मेवाड़ के सामन्त राघवदेव की हत्या करवादी तो उसके विरुद्ध विद्रोह हो गया। स्वयं कुम्भा रणमल विरोधी बन गया। वह किले में मार डाला गया। उसका पुत्र जोधा भाग गया। कुम्भा ने जोधा का पीछा किया और मण्डोर पर अधिकार कर लिया।[30]

बीस वर्ष तक जोधा पश्चिमी-राजस्थान के प्रदेशों में घुमक्कड़ जीवन बिताता रहा। धीरे-धीरे उसने देवड़ा, चौहानों, इन्द्रावरिहारों, रूण के सांखला, पूंगल व जागलू के भाटी राजपूतों से सहयोग प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।[31] उसकी शक्ति बढ़ने लगी। वह मण्डोर पुन: प्राप्त करने का सुअवसर खोजने लगा। 1457–1458 में चित्तौड़ के राणा कुम्भा की स्थिति सोचनीय होने लगी। मालवा के महमूद खिलजी और गुजरात के कुतुबद्दीन ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। इसी समय कुम्भा के भाई क्षेमा ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

राणा ने मण्डोर, मेड़ता और सोजत-स्थित अपनी सेना को बुला लिया। ऐसी स्थिति में जोधा ने आक्रमण कर कोसना, चोकड़ी और मण्डोर पर अधिकार कर लिया।[32] नेनसी लिखता है कि[33] जोधा ने मेवाड़ पर भी आक्रमण किया और पिछोली प्रदेश को लूटा। कुम्भा सभी मोर्चों पर लड़ नहीं सकता था अत: उसने नेपा सांखला के द्वारा जोधा से समझौता कर लिया।[34] इसके अनुसार कुम्भा ने जोधा को मण्डोर का शासक स्वीकार किया तथा गोड़वाड़ तक उसके राज्य सीमा को मान्यता दी। इसके बदले में जोधा राणा को मुस्लिम आक्रमण के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। जोधा ने अपनी पुत्री की शादी राणा के पुत्र से कर पारिवारिक सम्बन्ध भी दृढ़ कर लिए।[35] मेवाड़ पर मुसलमानों के आक्रमण काल 1458–1468 के समय सिसोदिया–राठौड़ सहयोग बना रहा।[36]

जोधा के समय से मारवाड़ में राठौड़–शक्ति के उत्थान का तीसरा युग प्रारम्भ होता है। उसने नयी राजधानी बनाई। मण्डोर से पांच मील दूर पहाड़ी पर एक गढ़ निर्मित किया तथा एक नगर बसाया, जो जोधपुर कहलाता है। उसने राठौड़ राज्य को नई सैद्धान्तिक मान्यता प्रदान की कि राज्य पर व्यक्ति का नहीं बल्कि राठौड़ परिवार का अधिकार रहेगा तथा शासक 'समान में प्रथम व्यक्ति' होगा। राज्य प्रसार के लिए उसने अपने भाइयों एवं पुत्रों को सीमान्त पर नियुक्त किया एवं पड़ोसी प्रदेशों पर प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने की नीति को प्रोत्साहित किया। जो क्षेत्र नये जीते जाते थे उन पर विजेताओं के अधिकार को मान्यता दी।

सिर्फ शासनाध्यक्ष एक ही रहने लगा । इस प्रकार उसके छोटे भाई कान्धल और बड़े पुत्र बीका ने जांगलू, चन्दासौर, देशनोक, कोडमदेसर, पूगल, हिसार तक का जाट प्रदेश 1485 ई० में अधिकार कर लिया ।[37] दूसरे पुत्र वरसी और दूदा ने मेड़ता, अजमेर, और साभर तक अपना प्रभाव क्षेत्र स्थापित किया ।[38] 1477 ई० में उसने शेखा, उदा, ऊगा की सहायता से छापड–द्रोणपुर प्रदेश जीत लिया । पहले जगा को, बाद में बीदा को वहां का शासन सौंपा ।[39] अन्य पुत्रों में सातल ने जैसलमेर के भाटी शासकों के कुछ प्रदेश छीन कर अपने नाम पर सातलमेर की स्थापना की । सूजा ने सोजत लिया । नागौर के मुस्लिम शासक फतेखां से लम्बे अरसे तक युद्ध कर करमसी और वनवीर ने खींवसर, रायपुर और आसोप पर अधिकार कर लिया ।[40] दूदा ने 1487 में सिंधलों के मेगा को हरा कर जैतारण ले लिया ।[41]

दिल्ली के लोदी शासक बहलोल के साथ जोधा के अच्छे सम्बन्ध थे । सन् 1505 के गोसुण्डी अभिलेख में उसका काशी, गया और अन्य धर्म-स्थलों पर जाना लिखा है तथा जौनपुर के शर्की सुल्तान हुसैनशाह के साथ युद्ध का उल्लेख है। बहलोल लोदी और शर्की शासकों में युद्ध हुआ करते थे अतः उपरोक्त उल्लेख की सत्यता इस रूप में स्पष्ट की जा सकती है कि जोधा बहलोल के मित्र के रूप में शर्कियों के विरुद्ध लड़ा और उस दौरान में उसने धार्मिक स्थानों की यात्रा भी की । यह आश्चर्यजनक है कि लोदी साम्राज्य के समकालीन इतिहासकार अहमद यादगार, फरिश्ता, मुश्ताकी, याहया आदि ने राठौड़-शक्ति का उल्लेख कहीं भी नहीं किया । सम्भवतः राठौड़ उस समय तक दिल्ली राजनीति को प्रभावित करने वाली शक्ति नहीं बन सके थे । जोधा की मृत्यु 1488 ई० में हुई ।

जोधा की मृत्यु के समय मारवाड़ में राठौड़ राज्य की सीमा उत्तर में हिसार, द० पूर्व में गोडवाड़, पश्चिम में जैसलमेर सिन्ध तक फैल गई थी । उसकी मृत्यु के पूर्व ही बीका ने स्वतन्त्रता स्थापित कर ली थी । और जोधा ने उसे बीकानेर का शासक स्वीकार कर लिया था ।[42] पर सबसे बड़ा पुत्र होने के कारण बीका ने जोधपुर पर अपने अधिकार को नहीं त्यागा । जोधा की मृत्यु के बाद जब सातल गद्दी पर बैठा तो बीका ने जोधपुर पर आक्रमण की तैयारियां प्रारम्भ कीं । इससे जोधा के राज्य का विघटन होने लगा । बीदा द्रोण–छापर में स्वतन्त्र हो गया । मालवा के सुलतान ने मल्लुखां के नेतृत्व में सेना भेज कर अजमेर और मेड़ता पर अधिकार कर लिया । दूदा भी स्वतन्त्र हो गया ।[43] नागौर के मुस्लिम सूबेदारों की ओर से राठौड़ राज्य पर आक्रमण की सम्भावनाएं हर समय बनी रहने लगी ।

सोलहवीं शताब्दी के प्रथम अर्द्ध भाग में उत्तरी भारत की राजनीति, जिसमें मुगलों और अफगान शासकों के बीच संघर्ष चलता रहा, का लाभ उठा कर राठौड़ों

ने राव गांगा ग्रौर ग्रौर राव मालदेव के नेतृत्व में राजस्थान की एक प्रमुख शक्ति बनने में सफलता प्राप्त की। 1527 ई० मे राणा सांगा के सहयोगी के रूप मे राठौड़ों ने खानवा के युद्ध मे भाग लिया। 1531 में मारवाड की गद्दी पर राव मालदेव ग्रासीन हुग्रा। उसके नेतृत्व[11] में राठौड़ शक्ति चरमसीमा पर पहुंच गई। दस वर्ष के भीतर न सिर्फ मेवाड के सिसोदिया शक्ति के प्रभाव को ही शून्य नहीं किया बल्कि ग्रफगान शासक शेरशाह से टक्कर लेने की क्षमता उसने बढ़ाली। 1541 ई में उसने भगोड़े मुगल शासक हुमायूं को शेरशाह के विरुद्ध सहायता देने की पेशकश की। परन्तु हुमायूं ने इसका लाभ नहीं उठाया। जुलाई 1542 मे शेरशाह ने मालदेव के विरुद्ध सैनिक ग्रभियान की इच्छा करते हुए भी नहीं किया क्योंकि उसकी तैयारियाँ पर्याप्त नहीं थी। मालदेव ने ग्रजमेर, मेड़ता बीकानेर ग्रौर नागौर पर ग्रधिकार कर लिया। मेड़ता व बीकानेर के शासक शेरशाह से जा मिले। इस पर ग्रफगान शासक ने 1543 के ग्रन्त मे मारवाड पर ग्राक्रमण करने हेतु दिल्ली से प्रस्थान किया। 5 जनवरी 1544 को सामेल के युद्ध में मालदेव हार गया परन्तु मुट्ठी भर बाजरे के लिए शेरशाह की गद्दी खतरे मे पड गयी थी। उसने मेड़ता, ग्रजमेर, नागौर, बीकानेर ग्रौर जोधपुर पर ग्रपना शासन स्थापित किया[45] पर यह विजय ग्रल्पकालीन रही। 1545 ई मे शेरशाह की मृत्यु हो गयी। इस पर मालदेव ने ग्रपनी राजधानी पर पुन ग्रधिकार कर लिया। 1560 तक उसकी राज्य–सीमा पुन उस बिन्दु तक पहुंच गई जो समेल के युद्ध के पूर्व थी।[46]

1555 ई० मे हुमायूं ने दिल्ली पर पुन ग्रधिकार कर लिया। 1556 मे ग्रकबर गद्दी पर बैठा। मेड़ता का जयमल मालदेव के विरुद्ध सहायता लेने ग्रकबर के पास पहुंचा। बीकानेर के शासक ने भी मुगल दरबार की यात्रा इसी उद्देश्य से की। 1558 ई० मे, बाद म 1562 मे ग्रकबर ने मिर्जा सरफुद्दीन हुसैन को मेड़ते पर ग्रधिकार करने को भेजा। राठौड व मुगलों की यह पहली टक्कर थी। मेड़ता पर मुगल ग्राधिपत्य स्थापित हो गया। नवम्बर, 1562 ई० मे मालदेव की मृत्यु के साथ मारवाड में राठौड़ों का स्वतन्त्र शासन समाप्त हो गया।[47]

मालदेव के बाद उसका बड़ा पुत्र चन्द्रसेन जोधपुर का शासक बना। उसके दो भाई, उदयसिंह ग्रौर राम भी गद्दी की मांग करने लगे। वे विद्रोही हो गए। इसका लाभ मुगलों ने उठाया। नागौर के मुगल हाकिम हुसैन कुली बेग ने 1564 ई० में जोधपुर पर ग्रधिकार कर लिया। चन्द्रसेन भाद्राजून की ग्रोर व उदयसिंह फलौदी की ग्रोर भाग गए। राम ने मुगलों की सरक्षता स्वीकार करली। जोधपुर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। वहां सरकार स्थापित करदी गई। चन्द्रसेन राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए संघर्ष करता रहा।[48]

1570 ई० में अकबर ने नागौर में पश्चिमी-राजस्थान के शासकों का सम्मेलन बुलाया। बीकानेर, जैसलमेर के शासक और जोधपुर के चन्द्रसेन और उदयसिंह नागौर पहुँचे। अकबर की नीति स्पष्ट थी। राजपूत प्रदेश मुगल साम्राज्य के अधीन क्षेत्र हैं, राजपूत शासकों को मुगल सार्वभौमिकता स्वीकार करनी पड़ेगी, राज्य पर उनका अधिकार मुगल सम्राट की स्वेच्छा पर निर्भर रहेगा, उनके उत्तराधिकारी के बारे में मुगल-निर्णय अन्तिम निर्णय होगा और उन्हें मान्य होगा। शासकों को वार्षिक-कर मुगल-कोष में जमा करना पड़ेगा, उन्हें मुगल सेवा देनी पड़ेगी तथा राजकुमारियों की शादी मुगल शासकों या शहजादों से करनी पड़ेगी, उन्हें मुगल मनसब में लिया जायेगा तथा योग्यतानुसार सैनिक, प्रशासनिक और राजनैतिक उत्तरदायित्व दिया जायेगा। उनके राज्य की आय पर उनका अधिकार बना रहेगा।

बीकानेर और जैसलमेर के शासकों ने अपनी पुत्रियों की शादी अकबर से शीघ्र करदी। उदयसिंह ने मुगल सार्वभौमिकता तो स्वीकार की परन्तु अपनी पुत्री की शादी मुगलों से करने को तैयार नहीं हुआ। चन्द्रसेन सम्मेलन से छूट गया और एक बार पुनः मुगलों से संघर्ष की नीति उसने अपनाई। उसके पास न तो साधन थे और न सैनिक ही। एक-एक करके उसके प्रदेश मुगलों के अधीन होने गए। 1572 ई० में भाद्राजून और 1576 में सिवाना तथा पोकरण उसके हाथ से निकल गए। जनवरी, 1581 ई० में मुगलों से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु हो गयी।

नागौर से प्रस्थान करने से पूर्व अकबर ने जोधपुर के प्रशासन का उत्तर-दायित्व बीकानेर शासक रायसिंह को दिया। 1583 ई० में उदयसिंह ने अपनी पुत्री जोधाबाई की शादी शाहजादा सलीम से करदी। इस पर अकबर ने जोधपुर का राज्य उसे दे दिया, यद्यपि मारवाड़ पर राठौड़ों का शासन पुनःस्थापित हो गया परन्तु अब वे स्वतंत्र शासक नहीं रहे। जोधपुर अजमेर सूबे की एक सरकार ही माना जाता था। राठौड़ शासक मुगल मनसबदारी व्यवस्था के अभिन्न अंग बन गए। उदयसिंह मुगल दरबार में रहने लगा।

धीरे-धीरे जोधपुर पर मुगल प्रभाव बढ़ने लगा। सामान्यतः शासक मुगल अभियानों में भेजे जाते थे। यदि अभियान में नहीं जाना पड़ता तो वे मुगल दरबार में उपस्थित रहते। पारिवारिक आवश्यकताओं के समय ही उन्हें जोधपुर जाने की शाही आज्ञा मिल सकती थी। उनकी अनुपस्थिति में 'देश' का शासन प्रबन्ध दीवान व अन्य पदाधिकारी करते, जिनकी नियुक्ति के लिए शाही पूर्वानुमति उन्हें लेनी पड़ती थी। शाही दरबार में वे हमेशा बादशाहों की कृपा की आकांक्षा करते थे, जिससे उनकी मनसब में वृद्धि हो सके और अतिरिक्त आय प्राप्त हो सके।

उदयसिंह को एक हजार जात का मनसबदार बनाया गया और 'राजा' की पदवी दी गई। मृत्यु (जुलाई 1595 ई०) के समय वह 1,500 जात का मनसबदार था तथा उसके अधीन जोधपुर, सातलमेर, फलोदी, सोजत, जैतारण और सीवाना के प्रदेश थे। उसने 1588–1593 के बीच मुगलों के गुजरात, राजस्थान (सिरोही) और दक्षिण अभियानों में भाग लिया था। 1588 ई० में उसने कम्बे के के पास मुज्जफर खाँ गुजराती और दौलत खाँ लोदी के विद्रोह को दबाया और 1593 ई० में सिरोही के सुरताण पर विजय पाई।

मुगल बादशाह राठोड़ शासकों के उत्तराधिकारी निश्चित करते समय शासकों की अन्तिम इच्छाओं का ध्यान भी रखते थे। अतः उदयसिंह की मृत्यु के बाद अकबर ने, उसकी ईच्छानुसार उसके छठे पुत्र शूरसिंह को 23 जुलाई 1595 को जोधपुर का शासक स्वीकार किया। वह 2000 जात/सवार का मनसबदार था और सोलह परगनों (मारवाड़ में नौ, गुजरात में चार, मालवा, मेवाड़ व दक्षिण में एक/एक) पर उसका शासन था। उसने 1597 ई० में गुजरात के बहादुर गुजराती, 1600 ई० में सदतखाँ और 1602 ई० में बुलन्द के विद्रोहों को दबाया। वह 1608 ई० में मलिक अम्बर (अहमद नगर) और 1613 ई० में राणा अमरसिंह (मेवाड़) के विरुद्ध सैनिक अभियानों में शामिल था। जहाँगीर के शासनकाल में वह अधिकतर दक्षिण में रहा, जहाँ उसकी मृत्यु 7 सितम्बर, 1619 को हुई। मृत्यु के समय वह 5000 जात और 3,300 सवार का मनसबदार था। उसके राज्य में जालोर,[49] मेड़ता[50] और साचोर प्रदेश मिला दिए गए थे। शेरशाह ने मुगल राजनीति को भी प्रभावित किया था। जहाँगीर अपनी आत्म-कथा में लिखता है कि, "वह (शूरसिंह) राणा की तरह शक्तिशाली जमींदार था जिसे ऊँचा पद और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।"

शूरसिंह का उत्तराधिकारी गजसिंह था। पिता के समय से ही वह शाही सेवा में अपनी योग्यता का परिचय दे चुका था। उसने पठानों से जालोर छीन लिया था। राणा अमरसिंह के विरुद्ध युद्ध में जहाँगीर इससे बड़ा प्रभावित हुआ था। सादड़ी के थानेदार के रूप में उसने प्रशासकीय दक्षता प्रदर्शित की। परन्तु जब वह गद्दी पर बैठा तो न तो उसके पिता का मनसब ही प्राप्त हुआ और न उसके समय के प्रदेश ही। शूरसिंह की मृत्यु के बाद जहाँगीर ने फलोदी, जालोर, मेड़ता और सिवाना के परगने शहजादा खुर्रम को दे दिए। गजसिंह को शासक बनने पर 3000 जात, दो हजार सवार का मनसब दिया गया। शीघ्र ही शाही सेवा के कारण उसके मनसब में वृद्धि होने लगी। उसने मलिक अम्बर के आक्रमण को असफल बनाया, 1624 ई० में हाजीपुर के स्थान पर उसने और आमेर शासक जयसिंह ने मिल कर खुर्रम को करारी हार दी। उसका मनसब बढ़ा कर 5000 जात 5000 सवार का कर

दिया गया। शाहजहाँ के काल में, उसने 1630 ई० मे खानजहा लोदी के विद्रोह को दबाने मे मदद दी। 1631–1636 ई० मे उसने बीजापुर के विरुद्ध सैनिक अभियानो मे भाग लिया। इन सेवाओ के उपलक्ष मे शाहजहा ने मारोठ का परगना उसे दे दिया।

मई, 1638 ई० में गजसिंह की मृत्यु होगई। शाहजहाँ ने राठोड राज्य को दो भागों में विभाजित किया। एक भाग, जिसकी राजधानी जोधपुर थी, पर जसवन्तसिंह (गजसिंह का छोटा पुत्र, जिसकी 1638 ई० में आयु 12 वर्ष की थी) का शासन माना गया और दूसरे भाग पर, जिसकी राजधानी नागोर थी, अमरसिंह (गजसिंह का बडा पुत्र) का शासन माना गया। समकालीन ऐतिहासिक ग्रन्थ एवं तवारीखों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अपने शासन के प्रथम बीस वर्षों मे जसवन्तसिंह ने न तो कोई महत्वपूर्ण सैनिक अभियान मे भाग लिया और न कोई उसे राजनैतिक प्रतिष्ठा मुगल दरबार मे प्राप्त हुई। वह शाहजहा के साथ यात्राओ मे जाता था। समय समय पर उसे मनसबो से विभूषित किया गया। उसने जालोर, पोकरण, फालोदी, और सातलमेर के प्रदेश शाहजहाँ से प्राप्त किए। जनवरी से अगस्त 1645 ई० तक वह आगरे का कार्यवाहक सूबेदार भी रहा।

... .

सन्दर्भ

1–डा० दशरथ शर्मा अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० 148

2–राठौड़ों ने 1394 ई० मे मन्डोर पर अधिकार किया था।

3 डा० दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० 58, 77, 148

4–उपरोक्त पृ० 144, 148, 151, 152

5–हब्बीबुल्ला फाउन्डेशन्स आफ द मुस्लिम रूल इन इण्डिया, पृ० 124

6–डा० दशरथ शर्मा अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० 152, डा० शर्मा के अनुसार उदयसिंह ने वि. स. 1283-1314 (1226 1257 ई०) के बीच मन्डोर पर पुन अधिकार किया था।

7–उपरोक्त पृ० 159

8–उपरोक्त

9–रामकरण आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास पृ० 22

10–डा० दशरथ शर्मा : अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० 167-169, डा. शर्मा के अनुसार जालोर का पतन ज्येष्ठ वदि 10, वि. सं. 1371 (1314 ई.) के आस पास हुआ था (उपरोक्त पृ० 170 फुटनोट-60)

11 गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा के अनुसार सीहा बदायू से 1196 ई० में चला (जोधपुर का इतिहास, भाग (1) पृ० 146); रामकरण आसोपा उसे महुवी से 1234 ई० में प्रस्थान करता हुआ मानते हैं। (मारवाड़ का मूल इतिहास पृ० 49) के निगधम 1226 ई. में उसके प्रस्थान की तिथि देता है। (आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट : भाग (3) पृ० 123)

12–नेनसी लिखता है कि सीहा ने गुजरात मे लाखा फुलाणी के विरुद्ध चौहुवा शासकों को सहायता देकर भाग्य आजमाना चाहा परन्तु बाद में वह कन्नौज लौट आया (ख्यात (2) पृ० 267-274)

13–मारवाड़ ख्यात (1) पृ० 19, बाकीदास, ऐतिहासिक वार्ता न० 1615; डा. दशरथ शर्मा : अर्ली चौहान डायनेस्टीज पृ० 159। उस समय खेड़ पर कान्हड़ देव का अधिकार था।

14–ओझा : जोधपुर का इतिहास भाग (1) पृ० 173

5–टॉड लिखता है कि आस्थान के पुत्र दुशन्द ने खेरपाल पर आक्रमण किया और कुछ समय मन्डोर पर अधिकार किए रहा (ग्रन्थ (2) पृ० 943)

16–ओझा : जोधपुर का इतिहास भाग (1) पृ० 170 फुटनोट–1; दें देहली सल्तनत (विपल्स हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डिया भाग (6) पृ० 349

17–वी० एन० रेऊ : मारवाड़ का इतिहास भाग (1) पृ० 50–53, ओझा : जोधपुर का इतिहास भाग (1) पृ० 173, 183, 192; दें देहली सल्तनत पृ० 350

18–रेऊ : ग्लोरिज ऑफ मारवाड़ एण्ड दें ग्लोरियस राठौड़ पृ० (13)

19–ओझा : जोधपुर का इतिहास भाग (1) 190–192

20–वीर विनोद भाग (1) पृ० 802

21–नैनसी ख्यात (2) पृ० 304, 307

22–मीरात-ए-अहमदी (गुजराती संस्करण) पृ० 13; ओझा जोधपुर का इतिहास भाग (1) पृ० 212 फुटनोट

23–नैनसी ख्यात (2) पृ० 308–309

24–मिरात ए अहमदी–पृ० 13, ओझा . भाग (1) पृ० 212 दें देहली सल्तनत पृ० 116–117/मिरात में 'माण्डु, मण्डोर के लिए है न कि मालवा के माण्डु के लिए।

25–नैनसी ख्यात (2) पृ० 310

26–मिरात-ए-अहमदी पृ० 18; ओझा · भाग (1) पृ० 202; रेऊ भाग (1) पृ० 64

27–दें देहली सल्तनत पृ० 127 इसमें खिज्रखां का नागौर पर आक्रमण 1416 का लिखा है ।

28–जोधपुर इतिहासकार उसका राज्य सांभर और डीडवाना तक भी मानते हैं।

29–नैनसी के अनुसार पिता से झगड़ा हो जाने पर रणमल मण्डोर से भाग कर चित्तौड़ गया था (ख्यात (2) पृ0 313-314)

30–लेखक का लेख कुम्भा के राजस्थान के अन्य शासकों के साथ सम्बन्ध 1433–1439 (राजस्थान भारती, ग्रन्थ (8) भाग (1-2)

31–रेऊ : भाग (1) पृ० 80 फुटनोट-2

32–उपरोक्त पृ० 89-90, दें देहली सल्तनत पृ० 335-336

33–ख्यात (3) पृ० 9-12

34–उपरोक्त वीर विनोद के अनुसार हंसाबाई ने राठोड़ और सिसोदिया के बीच समझौता कराया (ग्रन्थ (1) पृ० 323–324) प० रामकरण आसोपा इसका श्रेय राम को देते है । (मारवाड़ का मूल इतिहास, पृ० 108)

35-ओझा : भाग (1) पृ० 241

36-दें देहली सल्तनत

37-नेणसी ख्यात भाग (3) पृ० 13-15, पाउलेट गजेटियर-पृ० 1

38-बांकीदास : ऐतिहासिक बातें . 620-642

39-नेणसी ख्यात भाग (3) पृ० 166

40-रेऊ भाग (1) पृ० 99

41-उपरोक्त पृ० 101

42-ओझा : भाग (1) पृ० 250

43-रेऊ : ग्लोरिज ऑफ मारवाड़ एन्ड दें ग्लोरियस राठौड़ पृ० 18-19

44-भार्गव : मारवाड़ एन्ड दें मुगल एम्परस पृ० 17

45-कानूनगो : शेरशाह और उसका युग पृ० 331

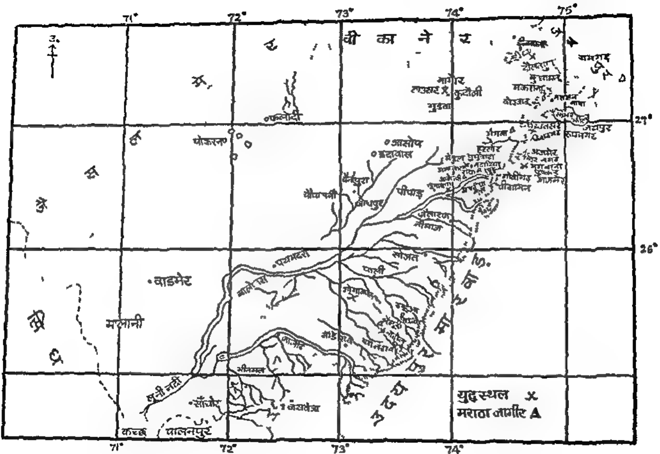
46-भार्गव : मारवाड़ एन्ड दें मुगल एम्परस पृ० 35

47-उपरोक्त पृ० 38 40

48-मारवाड़ और मुगल शासकों के बीच विस्तृत जानकारी के लिए देखिये डॉ. वी एस. भार्गव : मारवाड़ एन्ड दें मुगल एम्परर्स ।

49-बिगड़ते बिहारी पठानों से 1619 ई० में गजसिंह ने जालोर लिया था।

50-1602 में दक्षिण में दी गई सेवाओं के बदले में अकबर ने दिया था।



चित्र 2. मारवाड़—मराठा संबंधी युद्धस्थल एवं मारवाड़ में मराठों की जागीरें।

अध्याय 1

मराठों से प्रारम्भिक सम्बन्ध

जसवंतसिंह दक्षिण में

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में, जब शाहजहाँ की लम्बी बीमारी के कारण उसके पुत्रों में साम्राज्य के लिए शक्ति संघर्ष हो रहा था, जसवंतसिंह (१६३८–१६७८ ई०) मारवाड़ का वंशानुगत शासक था। वह छः हजार जात छः हजार सवार का मुगल मनसबदार था जिसे 'महाराज' की पदवी दी गयी थी। १६४६ ई० और १६५२ ई० में उसने कन्धार में मुगलों की सेवा की थी। उत्तराधिकार के युद्ध में वह सिंहासन के प्रति निष्ठावान था। उसने दाराशिकोह का पक्ष लिया और उसकी ओर से लड़ा भी तथापि दोराई[1] के युद्ध (१४ मार्च १६५९) के पूर्व राजनैतिक औचित्य और आमेर के शासक जयसिंह की मध्यस्थता के फलस्वरूप, उसने औरंगजेब की ओर हाथ बढ़ाया। । इस सेवा के बदले में बादशाह ने १९ मार्च को उसे गुजरात की सूबेदारी प्रदान की और ७००० जात ७००० सवार का मनसबदार बना दिया। १५ अप्रेल, १६५९ को महाराजा ने अहमदाबाद में अपना नया कार्य भार ग्रहण किया।[2]

जसवंतसिंह गुजरात में अप्रेल १६५९ से जुलाई १६६२ तक रहा। इस अवधि में उसने स्थानीय विद्रोह विशेषतः नेवेदा के दूदा कोली के विद्रोह को दबाया। उसे पेशकश देने व शाही सेवाओं में आने के लिए बाध्य किया। इससे बादशाह की दृष्टि में जसवंतसिंह का मान बढ़ गया।[3] अब बादशाह ने उसे शिवाजी मराठा की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए दक्षिण में सूबेदार शाइस्ताखां के साथ नियुक्त किया। वह जुलाई १६६२ में दक्षिण की ओर चला।[4] उसने पूना के पास अपना मुख्यावास स्थापित किया। नगर में शाइस्ताखां का निवास था, अतः सिंहगढ़ की ओर जाने वाली सड़क पर उसने डेरा डाल दिया।[5] नगर की बाह्य सुरक्षा का भार जसवंतसिंह को दिया गया और आन्तरिक सुरक्षा का दायित्व शाइस्ताखां के सैनिकों पर था जो महल के चारों ओर फैले हुए थे। शिवाजी ने ५ अप्रेल १६६३ की रात्रि को शाइस्ताखां के महलों पर अचानक आक्रमण कर दिया। बिना प्रतिरोध के वे किले में प्रविष्ट हुए। शाइस्ताखां असावधान था। उसने भागकर अपनी जान बचायी। बिना प्रतिरोध एवं हानि के शिवाजी किले से बाहर निकलने में सफल हुए।

इस घटना के कारण दक्षिण में मुगल प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। इसने एक विवाद को जन्म दिया कि क्या जसवंतसिंह शिवाजी से मिला हुआ था या शिवाजी ने अकेले ही बिना इस मुगल सेनापति की सहायता के, जो कि अमान में उस समय दूसरे स्थान पर था, यह कृत्य किया ? समकालीन और अर्द्ध समकालीन अभिलेखों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि जसवंतसिंह शिवाजी के साथ मिला हुआ था इसलिए उसने अपने सूबेदार की मदद नहीं की और न मराठों को रोकने का प्रयत्न किया। इसकी पुष्टि कई तरह से की जाती है।

गेफार्ड ने राजापुर से १२ अप्रेल, १६६३ को एक पत्र सूरत फैक्ट्री के अध्यक्ष को लिखते हुए सूचित किया कि इस घटना का उत्तरदायित्व मारवाड़ के शासक पर था। वह लिखता है कि उसकी तटस्थता ने आसपास के लोगों को यह विश्वास करने पर विवश किया कि यह कार्य उसकी (जसवंतसिंह की) सहमति से हुआ।[६] शिवाजी के पुर्तगाली जीवनीकार कोस्मे-डी-गार्डा, जिसने १६६५ ई० में अपना ग्रन्थ लिखा,[७] के शब्दों में "शिवाजी द्वारा भेजी गयी भेंट के प्रति जसवंतसिंह ने पूर्ण आभार प्रदर्शित किया तथा इस बात का विश्वास दिलाया कि जो गुप्त बातें उसके और शिवाजी के मध्य हुई हैं, उनका वह पालन करेगा तथा मुगलों के विरुद्ध शिवाजी की योजना का संकेत किसी को नहीं देगा।"[८] बर्नियर भी लिखता है "ऐसा संदेह किया जाता था कि एक गुप्त अलिखित समझौता जसवंतसिंह और शिवाजी के मध्य था और शाइस्ताखां पर आक्रमण का पूर्वाभास जसवंतसिंह को था।"[९] मनुची का यह कथन भी इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जसवंतसिंह की सलाह से शिवाजी ने शाइस्ताखां को मारने का विचार किया।[१०] 'नुस्ख-ए दिलकश' का रचयिता भीमसेन भी इस घटना में जसवंतसिंह का हाथ बतलाता है।[११] इन स्रोतों के आधार पर कई आधुनिक मराठा इतिहासकारों[१२] ने यह निर्विवाद स्वीकार किया कि बिना राठौड़ शासक के सहयोग से शिवाजी पूना में आक्रमण नहीं कर सकता था।

यदि हम ऐतिहासिक प्रलेखों, घटना के प्रभावों एवं इसके प्रति शाइस्ताखां और औरंगजेब के दृष्टिकोण की विवेचना करें तो यह तथ्य सत्य नहीं प्रतीत होता है कि पूना पर आक्रमण, शिवाजी और जसवंतसिंह का संयुक्त कार्य था। राजकीय, सवारीखों एवं फारसी कृतियों जैसे आलमगीरनामा, फतूहात-ए-आलमगीरी, मआसिर-ए-आलमगीरी और मआसिर-उल-उमरा के लेखकों ने जसवंतसिंह पर असावधानी या निष्क्रियता का आरोप नहीं लगाया। खफीखां लिखता है, अगले दिन जब जसवंतसिंह सेनापति (शाइस्ताखां) को देखने गया तो उसने कहा, "जब दुश्मन मुझ पर टूट पड़ा तो मैंने ख्याल किया कि तुम उसके विरुद्ध लड़ते हुए काम आ चुके हो।[१३] खफीखां ने ऐसा कोई तथ्य नहीं दिया है, जिससे यह स्पष्ट होता हो कि राठौड़ शासक शिवाजी से मिला हुआ था। यदि ऐसा होता तो मुन्तखब-उल लुबाब का लेखक राजा के इस कार्य की कड़ी आलोचना करता और स्पष्ट शब्दों में बादशाह की प्रतिक्रिया को व्यक्त करता। मई के प्रारम्भ में बादशाह को पूना-आक्रमण की

घटना मालूम हुई। उसने शाइस्ताखा को उसकी कर्तव्य विमुखता के लिए दोषी ठहराया। सेनापति को दिल्ली बुला लिया गया और बाद मे उसे बगाल भेज दिया गया।[१४] यदि बादशाह को तनिक भी सदेह होता कि राठौड-मराठा मिल गये थे, तो वह एक और वर्ष के लिए (मार्च १९६५ तक) जसवतसिंह को स्वतन्त्र सेनापति के रूप मे दक्षिण मे नहीं रहने देता।[१५]

शिवाजी का यह कथन भी काफी प्रभाव रखता है कि उसकी सफलता का श्रेय उसके परमेश्वर को था, अन्य किसी व्यक्ति को नहीं। उन्होने रावजी पण्डित को लिखा, 'परमेश्वर ने उन्हे यह कार्य करने की शक्ति दी। अन्य कोई इसके लिए उत्तरदायी नही था।[१६] तथ्य यह है कि शाइस्ताखां पर किया गया अप्रत्याशित आक्रमण शिवाजी द्वारा स्वय नियोजित एव सचालित था। इस कार्य की क्रियान्विति में केवल अत्यत विश्वसनीय व्यक्ति, नेताजी पालकर, मोरो पत, बाबजी बापूजी और खेड के चिमनाजी बापूजी ही सम्मिलित किये गये थे। चन्द्रराव मोरे और अफजलखा के विरुद्ध पूर्व नियोजित योजना की ही भांति शाइस्ताखां को मारने की यह योजना भी थी।[१७] उस समय तक शिवाजी की जसवतसिंह से इतनी घनिष्टता नही थी कि वह उस पर इस प्रकार की योजना के बारे में विश्वास कर लेते, जिसकी असफलता का मूल्य उन्हे अपने प्राणों से चुकाना पडता।

अपनी योजना को सफल बनाने के लिए शिवाजी ने हर प्रकार की सावधानी से काम लिया। उक्त क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति, युद्ध की गुरिल्ला प्रणाली, शाइस्ताखां का पूना निवास, रमजान का महीना और चारो ओर का घना जगल इस योजना की सफलता के मुख्य तत्त्व थे। शिवाजी ने अपनी गुप्तचर व्यवस्था द्वारा कई मित्रों और सम्बन्धियो से, जो कि मुगल सेना मे थे, शत्रु की आन्तरिक कमजोरियों की जानकारी प्राप्त कर ली थी। कहीं जसवतसिंह अचानक आक्रमण नहीं कर दे, इसके लिए शिवाजी ने एक एक हजार के दो डिवीजन, जिनमें घुडसवार और मालवी सैनिक भी शामिल थे, नेताजी पालकर और मोरो पत के नेतृत्व मे मुगल घेरे के दोनों ओर मील भर की दूरी पर तैनात कर दिये। राठौड शासक सिंहगढ की सडक पर बाह्य सुरक्षा के लिए नियुक्त था। शाही पडाव की आन्तरिक सुरक्षा शाइस्ताखा के सतरियो के हाथ मे थी, जो अनुशासनहीन थे।[१८] इसका लाभ उठाकर शिवाजी ने शाइस्ताखा के खेमे म प्रवेश किया तथा भयकर विध्वस कर सुरक्षित सिंहगढ खिसक गये। उपर्युक्त तथ्यो और शाइस्ताखा को वापिस बुलाये जाने के बाद दक्षिण म जसवतसिंह की नीति को देखकर यही कहा जा सकता है कि जसवतसिंह किसी भी प्रकार से शिवाजी से मिला हुआ नही था।

जसवतसिंह और शिवाजी

शाइस्ताखा के प्रस्थान के बाद दक्षिण में मुगल हितों की रक्षा का भार जसवतसिंह को दिया गया। महाराजा ने शीघ्र ही कोंधाना किले पर, जो कि मराठा

शक्ति का गढ़ समझा जाता था, आक्रमण कर दिया। १५ मार्च १६६४ को राठौड सेनापति सुन्दरदास ने मुख्य द्वार पर हमला किया पर वह सफल न हो सका। राठौडो के २० व्यक्ति मारे गये। मराठो ने जबरदस्त किलेबन्दी कर रखी थी। अप्रेल में एक बार पुनः राठौडो ने किले की सेंध लगाकर किले बन्दी तोडनी चाही। किले की दीवार मे सौ गज की दरार पड गयी। ५० या ६० मराठे सिपाही मारे गये। परन्तु आक्रमणकारियों को किले में प्रवेश करने में सफलता प्राप्त नहीं हुई। ६ मई को पुनः दीवार तोडने का प्रयत्न किया गया। इस बार ७०० सैनिक किले की दीवार को पार कर गये। घमासान युद्ध हुआ, जिसके फलस्वरूप दोनों पक्षो को काफी हानि उठानी पडी। एक सप्ताह बाद एक और झडप हुई। वर्षा प्रारम्भ होते ही राठौड-मुगल स्थिति कमजोर होने लगी। कोण्डाना के किले पर अधिकार सम्भव नही था अतः जसवन्तसिंह ने किले का घेरा हटा लिया और पूना चला आया। वर्षा के महीनों मे राठौड शासक पूना मे ही रहा। उसने औरंगाबाद से अपनी रानियो को बुलवा भेजा। जब चाचोली केसरीसिंह २१०० सैनिको के साथ औरंगाबाद से पूना जा रहा था तो मार्ग मे मराठो से मुठभेड हुई जो कि मुगल क्षेत्र मे लूट-मार कर रहे थे। राठौड शक्ति के समक्ष मराठे टिक न सके और वे भाग गये।[१६]

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने मे जसवन्तसिंह असफल रहा, अतः उसे दिल्ली बुला लिया गया।[२०] उसके स्थान पर आमेर के शासक मिर्जा राजा जयसिंह, को भेजा गया। १६ अक्टूबर १६६४ को महाराजा जसवन्तसिंह ने दक्षिण से प्रस्थान किया और १४ मई १६६५ को वह दिल्ली पहुँचा।[२१] आसदखा ने किले के द्वार पर उसका स्वागत किया। जब वह दरबार मे उपस्थित हुआ तो बादशाह ने उसे गले लगाया और खिलअत तथा रत्न-जटित तलवार प्रदान कर उसका सम्मान किया।[२२] १२ मई १६६६ को बादशाह की ५० वीं जन्म तिथि का समारोह मनाया गया। कई व्यक्तियो को सम्मानित किया गया। शाहजादों, वजीर जफरखां एवं जसवतसिंह को सम्मान सूचक खिलअतें दी गयी।[२३] उस समय पचहजारी मनसबदारों की श्रेणी मे शिवाजी भी उपस्थित थे।[२४] जसवतसिंह के शाही सम्मान से वह क्रोधित हो उठे। उन्होने जिस राठौड शासक को पराजित किया था वह तो सम्मानित हो और वह स्वयं पाँच हजार का मनसबदार ही रहे यह भेद-भाव वह सहन नही कर सके। उन्होंने दरबार मे इसका खुला विरोध किया।[२५] भरे दरबार मे अनुशासन को चुनौती देने से शिवाजी को हिरासत मे ले लिया गया। मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह का उन पर निगरानी रखने का कार्य सौंपा गया।[२६]

शाही दरबार मे शिवाजी का आचरण अप्रत्याशित था। उन्होने साम्राज्य की प्रभुसत्ता को ललकारा था।[२७] जसवतसिंह ने वजीर जफरखा और बेगम साहिबा (जहानआरा बेगम) का समर्थन पाकर १६ मई को बादशाह से प्रार्थना की, 'शिवाजी को इस प्रकार के कार्य के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए,अन्यथा हर एक भोमिया यहाँ आकर इस प्रकार का प्रदर्शन करेगा जिसका कुप्रभाव समस्त साम्राज्य पर

पड़ेगा।[२८] जसवंतसिंह की राय से बादशाह सहमत था अतः शिवाजी को मृत्यु-दण्ड या देश-निर्वासन का निर्णय लिया गया।[२९] उन पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। परन्तु शिवाजी अत्यन्त सजग थे। अगस्त १६६६ ई० में एक जाली दस्तखत की सहायता से वे मुगल कैद से भाग निकले तथा नारनौल होते हुए बिना रुके दक्षिण की ओर चल पड़े।[३०] मुगल दरबार में भगदड़ मच गयी। शिवाजी को कुचलना मुगल बादशाह की दक्षिण-नीति का मुख्य बिन्दु हो गया। मार्च १६६७ ई० में शाहजादा मुअज्जम और जसवंतसिंह को शिवाजी के विरुद्ध भेजा गया।[३१]

दोनो अनुभवी सेनापति १२ मई को बुरहानपुर और २० मई को औरंगाबाद पहुंचे।[३२] उन्होंने मराठो के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की। आगरा से लौटकर शिवाजी अपने राज्य के प्रशासन को संगठित करने एवं मुगलों से लड़ने के लिए सेना का पुनः संगठन करने में व्यस्त हो गये।[३३] उनके द्वारा अप्रैल, अगस्त, तथा सितम्बर १६६७ में बादशाह को लिखे गये पत्रों से ज्ञात होता है कि शाही सेना ने महाराष्ट्र में आतंक फैला दिया था।[३४] शिवाजी अपनी स्थिति को ठीक करने के लिए कुछ विराम चाहते थे, अतः उन्होंने महाराजा जसवंतसिंह से सम्पर्क स्थापित किया। वे मुगलों से संधि के लिए तैयार थे।[३५] राठौड़ शासक जसवंतसिंह और शाहजादा मुअज्जम भी इसके लिए तैयार थे। इसके दो कारण थे। प्रथम तो वे आतंक का राज्य तो स्थापित कर सके थे परन्तु दक्षिण में उनके पैर न जम सके थे। दूसरा, दोनों के शत्रु दिलेरखां की नियुक्ति दक्षिण में कर दी गयी थी।[३६] शिवाजी द्वारा भेजे गये शांति-प्रस्ताव को शाहजादे ने स्वीकार किया। इस पर विस्तृत बात करने हेतु, जसवंतसिंह ने गोविन्दराय और रणछोड़दास को २० सितम्बर को शिवाजी के पास भेजा।[३७] शीघ्र ही मराठा-मुगल प्रस्तावों का मसविदा तैयार कर बादशाह के पास स्वीकृति के लिए भेजा गया।[३८] ये प्रस्ताव[३९] निम्नलिखित थे।

१ मुगलों की सेवा में शिवाजी एक मराठा टुकड़ी रखेंगे, जो औरंगाबाद में रहेगी।
२ शिवाजी मुगल प्रभुसत्ता को स्वीकार करेंगे। बादशाह उन्हें 'राजा' की उपाधि देगा तथा मुगल क्षेत्रों से उन्हें देशमुखी वसूल करने का अधिकार भी दिया जाएगा।
३ उनके पुत्र शम्भाजी को मनसब दिया जाएगा।
४ शिवाजी को जागीर दी जाएगी।

औरंगजेब ने कुछ प्रस्तावों को तो स्वीकार किया। शम्भाजी को पांच हजार का मनसब दिया गया। शिवाजी को बरार की जागीर प्रदान की गयी। बाकी प्रस्तावों के सम्बन्ध में सूचना भेजी गयी कि वे विचाराधीन थे।[४०] मनसब प्राप्त करने के लिए शम्भाजी शाहजादे के खेमे में गया। वह २८ दिसम्बर १६६७ को जसवंतसिंह से मिला और ४ नवम्बर को मुअज्जम से मुलाकात की। ५ नवम्बर को उसने विदा

थी।[४१] शाहजादे ने उसे पचहजारी मनसब का अधिकार-पत्र एवं शिवाजी के लिए बरार में जागीर का एक पट्टा प्रदान किया।[४२] मार्च १६६८ को शाहजादे ने शिवाजी को सूचित किया कि बादशाह ने उन्हें 'राजा' की पदवी प्रदान कर दी।[४३] उसने इस बात पर जोर दिया कि मराठा टुकडी शीघ्रातिशीघ्र औरंगाबाद भेजी जाए।[४४] अगस्त में नीराजी-रावजी और प्रतापराव के नेतृत्व में मराठा सेना शाहजादे की सेवा में भेजी गयी। इस सेना को दो भागों में विभाजित किया गया। एक भाग औरंगाबाद में रखा गया और दूसरा भाग बरार में भेज दिया गया।[४५]

१६६७ से १६६९ तक मुगल-मराठा विराम-काल था। शिवाजी ने यह समय अपनी स्थिति को सुधारने एवं सैनिक तैयारियाँ करने में लगाया। सेना मुगल-पद्धति के अनुसार प्रशिक्षित की गयी। जसवंतसिंह और मुअज्जम शिवाजी के प्रति बेखबर रहे। अतः जब १६६९ ई० के अन्त में शिवाजी ने बरार और औरंगाबाद से अपनी सैनिक टुकडियाँ वापिस बुला ली और मुगलों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया तो मुगल स्थिति अत्यंत कमजोर पड गयी। इस पर बादशाह ने दिलेर खां को दक्षिण में भेजा। वह २६ जनवरी १६७० को औरंगाबाद की ओर चला। जसवंतसिंह और मुअज्जम को यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने दिलेरखां का विरोध किया और ताप्ती तक पीछे हटने के लिए उसे विवश किया।[४६]

बादशाह को अपने पुत्र और राठौड़ शासक का आचरण उचित नहीं लगा। जहाँ तीनों मिलकर शिवाजी के विरुद्ध अभियान करते वहाँ वे गृह-युद्ध में लिप्त हो गये थे। उसे सन्देह हुआ कि शिवाजी जसवंतसिंह और मुअज्जम से निकट सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। इनकी दिलेरखां के विरुद्ध कार्यवाही साम्राज्य के हित में नहीं थी।[४७] अतः सितम्बर, १६७० में उसने जसवंतसिंह को मुअज्जम से अलग कर दिया। कुछ समय तक उसे बुरहानपुर में रखा गया, जिससे वह उस ओर से मराठों के हमलों को रोक सके।[४८] इसके लिए उसे तीन-चार लाख रुपये भी दिये गये।[४९] साथ में उसे आदेश दिये गये कि वह महाबतखां से सहयोग करे।[५०] अगले वर्ष उसे गुजरात भेज दिया गया।[५१] फिर उसका स्थानान्तरण जमरूद (पेशावर के पास) कर दिया गया।[५२] १० सितम्बर, १६७८ को वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।[५३]

जसवंतसिंह का दक्षिण-अभियान मराठों के प्रति उसकी निष्क्रियता का प्रतीक था। १६६७–६९ की विराम-सन्धि का लाभ वह नहीं उठा सका। जहाँ शिवाजी ने अत्यन्त कूटनीतिक चाल से मुगल सेनापति को निष्क्रिय कर दिया था, वहाँ मुअज्जम और जसवन्तसिंह दोनों शिवाजी की ईमानदारी के प्रति विश्वस्त बने रहे। जसवन्तसिंह और दिलेरखां का व्यक्तिगत द्वेष मुगल प्रतिष्ठा के लिए हानि-प्रद रहा। तत्कालीन मराठा खतरे के प्रति उनकी उपेक्षा ने शिवाजी को शक्तिशाली बना दिया। जसवन्तसिंह को दक्षिण से हटाना बादशाह के लिए अनिवार्य हो गया था, पर साम्राज्य को इसका कुछ भी लाभ नहीं हुआ। मराठों की शक्ति बढ़ती ही गयी।

मुगल-राठौड युद्ध और शम्भाजी

जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद बादशाह ने फरवरी १६७६ में मारवाड को शाही शासन के अन्तर्गत ले लिया। परन्तु शीघ्र ही २६ फरवरी, १६७६ को उसे सूचना मिली कि जसवंतसिंह की गर्भवती रानियों ने लाहौर में सात दिन पूर्व दो पुत्रों को जन्म दिया है। जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद राठौड परिवार का दल जमरूद से जोधपुर की ओर रवाना हुआ। इस दल का नेतृत्व दुर्गादास राठौड कर रहा था। लाहौर में २१ फरवरी को अजीतसिंह और दलथम्भन पैदा हुए। बादशाह ने इस पर विश्वास नहीं किया। उसने उक्त दल को दिल्ली पहुँचने के आदेश भेजे। अतः दुर्गादास रानियों सहित दिल्ली की ओर चला। मार्ग में दलथम्भन की मृत्यु हो गयी। अतः जब जून १६७६ में राठौड दल दिल्ली पहुँचा तो उसके साथ अजीतसिंह रह गया था। इस दल को नूरगढ़ में ठहराया गया। शीघ्र ही दुर्गादास को सन्देह होने लगा कि बादशाह अजीतसिंह को मरवा देगा, अतः मारवाड के भावी शासक की सुरक्षा का उपाय किया जाने लगा। किसी तरह अजीतसिंह को जुलाई में दिल्ली से निकाल कर अरावली पहाडों में भेज दिया गया।

मारवाड के राठौडों ने मुगल-प्रशासन के विरुद्ध युद्ध छेड दिया। दुर्गादास के मारवाड में आ जाने से युद्ध में तीव्रता आ गयी। राठौडों को सीसोदिया शक्ति से भी समर्थन प्राप्त हो गया था, जो कि मुगलों से लड रहे थे। राठौडों को दबाने के लिए बादशाह ने अकबर को नियुक्त किया। दुर्गादास ने अत्यन्त चतुराई से अकबर को अपनी ओर मिला लिया। राठौडों के सहयोग से उसने ३ जनवरी, १६८१ म नाडोल में अपने को बादशाह घोषित किया और अपने पिता के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करनी प्रारम्भ की। इस बीच मेवाड के महाराणा राजसिंह की अक्टूबर, १६८० में मृत्यु हो गयी। उसके पुत्र जगतसिंह ने मुगलों से समझौता कर लिया। राठौडों ने अपना संघर्ष जारी रखा। राठौडों और अकबर की संयुक्त शक्ति प्रबल होने लगी। स्वयं औरंगजेब इनके विरुद्ध अजमेर आया। प्रथम तो राठौडों ने अकबर का साथ दिया पर शीघ्र ही दोराई के युद्ध (जनवरी १६८१) के पूर्व उन्हें सन्देह हो गया कि अकबर का विद्रोह एक मुगल चाल थी, जिससे उन्हें आसानी से कुचला जा सके, अतः वे युद्ध क्षेत्र से हट गये।

दुर्गादास अकबर के प्रति निष्ठावान बना रहा। उसके व राठौड आन्दोलन के सहयोग के लिए उसने मराठों से मदद लेने का निश्चय किया।[४४] औरंगजेब अजमेर में बना रहा।[४५] अतः उस रास्ते से वह दक्षिण नहीं आ सकता था। उसने उदयपुर, जाडोल, छप्पन और सलुम्बर होते हुए दक्षिण की ओर प्रयाण किया। जब वह बांसवाडा पहुँचा तो उसके मार्ग में पुन: रुकावटें आयीं। फिर वह स्वर्णगढ़ की ओर बढ़ा। ९ मई को अकबरपुर के निकट उसने नर्मदा "र की ओर राजपीपला प्रदेश में प्रवेश किया। फिर खानदेश, बगलाना और कोक(का मार्ग पकडा। १ जून १६८१

को वे महाराष्ट्र के राहिड़ी नगर मे पहुँचे ।[५६] बाद मे दुर्गादास, अकबर व उसके ८०० सैनिको ने पाली (पातशाहपुर) मे अपना मुख्यावास बनाया ।[५७]

दुर्गादास व अकबर की दक्षिण-यात्रा ने औरंगजेब को सजग कर दिया। वह स्पष्ट रूप से समझने लग गया था कि दुर्गादास का दक्षिण मे जाने का उद्देश्य अकबर और राठौड़ आन्दोलन के लिए मराठा सहायता प्राप्त करना था। उनके प्रयत्नों को विफल करने के लिए वह सितम्बर १६८१ मे अजमेर से दक्षिण की ओर चला ।[५८] नवम्बर मे वह बुरहानपुर पहुँचा ।[५९] बादशाह की इस नीति का परिणाम राठौड़ आन्दोलन के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। अब राठौड़ युक्ति और समझदारी से काम लेते हुए लम्बे संघर्ष की तैयारियाँ करने लगे।[६०]

प्रारम्भ मे शम्भाजी को दुर्गादास और अकबर का अचानक दक्षिण मे आना सन्देहजनक लगा ।[६१] परन्तु महाराष्ट्र की जनता ने अकबर और राठौड़ नेता का साथ दिया ।[६२] बहुत कम समय मे बिना शम्भाजी की सहायता और सरक्षण के दुर्गादास ने एक मराठा सैनिक टुकड़ी तैयार कर ली ।[६३] शम्भाजी को यह कार्य भी पसन्द नही आया। अतः दुर्गादास को इस प्रकार की गतिविधि न करने के आदेश दे दिये गये ।[६४] शम्भाजी का यह रूखा व्यवहार अधिक दिन तक नहीं रहा। शीघ्र ही उत्तर के इन मेहमानों को खर्च के लिए एक जागीर प्रदान की गयी।[६५] सितम्बर, १६८१ मे अन्नाजी दात्तो द्वारा नियोजित शम्भाजी की हत्या के षडयन्त्र का रहस्योद्घाटन कर दुर्गादास ने शम्भाजी का विश्वास प्राप्त कर लिया।[६६] साथ मे शम्भाजी के प्रिय मत्री कवि कलश से राठौड़ नेता ने पारिवारिक अभिन्नता स्थापित कर ली, जिससे शम्भाजी का विश्वास प्राप्त करने मे सहायता मिली ।[६७] कवि कलश की मध्यस्थता के फलस्वरूप रविवार १३ नवम्बर, १६८१ को शम्भाजी पातशाहपुर मे अकबर और दुर्गादास से मिला ।[६८] हमारे पास इस मुलाकात की विस्तृत जानकारी नही है, परन्तु बाद की घटनाओ से यह अनुमान लगाया जाता है कि मराठा-राठौड़-अकबर गुट के आपसी सहायता समझौते पर हस्ताक्षर हो गये थे। शम्भाजी ने राठौड़ व अकबर के लिए ३०,००० सेना देने का वचन दिया ।[६९] दुर्गादास ने जजीरा के सिद्दियो के विरुद्ध मराठा-अभियान प्रारम्भ करने मे सहायता दी ।[७०] दुर्गादास और अकबर भी मराठों के साथ थे, परन्तु दक्षिण मे बादशाह के आ जाने से शम्भाजी को जजीरा का घेरा उठाना पड़ा तथा अकबर और दुर्गादास के साथ राजगढ लौटना पड़ा ।[७१]

फरवरी १६८२ मे बादशाह को सूचना प्राप्त हुई कि अकबर जोधपुर जाने की योजना बना रहा है। अत उसे कोई उल्लेखनीय उपलब्धि न हो सके इसके लिए वह बुरहानपुर से औरंगाबाद की ओर बढ़ा ।[७२] २२ मार्च, १७८२ को वह औरंगाबाद पहुँचा ।[७३] आमेर महाराजा का समर्थन प्राप्त करने हेतु अकबर ने २२ मई, १६८२ को रामसिंह को पत्र भेजा कि वह उसकी सहायता के लिए सैनिक भेजे ।[७४] शम्भाजी ने कच्छवाहा शासक को लिखा कि वह राठौड़ और अकबर को सैनिक एव वित्तीय

सहायता दे।[75] रामसिंह मुगल बादशाह के विरोध में खड़ा होना नहीं चाहता था, अत उसने इन पत्रों मे की गयी प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान नही दिया।[76] फिर भी शम्भाजी ने रामसिंह से कुछ न कुछ सहायता देने का आग्रह किया।[77] बरसात के बाद दुर्गादास और अकबर एक मराठा सैनिक टुकडी के साथ, जिसका नेतृत्व कवि कलश के पुत्र गणपति और धन्नाजी जादव को दिया गया था, गुजरात की ओर चले।[78] अक्टूबर १६८२ मे राठौडो ने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया।[79]

इस घटना ने औरंगजेब को चौंका दिया। वह स्वयं अहमदाबाद की ओर चला। १० दिन तक उस पर घेरा डाले रखा।[80] बाद मे यह कार्य शाह आलम को सौंप कर वह वापिस औरंगाबाद लौट आया।[81] एक अन्य सेना शाहजादा मुईजुद्दीन के नेतृत्व मे बीदर व नांदेड की ओर भेजी गयी, जिससे कि उस ओर से कोई मराठा सहायता दुर्गादास को नहीं पहुँच सके।[82] मई, १६८३ मे राठौड दुर्गादास ने औरंगजेब से समझौता करना चाहा। इसके अनुसार अकबर को क्षमा व उसे अहमदाबाद की सूबेदारी प्रदान की जानी थी। बादशाह ने इसे अस्वीकार किया।[83] नवाब मुकर्रब खा ने राठौड-अकबर सेना को अहमदाबाद मे बुरी तरह परास्त किया।[84] फलत दुर्गादास व शाहजादा, शम्भाजी के पास भागने को विवश हुए।[85]

इस पराजय से अकबर को भारी आघात पहुँचा। उसे मराठा सहायता की कमजोरी स्पष्ट हो गयी। अत हिन्दुस्तान छोडकर फारस जाने की उसने योजना बनायी।[86] परन्तु दुर्गादास और कवि कलश ने उस पर नवम्बर १६८३ मे दबाव डालकर प्रस्थान के विचार को स्थगित करा दिया।[87] इसी बीच कई मुगल दरबारियों ने अकबर को क्षमा कराने व पुन पद प्रतिष्ठा दिलाने और मुगल सेवा में लाने का प्रयास किया।[88] परन्तु इन प्रयासों का कोई लाभ नहीं हुआ।[89] १६८४-१६८६ के बीच दुर्गादास और अकबर ने उत्तर भारत की ओर जाने के कई प्रयत्न किये परन्तु वे असफल रहे। बादशाह ने इन वर्षों मे बीजापुर और गोलकुण्डा पर अधिकार कर लिया था। अब उसने मराठो के विरुद्ध कठोर कार्यवाही करने की नीति अपनायी। अकबर को अपनी गिरफ्तारी का भय सताने लगा। अतः फरवरी १६८७ मे वह फारस चला गया।[90] इसके बाद दुर्गादास भी मारवाड लौट पड़ा।[91]

राठौडो के लिए मराठा मदद प्राप्त करने के दुर्गादास के प्रयास असफल रहे। उसने ■ वर्ष तक महाराष्ट्र में रहकर मराठो को सिद्दियो, पुर्तगालियो व मुगलो के विरुद्ध संघर्ष में मदद दी। फिर भी वह उनके छत्रपति से कोई ठोस सहायता प्राप्त नहीं कर पाया। शम्भाजी राठौडो की मित्रता का मूल्य समझ नहीं पाया। उसमे अपने पिता की तरह योग्यता नहीं थी और राठौड-आन्दोलन से मराठा स्वतन्त्रता-आन्दोलन को संयुक्त कर उसका नेतृत्व करने की उसमे क्षमता भी नहीं थी। मराठा-राठौड संयुक्त मोर्चे की असफलता का परिणाम १६८७ मे अकबर का विदेश के लिए निर्वासन एवं १६८९ मे मुगलो द्वारा शम्भाजी की हत्या थी। फिर भी औरंगजेब की

दक्षिण नीति राठौडो के लिए वरदान सिद्ध हुई। वे अपना स्थानीय संघर्ष न केवल दृढ़ ही कर सके, बल्कि अन्तिम समय तक मुगलो से सफलतापूर्वक लोहा भी ले सके।

१६८७ म दुर्गादास की वापसी और अजीतसिंह के अज्ञातवास से प्रकट होने से राठौडो के मुक्ति आन्दोलन को बल प्राप्त हुआ। अब राठौड सैनिको ने अजमेर व मारवाड की मुगल चौकियो पर सफलतापूर्वक धावा करना प्रारम्भ किया। १६९०-१६९६ के बीच मारवाड से होकर गुजरात और दक्षिण जाने वाली व्यापारिक वस्तुओ पर उन्होने कर लेना शुरू किया।[९२] औरगजेब के लिए यह कठिन था कि दक्षिण मे मराठो से लड रही मुगल सेना मे से कुछ टुकडियाँ मारवाड की ओर भेज सके। फलत उसने मई १६९८ मे दुर्गादास और अजीतसिंह से समझौता कर लिया। अजीतसिंह को जालौर साचोर और सिवाना का फौजदार बना दिया गया और दुर्गादास को ३,००० का मनसब प्रदान किया गया।[९३] अक्टूबर १७०० ई० मे अजीतसिंह ने बादशाह को ४,००० अश्वारोही सैनिको के साथ अपनी सेवाए दी।[९४] १७०० ई० के बाद राठौड आन्दोलन मे तीव्रता आयी। दक्षिण मे मराठे सबल अभियान करने लगे। राठौडो को इससे प्रेरणा मिली। १७०० १७०२ म दुर्गादास ने गुजरात मे विद्रोह कर दिया।[९५] अजीतसिंह ने कई कारणो से बादशाह के बुलावो की उपेक्षा की।[९६] दोनो ने मुगलो पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया। औरगजेब दक्षिण मे उलझा हुआ था।[९७] अत उसने राठौडो को प्रसन्न रखने की नीति अपनायी। १७०५ म उसन अजीतसिंह को मेडता और दुर्गादास को पुराना मनसब देने की घोषणा की।[९८] राठौडो की ओर से कोई सतोषजनक प्रत्युत्तर नही मिला। १५ मार्च, १७०६ को धन्नाजी जादव ने रतनपुर के स्थान पर मुगलो को बुरी तरह परास्त किया।[९९] अब वे गुजरात मे प्रवेश करन लगे। औरगजेब को मराठा राठौड़ सयुक्त कार्यवाही का सन्देह होने लगा।[१००] एक बार पुन उसने राठौडो का अपनी ओर करने के लिए कदम उठाया। जनवरी १७०७ मे उसने अजीतसिंह को कहला भेजा कि यदि वह गुजरात म मराठो के विरुद्ध मुगल हितो की रक्षा करे तो उसे मारवाड मे प्रशासक के अधिकार दिये जा सकते हैं।[१०१] इसके पूर्व कि अजीतसिंह इसे स्वीकार कर बादशाह को सूचित करता, औरगजेब की ३ मार्च १७०७ को मृत्यु हो गयी। अजीतसिंह ने अवसर पाकर १२ मार्च को जोधपुर पर अधिकार कर लिया।[१०२]

यदि मराठे मुगलो के विरुद्ध १६८९ के बाद शस्त्र नही उठाते तो राठौडो के मुक्ति सग्राम को बल प्राप्त नही होता। दक्षिण मे मराठे और उत्तर मे राठौड सग्रामो ने १६९० से १७०७ ई० तक मुगल राजनीति को बुरी तरह प्रभावित किया। बादशाह दोनों आन्दोलनो को दबाने मे असफल रहा। इससे मुगल राजनीति म कई उतार चढाव आये जिन्होने औरगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य को पतन की ओर उन्मुख कर दिया।

शाहू के समय राठौड और मराठा

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मराठा-राठौड सम्बन्धो पर हमारे स्रोत मौन है। यह इस तथ्य के कारण हो सकता है कि अजीतसिंह १७०७ से १७१० तक अपने राज्य को मुगल साम्राज्य से मुक्त रखने मे व्यस्त रहा[१०३] और छत्रपति शाहू अपनी आतरिक कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने मे लगा रहा। अजीतसिंह ने मई १७१० ई० मे बहादुरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली।[१०४] १७१२ मे जहाँदारशाह से गुजरात की सूबेदारी का फरमान उसे प्राप्त हो गया।[१०५] पर जहाँदारशाह अधिक दिनो तक शासक नहीं रहा। नये बादशाह फर्रुखसियर (१७१२ मे १७१६) मे अजीतसिंह से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित कर लिये। फलस्वरूप १७१४ मे राठौड शासक को गुजरात की सुबेदारी प्राप्त हुई।[१०६] अजीतसिंह जुलाई १७१७ तक गुजरात का सुबेदार रहा।[१०७] ऐसा प्रतीत होता है कि शाहू की मुगलों से मुक्ति[१०८] के बाद के काल मे राठौड-मराठा सम्बन्ध अच्छे बने रहे, क्योकि जब अजीतसिंह ने गुजरात के बहुत से प्रदेश मारवाड मे मिलाने शुरू किये[१०९] तो मराठो ने; जो कि इनके निकट पडौसी थे और जिनका प्रभाव-क्षेत्र सूरत तक फैला हुआ था,[११०]; उनका कोई प्रतिरोध नही किया।

फर्रुखसियर कालीन मुगल राजनीति की उथल-पुथल ने अजीतसिंह के प्रभाव को और बढ़ा दिया। बादशाह अपने वजीर अब्दुल्लाखा और मीरबख्शी हुसैनअली से अप्रसन्न हो गया। ये दोनो सैय्यद बंधु बादशाह के विरोधी बन गये। १७१६ मे हुसैनअली को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा गया, जिससे वह मराठो के प्रभाव को रोक सके। पर हुसैनअली चतुर था। अपनी व अपने भाई की स्थिति को मजबूत करने के लिए उसने फरवरी १७१८ मे पेशवा बालाजी विश्वनाथ से संधि कर ली।[१११] बादशाह ने अजीतसिंह को गुजरात से वापिस बुला लिया। वह उससे सैय्यदो के विरुद्ध सहायता चाहता था। अतः अगस्त–सितम्बर, १७१८ मे उसे काफी सम्मानित किया गया।[११२]

अजीतसिंह एक अनुभवी राजनीतिज्ञ की तरह कुछ समय तो तटस्थ रहा पर बाद मे उसने अपना भाग्य सैय्यद बंधुओ के साथ जोड दिया। उसने वजीर अब्दुल्लाखा को सलाह दी कि हुसैनअली को गुप्त रूप से दिल्ली बुला ले, जिससे कि उसकी स्थिति को कोई आँच न आ सके।[११३] हुसैनअली बालाजी विश्वनाथ की मराठा फौज के साथ ७ फरवरी १७१९ को दिल्ली पहुचा और अजीतसिंह के निवास के समीप उसने अपना शिविर जमाया।[११४] दोनो नेताओं ने गुप्त परामर्श किया। १८ फरवरी को दिल्ली के किले पर दोनो ने अधिकार कर लिया। बालाजी विश्वनाथ को नगर मे विद्रोह दबाने के लिए नियुक्त किया गया।[११५] सभी विद्रोह क्रूरता से दबा दिये गये, जिनमे भारी सख्या मे लोग हताहत हुए।[११६] उसी दिन अजीतसिंह और हुसैनअली ने फर्रुखसियर को गद्दी से हटा दिया और रफीउद-दरजात को

बादशाह घोषित किया।[११७] नये बादशाह के समय अजीतसिंह और सैय्यदों की शक्ति पराकाष्ठा तक पहुँच गयी। उन्होंने जजिया कर समाप्त कर दिया।[११८] मराठों के साथ फरवरी १७१८ में की गयी संधि को बादशाह से स्वीकार करा लिया गया।[११९] अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी पुनः प्राप्त हो गयी। इसके अलावा उसे अजमेर का सूबा भी सौंप दिया गया।[१२०] मार्च १७१९ में मराठा फौज दक्षिण के लिए चल पड़ी। मुगल बादशाहत में कई परिवर्तन किये गये। सितम्बर १७१९ में मोहम्मदशाह को बादशाहत प्राप्त हुई। सैय्यदों के विरुद्ध न सिर्फ बादशाह ही था बल्कि शाही दरबार का प्रमुख भाग भी उनके विरुद्ध हो गया। बादशाह ने दरबार में तूरानी दल से मिलकर ८ अक्टूबर १७२० को हुसैनअली की हत्या करवा दी तथा १३ नवम्बर १७२० को अब्दुल्लाखां को बन्दी बना लिया। उनके सहयोगी अजीतसिंह को गुजरात और अजमेर की सूबेदारी से हटा दिया गया,[१२१] और अन्त में शाही दरबार के निर्देशनों पर २३ जून १७२४ को उसकी हत्या करवा दी गयी।[१२२]

सन्दर्भ

१. दोराई अजमेर से साढ़े चार मील दक्षिण में है।
२. मआसिर-उल-उमरा, ३, पृ० ६००, आलमगीरनामा, पृ० ५६-५७, ३१६-३०; मआसिर-ए-आलमगीर, ७ब; फतूहात-ए-आलमगीरी,४४ब; मुतखब-उल-लुबाब २, पृ० ६५-६६; मीरात-ए-अहमदी-१, पृ० २२४; बर्नियर, पृ० ८६; मनुसी १, पृ० ३३६; नैणसी १, पृ० २७६; मारवाड़ ख्यात १, पृ० २३१।
३. मआसिर-ए-आलमगीरी १५ ब; दिलखुस १, पृ० ४४; फतूहात-ए-आलमगीरी, ५०ब; मीरात-ए-अहमदी-१, पृ० २५३; सियर ४, पृ० १४७; मारवाड़ ख्यात १, पृ० २३१।
४. फ़तूहात-ए-आलमगीरी ५०ब; दिलखुश-१, पृ० ४४; मीरात-ए-अहमदी १, पृ० २५३; सियर ४, पृ० १४; ईश्वरदास के अनुसार वह ५०,००० सेना लेकर गुजरात गया था।
५. राजापुर से गेफॉर्ड का सूरत फैक्ट्री के प्रेसीडेन्ट को पत्र, १२ अप्रैल १६६३ एफ० आर० (सूरत) भाग १०३, पृ० २६८।
६. उपर्युक्त;
७ कासमे-डी-गार्डा ने १६६५ ई० में शिवाजी का जीवन चरित्र लिखा परन्तु इसका प्रकाशन १७३० ई० में हुआ।
८. लाइफ ऑफ सेलिब्रेटेड शिवाजी, पृ० ६४-६६ (एस०एन० सेन कृत फॉरेन बायग्राफीज ऑफ शिवाजी, पृ० ६४ पर अंकित)।
९. ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया, पृ० १८८।
१०. स्टॉरिया-दे-मोगोर २, पृ० १०४।
११. दिलखश १, पृ० ४५।
१२. 'ए हिस्ट्री ऑफ मराठाज' भाग १, पृ० १५४ मे ग्राण्ट डफ; 'ए हिस्ट्री ऑफ मराठा पिपल्स' भाग १, पृ० २०० में किनकेड व पारसनीस, 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स', पृ० ९१ मे यदुनाथ सरकार और 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज', भाग १, पृ० १४४ में जी० एस० सरदेसाई।
१३. मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० ७५-७६।
१४. आलमगीरनामा, पृ० ८१६; मआसिर-ए-आलमगीरी, १७ अ; मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० १७७; सियर ४ पृ० १५।

१५. मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी, १८ ग्र-ब, मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० १७७; सियर-४, पृ० १५।
१६. गैफॉर्ड का सूरत फैक्ट्री के अध्यक्ष को पत्र, १२ अप्रेल १६६३, एफ० आर० (सूरत), भाग १०३, पृ० २६८
१७. सियर-४, पृ० १४।
१८ ऐबेकारे—हिस्ट्री ग्रॉफ शिवाजी, पृ० ६२ (एस० एन० सेन कृत फॉरेन बायोग्राफीज ग्रॉफ शिवाजी, पृ० १६४ में प्रकित)।
१६ ग्रालमगीरनामा, पृ० ८६७, मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० १७७, दिलकशा २, पृ० ४७, राठोड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० १६६, मुंदियाड़ ख्यात (जसवन्तसिंह), पृ० २३१-२३५,
जेध शकावली, शक स० १५८५ मार्गशीर्ष शक स० १५८६, ज्येष्ठ के सदर्भ मे।
२०. फतूहात-ए-ग्रालमगीरी–५२ ग्र, मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी, १८ ग्र-ब, राठोड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० १६७, दोहा २६४।
२१. ग्रालमगीरनामा, पृ० ८८४, मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी, १६ ग्र, राठोड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० १६७, दोहा २६५-२६६; मुंदियाड़ ख्यात (जसवंतसिंह) पृ० २४६-२४७।
२२. ग्रालमगीरनामा, पृ० ८८४; मारवाड़ ख्यात, पृ० २३६।
२३ पारकालदास की दीवान कल्याणदास को रिपोर्ट, ज्येष्ठ बदी ७, वि० स० १७२३। १५ मई १६६६ (वकील रिपोर्ट--जय०), ग्रालमगीरनामा, पृ० ६६१-६६३।
२४. उपर्युक्त,
२५. उपर्युक्त,
२६. ग्रालमगीरनामा, पृ० ६६६, मुन्तखब-उल लुबाब–२, पृ० १८६-१६०।
२७ पारकालदास की दीवान कल्याणदास को रिपोर्ट, ज्येष्ठ सुदी ७, वि० स० १७२३/१५ मई १६६६ (वकील रिपोर्ट, जय०)।
२८ उपर्युक्त, ज्येष्ठ बदी ८, वि० स० १७२३। १६ मई १६६६ (वकील रिपोर्ट जय०)।
२६ उपर्युक्त,
३० बालुकानी को दीवान कल्याणदास की रिपोर्ट, भाद्रपदी सुदी ७, वि० स० १७२३/२६ ग्रगस्त १६६६ (वकील रिपोर्ट, जय०)
३१ उपर्युक्त, चैत्र सुदी १३, वि० स० १७२४/२७ मार्च १६६७, ग्रखबारात, दिनाक २६ शव्वल, १० वां शासन वर्ष। १४ ग्रप्रेल १६६७; मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी, २३ ब, मुन्तखब-उल लुबाब २, पृ० २०७।
३२. ग्रखबारात, दिनांक ११ जिलहज्जा, १० वा शासन वर्ष/२१ जून १६६७,

दिनांक ६ मुहर्रम, १० वां शासन वर्ष । जून १६६७ अय०, आलमगीरनामा, पृ० १०३७; मारवाड़ ख्यात १, पृ० २४०-२४१ ।

३३ सभासद्, ५८ ।

३४ अखबारात २२, जिल्काद, ११, रबी-उल अव्वल और २४ रबी-उल-आखीर, १० वां शासन वर्ष । ६ मई, २१ अगस्त, ३ अक्टूबर १६६७-जय०; दिलखुश, पृ० ६६-७०; सभासद ५८-७१ ।

३५ अखबारात, दिनांक २४, रबी-उल-आखीर, १० वां शासन वर्ष । ३ अक्टूबर १६६७-जय०, दिलखुश-१ पृ० ६६-७० ।

३६ दिलखुश-१, पृ० ६६-६८ ।

३७ मारवाड़ ख्यात-१, पृ० २४१ ।

३८. अखबारात, दिनांक २४, रबी-उल-आखीर, १० वां शासन वर्ष, १३ अक्टूबर १६६७ जय० ।

३६. उपर्युक्त ११, रबी-उल २४, रबी-उल-आखीर, १० वां शासन वर्ष २१ अगस्त व ३ अक्टूबर १६६७ जय, दिलखुश-१, पृ० ६६-७१ ।

४० उपर्युक्त, २४ रबी-उल-आखीर, १०वां शासन वर्ष । ३ अक्टूबर, १६६७ जय० ।

४१ जेधे शकावली, कार्तिक कृष्णा ८ व १३, शक सं० १५८६ के सन्दर्भ में ।

४२ दिलखुश—१, पृ० ७० ।

४३ शिवाजी को मुग्रज्जम का निशान, दिनांक ५ शव्वल, ११ वां शासन वर्ष । १६ मार्च, १६६८ जय० ।

४४ अखबारात, दिनांक २४ रबी-उल-आखीर, १० वां शासन वर्ष, ३ अक्टूबर १६६७ जय० ।

४५ दिलखुश—१, पृ० ७०, सभासद ६१ ।

४६. अखबारात, दिनांक १२ वां शासन-वर्ष । १६६६-जय०; दिलखुश-१, ६४-७१ सभासद २७-३३, जेधे शकावली, श्रावण शक स० १५६१ के सन्दर्भ मे

४७ दिलखुश-१, पृ० १०१, सभासद ६२; ओर्मे पृ० १६५-१६६ ।

४८ एस० मास्टर का सूरत फैक्ट्री के अध्यक्ष को पत्र, १६ दिसम्बर १६७०, एफ० आर० (सूरत) भाग १०५, पृ० ६० ।

४६ उपर्युक्त,

५० ओरिजिनल कारेसपोण्डेन्स (सूरत से बम्बई) भाग ३१ न० ३५४७, दिनांक २८ जनवरी १६७१ (इंगलिश रिकार्ड्स ऑन शिवाजी, पृ० १८० मे [illegible] कित) ।

५१. फतूहात-ए-आलमगीरी ६० ब. दिलखुश भाग १, पृ० १०१, मीरात-ए-अहमदी—१, पृ० २७६ ।

५२ मग्रासीर-ए-ग्रालमगीरी, पृ० १०९ ।

५३ उपर्युक्त पृ० १७१; मुन्तखब-उल-लुबाव-२, पृ० २५९ ।

५४ मग्रासीर-ए-ग्रालमगीरी, पृ० १७२-१६८, २०७-२०८; फतूहात-ए-ग्रालमगीरी ७२ ब, ७३ ब, ७६ ग्र, ब, ७७ ग्र-ब, ८० ग्र, ८३ ब; मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ३५५-२७०; सियर-४, पृ० १५२, ग्रजितोदय सर्ग ६, पद १-४, २६, २७, ६६, ६१, ६३ सर्ग-११, पद ४-७, २४-२५; ग्रजीतग्रन्थ पद, ३३१, ४३७, ६१४, १४८६-१४८७; राजरूपक-२, पृ० २६,३०, प्रकाश ६, पृ० ६२, डा० जी० एन० शर्मा, मेवाड एण्ड द मुगल्स १६६-१८० ।

५५ मुन्तखब-उल-लुबाब-१, पृ० २६६-२७० ।

५६ मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी, पृ० २०३-२०६, मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० २७५ २७७, (पंजाब के रास्ते से राह ग्र कित करता है), फतूहात-ए-ग्रालमगीरी, ८३ ब, जेधे शकावली, ज्येष्ठ १६०३ के सन्दर्भ में, ग्रजीत ग्रन्थ पृ० ६३० पद १४२५, ग्रोमें पृ० १०४

५७ ग्रखबारात, दि० ११ शव्वल, २४ वाँ शासन वर्ष । १७ ग्रगस्त १६८१-जय०, सियर ४, पृ० १६३, ग्रोमें पृ० १०४, पाली रायगढ़ से २५ मील दूर है ।

५८ मग्रासिर-ए-ग्रालमगीरी ७६ ब ।

५९ मुन्तखब-उल-लुबाब २ पृ० २७८ ।

६० ग्रजितोदय सर्ग-१२ ।

६१ उपर्युक्त सर्ग-११ पद २७ ।

६२ ग्रोमें, पृ० २७० ।

६३ ग्रखबारात, दि० ११ शव्वल, २४ वाँ शासन वर्ष । १७ ग्रगस्त १६८१-जय०, ग्रोमें, पृ० १०५ ।

६४ ग्रखबारात, दि० ११, शव्वल, २४ वां शासन वर्ष । १७ ग्रगस्त १६८१— जय० ।

६५ उपर्युक्त, सियर ४, पृ० १५३, ग्रोमें पृ० २७० के ग्रनुसार दुर्गादास ने ग्रपना गुजारा ग्रकबर द्वारा लाये गये रत्नो से किया ।

६६ ग्रोमें, पृ० १०५ ।

६७ ग्रजितोदय, सर्ग ११, पृ० २७ ।

६८ जेधे शकावली कार्तिक शुक्ला १३/१६०३ के सन्दर्भ में, ग्रजितोदय, सर्ग-११, पद २८, (इसमे शम्भाजी द्वारा ग्रकबर ग्रौर दुर्गादास के स्वागत का वर्णन है ।), ग्रजीत ग्रन्थ, पद १४२५-१४२६ ।

६९ ग्रोमें पृ० १०५-१०६ ।

७० उपर्युक्त पृ० १०६-११० ।

७१ उपर्युक्त, पृ० ११० ।

७२. कंवलसेन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट (फारसी) १५ सफर २५ वाँ शासन-वर्ष । १३ फरवरी १६८२ (वकील रिपोर्ट जय०)
७३. मुन्तखब-उल-लुबाब, भाग २, पृ० २७६ ; अजीत ग्रन्थ पद १४१७–१४१८
७४. अकबर का रामसिंह (जयपुर महाराजा) को पत्र, दि० २४ जमाद-उल-अव्वल, हि० १०९३/२२ मई १६८२—जय०
७५. शम्भाजी का रामसिंह को पत्र, संख्या १२३, १२५ (तिथि नहीं है)—जय०
७६. उपर्युक्त
७७. उपर्युक्त
७८. कंवलसेन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट (फारसी) दि० २६ शव्वल, २५ वा शासन-वर्ष २१ अक्तूबर १६८२ (वकील रिपोर्ट—जय०); अजितोदय, सर्ग १३, पद १–२; मारवाड़ ख्यात-२. पृ० ५०
७९. कंवलसेन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट, दि० १७ जिल्काद, २६ वां शासन-वर्ष ७ नवम्बर १६८२ (वकील रिपोर्ट–जय०)
८०. उपर्युक्त, दिनांक जिल्काद–२६ वाँ शासन-वर्ष । १ नवम्बर १६८२ जय०
८१. उपर्युक्त, दि० १७ जिल्काद–२६ वाँ शासन-वर्ष । ७ नवम्बर १६८२ जय०
८२. मआसिर-ए-आलमगीरी, पृ० २२४
८३. कंवलसेन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट (फारसी), दिनांक १७ जमाद-उल आखिर २६ वाँ शासन-वर्ष । ४ मई १६८३ (वकील रिपोर्ट) जय०
८४. अजितोदय, सर्ग १३, पद ३
८५. उपर्युक्त, पद ६–८
८६. ओर्म पृ० १२३–१२५
८७. उपर्युक्त
८८. मनूची–२, पृ० २५८-२५६
८९. उपर्युक्त
९०. जेधे शकावली, फाल्गुन १६०८ शक के संदर्भ में, ओर्म, पृ० २६२
९१. अजितोदय, सर्ग १३, पद १०–१३; अजीत ग्रन्थ पद १४२८, १५०३–१५१०; दुर्गादास जावड (जहा उसने नर्मदा पार की) मालपुरा, रेवाड़ी, रोहतक, मुण्डाना होता हुआ मारवाड गया ।
९२. फतूहात-ए-आलमगीरी, १२१ अ; अजितोदय, सर्ग–१३, पद १३-१४, सर्ग-१६ (अन्य प्रतिरोधों के लिए) सर्ग १५ पद १८–२७; अजीत ग्रन्थ पृ० ३१५, ३२६, ४०५, ४०८; राजरूपक, प्रकाश १७ पद २८, ५६ पृ० २६७, ३०५

९३. मग्रासिर-ए ग्रालमगीरी पृ० ३६५; फतूहात ए ग्रालमगारी १६७ ग्र-१६८ ब, मीरात-ए ग्रहमदी १, पृ० ३३८; ग्रजितोदय सर्ग–१५, पद ५; राजरूपक, प्रकाश २१, पद १३७–१४६ पृ० ३४६-३५१, दुर्गादास ने बादशाह को लिखा कि वह ग्रजीतसिंह के साथ उससे मिलने दक्षिण की ओर ग्राएगा। बादशाह को शका हुई कि दुर्गादास के दक्षिण मे ग्रा जाने से कही राठोड-मराठा मैत्री पुन जीवित न हो जाए ग्रत उसने दुर्गादास को लिख भेजा कि वार्ता का स्थान जोधपुर ही उपयुक्त रहेगा (राजरूपक, प्रकाश-१६, पृ० २५०, पद १४४)

९४. ग्रखबारात दि० १५ जमाद ग्रल ग्राखीर, ४५ वा शासन वर्ष । १६ नवम्बर १७०० जय०

९५ मीरात-ए-ग्रहमदी–१, पृ० ३४८-३५६

९६ उपर्युक्त, पृ० ३४४-३४८

९७ मुन्तखब उल लुबाब २, पृ० ५२१-५२७

९८. मीरात-ए ग्रहमदी-१, पृ० ३७७

९९. मुन्तखब-उल लुबाब-११, पृ० ५१८, ५१६, मीरात ए-ग्रहमदी भाग १, पृ० ३७८ ३८३

१००. इस समय दुर्गादास ग्रौर ग्रजीतसिंह ने तीसरी बार बादशाह के विरुद्ध विद्रोह किया (मीरात-ए-ग्रहमदी-१ पृ० ३६०, ३६४)

१०१ ग्रखबारात, ७, जिल्काद, ५१, शासन वर्ष । ३१ जनवरी, १७०७ जय०

१०२. मीरात-ए-ग्रहमदी-१, पृ० ३०७, ग्रजितोदय सर्ग १७, पद ११, राजरूपक प्रकाश-२२, पद-१६, पृ० ४०७

१०३ ग्रजितोदय सर्ग १७ ग्रौर १८ (सम्पूर्ण) १६, पद १०३

१०४ बहादुरशाह का फरमान, दि० ४ रबी-उल ग्राखीर, हि० ११२२ । ६ मई १७१० रा० ३ जोधपुर, ग्रखबारात दि० २४ रबी उल ग्राखीर, ४ था शासन वर्ष । ४ जून १७१० जय०, मुन्तखब-उल-लुबाब-२ पृ ६०५-६०७, ग्रजितोदय सर्ग १६ (सम्पूर्ण), सियर-१, पृ० ६७

१०५ ग्रखबारात दी० २५ शव्वल, १ ला शासन वर्ष । १२ नवम्बर, १७१२ ग्रौर दि० ७, जिल्काद, १ ला शासन वर्ष । २५ नवम्बर १७१२, जगजीवन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट (राजस्थानी) मार्गशीर्ष वदी ६, वि० स० १७६६ । ११ नवम्बर १७१२ (वकील रिपोर्ट—जय०)

१०६ जगजीवन की महाराजा जयपुर को रिपोर्ट (राजस्थानी) दि० कार्तिक वदी वि० स० १७७० । २७ सितम्बर १७१३ (इसमे ग्रजीतसिंह ग्रौर सैय्यद बन्धुग्रो के गुप्त सबधो का उल्लेख है), दि० वैशाख वदी १, वि०स० १७७१, २१ मार्च, १७१४ (हुसेन ग्रली के मारवाड की ग्रोर कूच का वर्णन है), दि० ज्येष्ठ सुदी वि० स० १७७१ । मई, १७१४ (ग्रजीतसिंह

का फर्रुखसियर से सम्बन्ध व्यक्त करता है); द्वितीय आषाढ़ सुदी ९, वि स १७२१। १० जुलाई १७१४ (हुसेन अली अभयसिंह को लेकर मुगल दरबार में उपस्थित होता है); वकील रिपोर्ट-जय०। फर्रुखसियर ने अजीतसिंह को गुप्त रूप से लिखा कि वह हुसैनअली की हत्या करवादे। अजीतसिंह ने इस पत्र को हुसैनअली को बता दिया। सैय्यद ने अजीतसिंह को गुजरात की सूबेदारी दिलाने का विश्वास दिलाया। १७१४ में शासक को सूबेदारी का हुक्म प्राप्त हो गया (अजितोदय सर्ग २०, पद २९; राजरूपक प्रकाश-२९, पद ४३, पृ० ४७०। राजरूपक इस स्थान पर अभयसिंह को गुजरात का सूबेदार लिखता है। यह गलत है।)

१०७ मीरात-ए अहमदी-१, पृ० १२; अजितोदय सर्ग २४, पद ४०, मारवाड़ री ख्यात-११, पृ० १०६

१०८ मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ५८२

१०९ मीरात-ए-अहमदी-२, पृ० १-१२, २८-३५, अजितोदय सर्ग २२ (सम्पूर्ण), २३ पद १-३५, राजरूपक, प्रकाश-२७ पद १-२८, पृ० ४७५ से ४७७, पद ४२, पृ० ४९३,

११० मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ७७७-७७८

१११ उपर्युक्त पृ० ७८४, आई० एच० आर० सी० प्रोसीडिंग्ज (१९४०) पृ० २०४-२१२ म डा० ए० जी पँवार का लेख, 'सम ओरिजनल डाक्युमेंट्स ऑफ मुगल मराठा रिलेशन्स'

११२ अजीतसिंह का दयालदास को पत्र, ज्येष्ठ वदी ११, वि० स० १७७५/४ मई १७१९, भाद्रपदी सुदि ७, वि० स० १७७५।२२, अगस्त १७१८, जोध, महाराणा संग्रामसिंह का अजीतसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष सुदी १०, वि० स० १७७५।९ नवम्बर १७१८, पोर्ट फोलियो न० २ खरीता न० १६, जोध०, मुन्तखब उल लुबाब-२, पृ० ७९२ (इसके अनुसार अजीतसिंह को अहमदाबाद से दिल्ली आने के लिए लिखा गया), मीरात-ए अहमदी के अनुसार उस समय अजीतसिंह जोधपुर मे था। वहाँ से वह दिल्ली पहुँचा (भाग २, पृ० १२), अजितोदय, सर्ग २६, पद ५०, राजरूपक प्रकाश-३१, पद ६१-६४ पृ० ५०८-५०९

११३ अजीतसिंह का दयालदास को पत्र, ज्येष्ठ वदी ११, वि० स० १७७५। ४ मई १७१९, जोध०

११४ उपर्युक्त, मुन्तखब-उल-लुबाब २ पृ० ८०४

११५ महाराजा अजीतसिंह का दयालदास को पत्र, ज्येष्ठ वदी ११, वि० स० १७७५। ४ मई १७१९ जोध०; मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ८०५; अजितोदय सर्ग २, पद २३, ४१-४७, सियर-१, पृ० १३२

११६ मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ८१२-८१३; अजितोदय सर्ग-२७ पद ४६-५०; सियर-१, पृ० १३२-१३३; मराठों के लगभग १५०० से २००० सिपाही मारे गये।

११७. महाराजा अजीतसिंह का दयालदास को पत्र, दि० ज्येष्ठ बदी ११ वि० सं० १७७५। ४ मई १७१६ जोध०; मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ८१४-८१६, अजितोदय सर्ग २७, पद ४८-५१

११८. महाराजा अजीतसिंह का दयालदास को पत्र, ज्येष्ठ बदी ११, वि० सं० १७७५। ४ मई १७१६ जोध०; राणा संग्रामसिंह का अजीतसिंह को खरीता (तिथि नहीं दी गयी है) पो०फो० नं० २, खरीता नं० १७, जोध०; मुन्तखब-उल-लुबाब-२, पृ० ८१६; सियर-१, पृ० १३६

११६ आई० एच० आर० सी० (प्रोसीडिंग्ज) १६४०, पृ० २०४-२१२ में डा० ए० जी० पँवार का लेख 'सम ओरिजनल डोक्युमेन्ट्स ऑफ मुगल-मराठा रिलेशन्स'।

१२०. मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० ८३८; अजितोदय सर्ग २७, पद ५७, सियर-१, पृ० १३८, २३१

१२१. मुन्तखब-उल-लुबाब २, पृ० ८३७; मीरात-ए-अहमदी-२, पृ० ३८

१२२. अजितोदय सर्ग ३१, पद ३२-३३; मारवाड़ री ख्यात-२, पृ० १२३

अध्याय २

मारवाड़ में मराठों के प्रभाव का उषःकाल

(१७२४–१७४९ ई०)

अभयसिंह एवं गृह-युद्ध

अजीतसिंह की हत्या से, जो उसके पुत्र बखतसिंह ने २३ जून १७२४ को की थी, उसके पुत्रों में राज्य-गद्दी प्राप्त करने के लिए गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया। मुगल सम्राट् मोहम्मदशाह ने उसके बड़े पुत्र अभयसिंह को मारवाड़ का शासक स्वीकार कर लिया तथा २५ जुलाई १७२४ को इस सम्बन्ध में फरमान भी जारी किया[1], परन्तु अजीतसिंह के छोटे पुत्रों ने इसे स्वीकार नहीं किया। उनमें से आनन्दसिंह और रायसिंह ने विद्रोह कर दिया। उन्हें जेतावत, कूंपावत और ऊदावत राठोडों का समर्थन प्राप्त था। उनकी प्रारम्भिक सफलताएं शानदार रहीं। शीघ्र ही गोडवाड़, सोजत एवं जैतारण क्षेत्र पर अपना अधिकार करने में वे सफल हो गये।[2] उन्होंने मेड़ता पर धावा बोल दिया तथा उसके चारों तरफ के क्षेत्र को लूटना शुरू कर दिया।[3] उनकी बढ़ती हुई शक्ति के कारण जोधपुर को भी खतरा हुआ। दिल्ली में अभयसिंह ने अपने दीवान भण्डारी रघुनाथ[4] को पत्र लिखा कि वह विद्रोहियों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए। भण्डारी को जयपुर के शासक जयसिंह ने भी सहायता का आश्वासन दिया। उसने अपने सेनापति राम शिवदास को आदेश दिया कि भण्डारी की सहायता के लिए प्रस्थान करे।[5] जयपुर-शासक ने उदयपुर के महाराणा को १३ नवम्बर १७२४ को पत्र लिख कर मारवाड़ की राजनीति से अवगत कराते हुए सूचित किया कि स्थिति इतनी गम्भीर हो चुकी है कि मुगल सम्राट् ने अभयसिंह को मारवाड़ जाने के आदेश दे दिये हैं।[6] उसने महाराणा से प्रार्थना की कि वह अभयसिंह की सहायता के लिए सीसोदिया सैनिकों को भेजे।[7] दिल्ली से प्रस्थान करने के पूर्व अभयसिंह ने मुगल सम्राट् को विश्वास दिलाया कि वह सम्राट् के प्रति निष्ठा बनाये रखेगा एवं आवश्यकता पड़ने पर मुगल सेना के लिए बीस से तीस हजार राठौड़ सैनिक[8] भेजेगा। परन्तु उसके खर्चे के लिए उसने मुगल कोष से नकद या जागीर की मांग की, जिसे बादशाह ने स्वीकार किया।[9] अभयसिंह ने आमेर एवं मेवाड़ के शासकों की सैनिक सहायता प्राप्त कर भाइयों के विद्रोह को दबा दिया। १७२५ के प्रारम्भ में उसका राज्याभिषेक पारम्परिक रीति से किया गया।[10] आनन्दसिंह और रायसिंह गुजरात

भाग गये।[11] बख्तसिंह ने अभयसिंह का समर्थन किया, जिससे फलस्वरूप नागौर का प्रशासन जो कि मुगलों ने अभयसिंह को सौंपा था, बख्त के हवाले कर दिया गया।[12]

इसी बीच गुजरात की राजनैतिक स्थिति मुगल दरबार के लिए एक भयकर समस्या बनती जा रही थी। जनवरी १७२५ में निजाम-उल-मुल्क के स्थान पर सरबुलन्दखा को गुजरात का सूबेदार बनाया गया। नये सूबेदार ने अपना कार्य सँभालने मे देरी की। उसने स्थिति सँभालने के लिए सुजातखा को अपना नायब बना कर भेजा। निजाम-उल-मुल्क को यह परिवर्तन अपमानजनक लगा। उसने अपने चाचा हमीदखा को, जो कि गुजरात मे निजाम का प्रतिनिधि था, आदेश दिया कि इस परिवर्तन का विरोध करे। उसने मराठो से भी सहायता प्राप्त कर ली। इसके लिए उसे वचनबद्ध होना पड़ा कि वह गुजरात और मालवा में उनके प्रसार मे रुकावटें नही डालेगा।[13] मराठो ने इन क्षेत्रो से चौथ और सरदेशमुखी एकत्र करनी प्रारम्भ कर दी। बादशाह ने सरबुलन्दखा को आदेश दिया कि वह गुजरात जाकर शासन का भार स्वयं सँभाले। इसके साथ ही उसने जोधपुर के शासक अभयसिंह को भी फरमान भेज कर आदेश दिया कि वह शीघ्र ही सरबुलन्दखा की सहायता के लिए प्रस्थान करे।[14] सरबुलन्दखा ने अप्रैल १७२५ मे दिल्ली से प्रस्थान किया। अभयसिंह स्वयं नही गया बल्कि कच्छवाह एव सीसोदिया फौजों को गुजरात की ओर रवाना कर दिया।[15]

गुजरात मे राठौडो का विशेष स्वार्थ था। अजीतसिंह ने गुजरात की सूबेदारी के काल मे कई क्षेत्रो पर अपना अधिकार कर लिया था। उसके शब्दो में 'वृहत् मारवाड़ की सीमा गुजरात के समुद्र-तटो तक फैली हुई है।' अभयसिंह गुजरात की सूबेदारी पर ताक लगाए हुए था। इसलिए उसे सरबुलन्दखा को नायब बनाकर गुजरात भेजे जाने का आदेश उचित नही लगा। मारवाड की राजनैतिक स्थिति मे अपनी उपस्थिति आवश्यक बताकर उसने शाही फरमान की अवहेलना प्रारम्भ की। किन्तु उसमे खुला विरोध करने की शक्ति न थी। अतः अपने पास स्थित कच्छवाही और सीसोदिया फौजों को गुजरात भेज देने के जयसिंह के प्रस्ताव को उसने स्वीकार कर लिया। इसके साथ ही उसने इन फौजों के सेनापतियों को गुप्त आदेश दिये कि वे ईडर की, जो बादशाह ने उसे जागीर के रूप मे दिया था, मराठों से रक्षा करें। इन फौजो ने सफलतापूर्वक मराठो का सामना किया और ईडर को राठौड़-अधिकार मे बनाये रखा।[16] अभयसिंह को शीघ्र ही इस प्रकार के सैनिक अभियान से वंचित होना पड़ा। जयसिंह और महाराणा उदयपुर के आपसी पत्रो[17] से मालूम होता है कि दोनो के बीच एक गुप्त समझौता हो गया, जिसके अनुसार ईडर को मेवाड मे मिला देना तय हुआ। इसकी सूचना जब अभयसिंह को मिली तो उसने माँग की कि मेवाडी और आमेरी फौजें ईडर से हटा ली जाएँ। परन्तु, जयसिंह और महाराणा दोनो ने, ऐसा करने से इन्कार कर दिया क्योंकि उनका ख्याल था कि ऐसा करने से

ईडर पर मराठों का आक्रमण और बढ़ जाएगा और जो सफलता उन्हें प्राप्त हुई थी वह निरर्थक हो जाएगी।[१८]

इस परिस्थिति के उपरान्त अभयसिंह मारवाड़ से प्रस्थान करने को तैयार नहीं हुआ। उसने अपनी पारिवारिक परिस्थितियों का बहाना बनाया[१९] और फिर माग की कि बादशाह उसे पहले धन दे तो वह पूरी सेना सहित प्रस्थान कर सकता है। अन्यथा वह चार सौ से पांच सौ सैनिक ही गुजरात भेज सकता है।[२०] अभयसिंह के इस आचरण से मुगल दरबार में उसकी कड़ी आलोचना होने लगी। २ दिसम्बर १७२५ का जयसिंह ने अभयसिंह को एक पत्र लिखकर अवगत कराया कि यदि वह गुजरात की ओर प्रस्थान नहीं करता है और दो हजार सैनिक नहीं भेजता है तो बुरे परिणामों के लिए उसे तैयार रहना चाहिए।[२१] उसने यह इशारा भी किया कि यदि वह गुजरात की ओर प्रस्थान करेगा तो उस वित्तीय सहायता शीघ्र दे दी जाएगी।[२२] जयसिंह के दबाव और मुगल दरबार द्वारा कठोर कार्यवाही के कारण अभयसिंह गुजरात जाने के लिए तैयार हो गया। उसने २२ नवम्बर १७२५ को गुजरात के लिए प्रस्थान किया।[२३] उसने जालौर के मार्ग से जाने का निश्चय किया।[२४] जोधपुर का प्रशासन वख्तसिंह और दीवान रघुनाथ को सौंपा गया।[२५] अभी वह जालौर की ओर बढ़ ही रहा था कि 'दीवान रघुनाथसिंह ने उसे सूचित किया कि आनन्दसिंह मराठों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर रहा है और उनकी सहायता से वह जोधपुर पर आक्रमण करने की योजना बना रहा है।' अभयसिंह ने आगे बढ़ना उचित नहीं समझा। वह जोधपुर लौट पड़ा और जयसिंह को इस सम्बन्ध में सूचना भेज दी।[२६]

आनन्दसिंह और रायसिंह ने मराठों की सहायता से ईडर लेना चाहा। १७२५ में उनके धावे ईडर पर होने लगे।[२७] यद्यपि वे अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सके तथापि उनके लगातार आक्रमणों के कारण ईडर से प्राप्त राजस्व समाप्त हो गया।[२८] मार्च १७२६ में दोनों भाइयों ने मराठा-सहायता से जोधपुर पर आक्रमण करने की योजना बनायी।[२९] मारवाड़ में मराठों के प्रवेश की आशंका से अभयसिंह घबरा उठा अत उसने जयसिंह के द्वारा बादशाह को सूचित किया कि मारवाड़ में मराठों के प्रवेश को रोकने के लिए उसकी उपस्थिति वहाँ जरूरी है।[३०] नई परिस्थितियों के कारण मुगल बादशाह ने अभयसिंह को गुजरात-अभियान के दायित्व से मुक्त कर दिया।[३१]

ईडर के प्रश्न को लेकर महाराणा और अभयसिंह के बीच मतभेद बढ़ने लगे। जयसिंह ने प्रस्ताव किया कि दोनों भाइयों को गुजरात में अभयसिंह की जागीर देकर झगड़ा शान्त किया जाय, परन्तु अभयसिंह को यह मान्य नहीं था।[३२] फिर जयपुर के शासक ने सुरक्षा हेतु ईडर को महाराणा को सौंप देने की बात चलायी। अभयसिंह इसके लिए इस शर्त पर राजी हो गया कि उदयपुर के शासक किसी तरह आनन्दसिंह और रायसिंह की हत्या करवा दें।[३३] इतना ही नहीं उसने महाराणा को वचन

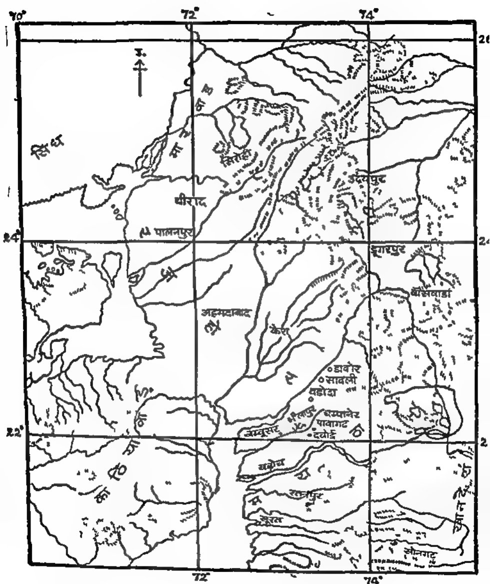
दिया कि यदि यह कार्य सम्पन्न हो गया तो वह मेवाड़ पर मराठा आक्रमण[३४] के विरुद्ध राणा को सैनिक सहायता भी देगा।[३५]

महाराणा ने इसे स्वीकार किया। ईडर पर उसने अधिकार कर लिया परन्तु वह दोनों भाइयों की हत्या नहीं करवा सका।[३६] इन दोनों ने सिरोही होते हुए मारवाड़ की ओर बढ़ना शुरू किया। मार्ग में महाराणा के प्रदेश को भी लूटा।[३७] आनन्दसिंह और रायसिंह एवं मराठों के आक्रमण का सामना करने के लिए अभयसिंह ने बखतसिंह के नेतृत्व में एक सेना भेजी। महाराणा ने भी अपनी फौजें सीमा पर तैनात कर दीं।[३८] बखतसिंह को गुप्त आदेश दिये गये कि वह सीसोदियों की फौजों से मिलकर आनन्दसिंह का रास्ता रोके।[३९] परन्तु महाराणा अपने वचन पर दृढ़ नहीं रह सका। उसने आनन्दसिंह से समझौते की गुप्त वार्ता के लिए सन्देशों का स्वागत किया।[४०] अभयसिंह इससे नाराज हो गया। महाराणा से उसके सम्बन्ध टूट गये। १७२० में कन्या जी और पीलाजी ने जालौर के रास्ते से मारवाड़ पर आक्रमण किया।[४१] अभयसिंह ने भण्डारी खीवसी को उनका सामना करने को भेजा।[४२] खीवसी ने महाराजा को मराठों से समझौता करने की राय दी। एक ओर आनन्दसिंह का सिरोही के रास्ते से आक्रमण, दूसरी ओर महाराणा का विरोधी हो जाना तथा ईडर पर उसका अधिकार बना रहना; इन परिवर्तित एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में अभयसिंह ने खीवसी की राय को स्वीकार कर लिया।[४३] पीलाजी व कन्याजी को भारी धन-राशि देकर उनके आक्रमण से मारवाड़ को बचा लिया।[४४] महाराणा के आचरण से वह क्षुब्ध हो गया था अतः अगस्त १७२८ में उसने जयसिंह की राय स्वीकार कर ली कि ईडर आनन्दसिंह को देकर गृह-युद्ध समाप्त कर दिया जाय।[४५]

गुजरात में अभयसिंह

(i) नये सूबेदार की समस्या-मराठा आतंक

१७२५ के बाद पेशवा बाजीराव की उत्तर की ओर प्रसार की नीति के कारण मालवा तथा गुजरात में मराठों प्रभाव बढ़ने लगा। गुजरात में सेनापति दाभाड़े का प्रभाव-क्षेत्र था। उसके प्रतिनिधि पीलाजी गायकवाड़ और कन्थाजी व दे मुगल सल्तनत के लिए सर-दर्द बन रहे थे।[४६] सरबुलन्दखा को जब १७२५ में सूबेदार बनाया गया था, तो यह आशा की गयी थी कि वह गुजरात से मराठों को बाहर निकाल सकेगा। जोधपुर के महाराजा अभयसिंह को आदेश दिये गये कि वह सरबुलन्द की सहायता के लिए प्रस्थान करे, परन्तु जोधपुर-शासक ने किसी प्रकार की सहायता नहीं दी। उधर मराठों आतंक बढ़ता ही गया। अत: बाध्य होकर सरबुलन्द ने फरवरी १७२७ में पीलाजी व कन्याजी से समझौता कर लिया, जिसके फलस्वरूप गुजरात की चौथ-वसूली का अधिकार दामाडे को दे दिया। १७३० में उसने चिमनाजी अप्पा के साथ सन्धि कर ली।[४७] इस सन्धि के अनुसार मुगल सूबेदार ने बाजीराव पेशवा को गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया।



चित्र 3 गुजरात मे राठौड व मराठो के प्रभाव क्षेत्र

सरबुलन्द का ऐसा विश्वास था कि फरवरी १७२७ व १७३० की सन्धियों के कारण गुजरात की चौथ-वसूली के लिए सेनापति दाभाडे व पेशवा बाजीराव के बीच संघर्ष होगा जिससे मराठा प्रभाव को रोकने म वह सफल हो सकेगा। परन्तु इन समझौतों की मुगल दरबार में प्रतिक्रिया होने लगी। ऐसा विश्वास उभरने लगा कि मराठों की सहायता से सरबुलन्दखा अपने लिए गुजरात मे एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बना रहा है। अतः उसे शीघ्र ही पदच्युत कर दिया गया। महाराजा अभयसिंह को नया सूबेदार नियुक्त किया गया। अब तक महाराजा अपने भाइयो के संघर्ष से मुक्त हो चुका था। एक बड़ी सेना लेकर जिसमें २०,००० सैनिक, चालीस तोपें, २०० मन बारूद और सौ मन शीशा था, महाराजा ने मार्च ८, १७३० को जोधपुर से प्रस्थान किया।[४८]

अभयसिंह की नियुक्ति से सरबुलन्दखां को बुरा लगा। उसने उसे कार्य-भार सौंपने से इन्कार कर दिया। इस पर दोनो के बीच साबरमती के किनारे १० अक्टूबर, १७३० को भयकर युद्ध हुआ।[४९] सरबुलन्द हार गया। उसे गुजरात छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।[५०] सरबुलन्द की २७३ तोपो पर राठौडों अधिकार हो गया।[५१] शीघ्र ही महाराजा ने गुजरात के २२ जिलो पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[५२] परन्तु मराठा का २८ जिलो पर अधिकार बना रहा। वहा पीलाजी गायकवाड का आदेश चलता था।[५३] पावागढ पर चिमनाजी का अधिकार था। कन्थाजी ने चपानेर पर अपनी स्थिति मजबूत कर रखी थी।[५४] अभयसिंह को गुजरात में मुगल सत्ता को प्रभावशाली बनाने के लिए अभी कठिनाइयो का सामना करना था। सूबे का प्रशासन अस्त व्यस्त हो चुका था।[५५] मराठे अरयस्त निडरता से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करते थे। मुगल क्षेत्रो मे उनकी इच्छानुसार भूमि कर की वसूली होती थी। कई क्षेत्रों पर उनका प्रत्यक्ष प्रशासन था। खरीफ की फसल नष्ट हो चुकी थी। इजारेदारो ने किसानो से वसूली कर ली थी परन्तु राज्य-कोष खाली था। सायर से आय प्राप्त नहीं हो रही थी। व्यापार शिथिल अवस्था में था। राजनैतिक अव्यवस्था एव मराठी आतंक के कारण व्यापारी वर्ग भाग गया था। सरबुलन्दखा काफी धन अपने व्यक्तिगत कार्यों मे खर्च कर गया था। रबी की फसल की आंशिक रूप से ही खेती की जा रही थी। सेना को वेतन का भुगतान करना था। अभयसिंह ने खानदौरां को सूचना भिजवायी[५६] कि एक प्रभावशाली प्रशासन स्थापित करने एव सशक्त सेना रखने के लिए उसे आठ माह तक १० से १२ लाख रुपये प्रति माह वित्तीय सहायता चाहिए। इसके अतिरिक्त मराठी प्रभाव को समाप्त करने के लिए योग्य व अनुभवी सेनापतियो को भेजने के लिए भी लिखा।[५७] मुगल दरबार और वजीर की ओर से शीघ्र कोई प्रत्युत्तर नहीं आया।[५८] इससे स्थिति और बिगड़ने लगी। मराठो ने नवम्बर १७३० म बड़ौदा, दमाई व जम्बुसर पर जिनकी आय ३० लाख रुपये थी, अधिकार कर लिया।[५९]

केन्द्र की उदासीनता से अभयसिंह परेशान था, परन्तु १७३० के अन्त मे गुजरात

सरबुलन्द का ऐसा विश्वास था कि फरवरी १७२७ व १७३० की संधियों के कारण गुजरात की चौथ-सरदेशमुखी के लिए सेनापति दाभाड़े व पेशवा बाजीराव के बीच संघर्ष होगा जिससे मराठा प्रभाव को रोकने में वह सफल हो सकेगा। परन्तु इन समझौतों की मुगल दरबार में प्रतिक्रिया होने लगी। ऐसा विश्वास उभरने लगा कि मराठों की सहायता से सरबुलन्दखां अपने लिए गुजरात में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने की योजना बना रहा है। अतः उसे शीघ्र ही पदच्युत कर दिया गया। महाराजा अभयसिंह को नया सूबेदार नियुक्त किया गया। अब तक महाराजा अपने भाइयों के संघर्ष से मुक्त हो चुका था। एक बड़ी सेना लेकर जिसमें २०,००० सैनिक, चालीस तोपें, २०० मन बारूद और सौ मन सीसा था, महाराजा ने मार्च ८, १७३० को जोधपुर से प्रस्थान किया।[४८]

अभयसिंह की नियुक्ति से सरबुलन्दखां को बुरा लगा। उसने उसे कार्य-भार सौंपने से इन्कार कर दिया। इस पर दोनों के बीच साबरमती के किनारे १० अक्टूबर, १७३० को भयंकर युद्ध हुआ।[४९] सरबुलन्द हार गया। उसे गुजरात छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।[५०] सरबुलन्द की २७३ तोपों पर राठौड़ों अधिकार हो गया।[५१] शीघ्र ही महाराजा ने गुजरात के २२ जिलों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[५२] परन्तु मराठों का २८ जिलों पर अधिकार बना रहा। वहां पीलाजी गायकवाड़ का आदेश चलता था।[५३] पावागढ़ पर चिमनाजी का अधिकार था। कन्थाजी ने चपानेर पर अपनी स्थिति मजबूत कर रखी थी।[५४] अभयसिंह को गुजरात में मुगल सत्ता को प्रभावशाली बनाने के लिए अभी कठिनाइयों का सामना करना था। सूबे का प्रशासन अस्त-व्यस्त हो चुका था।[५५] मराठे अत्यन्त निडरता से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करते थे। मुगल क्षेत्रों में उनकी इच्छानुसार भूमि कर की वसूली होती थी। कई क्षेत्रों पर उनका प्रत्यक्ष प्रशासन था। खरीफ की फसल नष्ट हो चुकी थी। इजारेदारों ने किसानों से वसूली कर ली थी परन्तु राज्य-कोष खाली था। सायर से आय प्राप्त नहीं हो रही थी। व्यापार शिथिल अवस्था में था। राजनैतिक अव्यवस्था एवं मराठों आतंक के कारण व्यापारी वर्ग भाग गया था। सरबुलन्दखां काफी धन अपने व्यक्तिगत कार्यों में खर्च कर गया था। रबी की फसल की आंशिक रूप से ही खेती की जा रही थी। सेना को वेतन का भुगतान करना था। अभयसिंह ने खानेदौरां को सूचना भिजवायी[५६] कि एक प्रभावशाली प्रशासन स्थापित करने एवं सशक्त सेना रखने के लिए उसे आठ माह तक १० से १२ लाख रुपये प्रति माह वित्तीय सहायता चाहिए। इसके अतिरिक्त मराठों प्रभाव को समाप्त करने के लिए योग्य व अनुभवी सेनापतियों को भेजने के लिए भी लिखा।[५७] मुगल दरबार और वजीर की ओर से शीघ्र कोई प्रत्युत्तर नहीं आया।[५८] इससे स्थिति और बिगड़ने लगी। मराठों ने नवम्बर १७३० में बड़ौदा, दभाई व जम्बूसर पर जिनकी आय ३० लाख रुपये थी; अधिकार कर लिया।[५९]

केन्द्र की उदासीनता से अभयसिंह परेशान था, परन्तु १७३० के अन्त में गुजरात

की नयी राजनीति ने उसे अपनी स्थिति मजबूत करने का अवसर प्रदान किया। सेनापति त्रियम्बकराव दामाडे और पेशवा बाजीराव के बीच मनोमालिन्य हो गया। १७३० की सरबुलन्द चिमनाजी अप्पा की संधि के कारण पेशवा का गुजरात मे हस्तक्षेप अनिवार्य था। यह संधि दामाडे के अधिकार क्षेत्र मे आन्तरिक हस्तक्षेप थी। दामाडे न पवाना की इस नीति का घोर विरोध किया परन्तु बाजीराव के लिए 'उत्तर की ओर प्रसार' की नीति का यह आवश्यक अंग था, अत दोनो मराठे सरदार एक दूसरे के विरोधी बन गये।[६०] त्रियम्बकराव न पेशवा के नेतृत्व को अस्वीकार कर दिया। यह बाजीराव के लिए असहनीय था। उसन इसके दुष्परिणामों की ओर सेनापति का ध्यान आकर्षित किया। पर तु दामाडे ने बाजीराव के शत्रुओं स सम्बन्ध स्थापित करना शुरू किया। अक्टूबर १७३० म उसने निजाम उल मुल्क को पेशवा के विरुद्ध सहायता के लिए लिखा।[६१] निजाम गुजरात म अपने प्रभाव का पुन स्थापित करने के लिए इस प्रकार के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। शीघ्र वह सेना लेकर खानदेश होता हुआ दामाडे की सहायता के लिए चल पडा। अपनी इस योजना म उसने मालवा के सूबेदार मोहम्मदखां बंगश को भी शामिल कर लिया। दामाडे और निजाम के सैनिक अभियान स शकित होकर बाजीराव अक्टूबर १७३० म उत्तर की ओर चल पड़ा।[६२] दिसम्बर, १७३० म वह सूरत पहुँच गया।[६३] इस प्रकार १७३० के अन्त म गुजरात के राजनैतिक वातावरण मे मराठो की आन्तरिक शक्तियो का संघर्ष अवश्यम्भावी होता जा रहा था।

अहमदाबाद के सन्निकट विरोधी राजनैतिक गतिविधियो से नया सूबेदार शकित हो उठा। मुहम्मदखां बंगश और निजाम का गुजरात की ओर प्रयाण महाराजा की स्थिति के लिए हानिकारक था क्योकि निजाम और राठोड शासक एक दूसरे के विरोधी गुटो म से थे।[६४] अत महाराजा ने मुगल दरबार को नयी परिस्थितियो से अवगत कराते हुए शीघ्र ही सहायता के लिए लिखा।[६५] अमरसिंह भडारी के हाथ भेजे गये पत्र म महाराजा ने लिखा कि दामाडे की विजय से उसे गुजरात से जिसे उसने स्वयं की शक्ति से जीता था हाथ धोना पडेगा, जो कि वह नही चाहता था।[६६] अत भडारी को आदेश दिया गया कि वजीर व बख्शी से मिल तथा अधिक से अधिक सैनिक सहायता की व्यवस्था करे।[६७] परन्तु मुगल दरबार गुटो म इतना विभाजित था कि गुजरात का राजनीति के प्रति कोई शीघ्र निर्णय नहीं लिया जा सका। जब लिया गया तो बादशाह ने अभयसिंह को आदेश दिया कि वह बाजीराव के विरुद्ध निजाम की सहायता करे।[६८]

(ii) त्रिकोणा स्वार्थो का संघर्ष

गुजरात की भौगोलिक स्थिति मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय प्रशासन के लिए अत्यन्त लाभदायक थी। उत्तरी भारत और दक्षिणा भारत के बीच गुजरात एक कडी का काम करता था। १५७३ ई० म अकबर ने इसे जीता था। तब से यह

मुगल साम्राज्य का एक सूबा बना हुआ था। न सिर्फ राजनैतिक दृष्टि से बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी मुगल शासक अपना प्रभाव बनाये रखना चाहते थे। विदेशों से खानदेश, मालवा, बरार व उत्तरी भारत के व्यापार का मार्ग गुजरात होकर ही जाता था। गुजरात के समुद्री तट पर भड़ोच व सूरत जैसे प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। इन्हीं बन्दरगाहों से भारतीय मुसलमान मक्का के लिए हज करने जाते थे। विदेशों से यात्री, व्यापारी, बुद्धिजीवी, भगोड़े सैनिक और शरणार्थी, जो फारस, अरब, टर्की, मिश्र, जजीबार, खोरासान से राजनैतिक कारणों से भाग निकलते थे, इन्हीं बन्दरगाहों से भारत में प्रवेश करते थे। अतः गुजरात केन्द्रीय शासन के लिए समुद्री करों व भूमि से प्राप्त राजस्व तथा अन्य करों से होने वाली आय का प्रजस्त्र स्रोत था। यही कारण था कि मुगल शासक किसी भी स्थिति में गुजरात को साम्राज्य से पृथक् नहीं देखना चाहते थे। सैनिक दृष्टि से भी गुजरात की स्थिति महत्वपूर्ण थी। मुगलों के दक्षिण के सैनिक अभियानों के लिए यह क्षेत्र आधार का काम करता था। उत्तर व दक्षिण भारत के बीच यातायात, गुजरात पर उनके अधिकार के कारण ही, निष्कटंक था। औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलों की शक्ति गुजरात में शिथिल पड़ने लगी। जिसे भी सूबेदार बनाया जाता, वह उसी धन और सैनिक शक्ति से जो मुगलों से प्राप्त होती थी, अपने लिए अर्ध-स्वतन्त्र राज्य बनाने की सोचता था। जब कभी सूबेदारी में परिवर्तन होता तो स्थानान्तरित सूबेदार बिना युद्ध के अपना पद छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता था।[६६] इससे गुजरात में मुगल प्रशासन की दशा गिरती गयी।

शिवाजी के समय से ही मराठों के लिए गुजरात निरन्तर आय और धन का साधन बना हुआ था। बाद में जब बाजीराव प्रथम ने 'उत्तर की ओर प्रसार की नीति' के आधार पर मराठा-विस्तार की नीति अपनायी तो गुजरात पर मराठी अधिकार राजनैतिक दृष्टि से अनिवार्य हो गया। इसके अलावा निजाम को, जिसे दक्षिण का मुगल सूबेदार बनाया गया था, तीनों ओर से घेर कर शक्तिहीन बनाये रखने के लिए भी बाजीराव ने गुजरात पर मराठी आधिपत्य स्थापित करना आवश्यक समझा। इस प्रकार गुजरात पर अधिकार करना मराठा साम्राज्य के प्रसार का प्रथम चरण था।

यों तो १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही गुजरात में मराठों का प्रवेश होना शुरू हो गया था, परन्तु १७१६ तक कोई बड़ा आक्रमण नहीं हुआ था। उस वर्ष खाण्डेराव दाभाड़े ने *बगलान और खानदेश के क्षेत्रों* से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करनी प्रारम्भ की तथा बुरहानपुर से सूरत तक कई किलों का निर्माण करवाया। इन सेवाओं के बदले में शाहू ने उसे सेनापति नियुक्त किया।[७०]

१७१६ में सेनापति खाण्डेराव दाभाड़े के प्रतिनिधि के रूप में पीलाजी गायकवाड़ ने, जिसने सोनगढ़ को अपने कार्य का केन्द्र बना लिया था, दक्षिणी गुजरात में मराठा प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना शुरू किया। १७२३ में उसने राज-

पीपला क्षेत्र में कई किलों का निर्माण कराया तथा सूरत सरकार के कई भागों पर अधिकार कर लिया।[७१] शाहू के आदेशो पर कन्थाजी कदम ने भी गुजरात से चौथ वसूली प्रारम्भ की।[७२] १७२४ मे निजाम ने मुगल बादशाह के विरुद्ध मराठो की सहायता मांगी। मराठो ने इस शर्त पर सहायता देने का वचन दिया कि वह गुजरात व मालवा मे मराठी प्रसार मे कोई बाधा उपस्थित नही करेगा।[७३] १७२६ मे पीलाजी ने माही नदी के दक्षिण तट तक आधिपत्य स्थापित कर दिया। अहमद नगर पर उसके आक्रमण की आशका सदा बनी रहने लगी।[७४] परन्तु मराठो के ये सभी आक्रमण योजनाबद्ध व नीतिबद्ध नही थे। बाजीराव ने इन सैनिक अभियानों को योजनाबद्ध करने की नीति अपनायी और दामाडे से उस योजना के अनुसार कार्य करने को कहा। परन्तु दामाडे के लिए इस नीति को स्वीकार करना अपने प्रभाव को कम करना था। वह गुजरात मे पेशवा का हस्तक्षेप नहीं चाहता था अतः उसने इस नीति का घोर विरोध करना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में तो पेशवा ने सेनापति के विरोध की परवाह नहीं की। उसने मुगल सूबेदार सरबुलन्दखाँ से फरवरी १७२७ मे सन्धि की जिससे गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी की वसूली का अधिकार पेशवा को प्राप्त हो गया।[७५] १७३० मे मुगल सूबेदार ने उक्त सन्धि पर पुन मोहर लगा दी। इसी बीच मे मराठों ने दक्षिणी गुजरात के २८ जिलो पर अधिकार कर लिया। अब सेनापति और पेश्वा के बीच सघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। सेनापति ने निजाम को सहायता के लिए लिखा। दामाडे-निजाम की मैत्री से बाजीराव शक्ति हो उठा। गुजरात मे मराठी प्रभाव को बनाये रखने के लिए उसने अक्टूबर १७३० मे उत्तर की ओर प्रयाण किया।

राठौडो का गुजरात ■ प्रसार उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना मराठों का गुजरात, मारवाड के दक्षिण मे है। जालोर, जसवन्तपुरा एव भीनमाल की तहसीलें पालनपुर से मिलती हैं। मारवाडी व्यापारियो के लिए गुजरात एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था। समुद्री तटो एव दक्षिण के लिए व्यापार मार्ग गुजरात से ही जाता था। राठौड शासक इन व्यापारियो से जो कर लेते थे वह इस पर निर्भर रहता था कि इन व्यापारियो को कितना निष्कटक व्यापार मार्ग प्राप्त हो। अत व्यापार मार्गों की सुरक्षा का दायित्व राठौड शासको पर था। इसके अलावा गुजरात की राजनैतिक हलचलो का प्रभाव मारवाड की आन्तरिक सुरक्षा पर यथासमय पडा करता था। अभयसिंह के शासनकाल से ही गुजरात की ओर से मराठा आक्रमण होने लगे थे जिनसे आन्तरिक शान्ति को खतरा पैदा हो गया था।[७६] अत· राठौड शासको के लिए यह आवश्यक था कि या तो गुजरात राठौड प्रभाव मे रहे या वहाँ की राजनैतिक स्थिति सुदृढ बनी रहे, जिससे मारवाड मे अशान्ति न फैले। गुजरात की हरी-भरी भूमि भी राठौडो के लिए आकर्षण का कारण थी। रेगिस्तानी मारवाड से होनेवाले घाटे की कमी वहाँ से पूरी हो सकती थी। १८ वी शताब्दी के प्रारम्भ में मुगल साम्राज्य के विघटन काल मे गुजरात की ओर प्रसार करना मारवाड के शासको

की राजनैतिक महत्वाकांक्षा थी।[७७] १६६६ में मारवाड़ का शासक सूर्यसिंह कुछ समय के लिये गुजरात का सूबेदार बनाया गया। उसने गुजरात के उत्तरी सीमा क्षेत्रों में राठौड़ आधिपत्य की नीति के बारे में प्रथम बार योजना बनायी परन्तु न तो वह व्यक्तिगत रूप से शक्तिशाली था और न उसमें मुगल प्रशासन को प्रभावित करने की क्षमता ही थी। महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम और अजीतसिंह क्रमशः १६५६-१६६२ और १७१५-१७१७ में गुजरात के सूबेदार रहे। इन दोनों ने गुजरात में जागीरें प्राप्त की। अजीतसिंह ने मारवाड़ की सीमा का गुजरात में प्रसार करने का असफल प्रयास किया।[७८] अपने पिता की नीति का अनुसरण करते हुए[७९] अभयसिंह ने १७२७ से ही गुजरात की सूबेदारी प्राप्त करने का प्रयास किया। १७२८ में बाजीराव ने मारवाड़ से सरजामी वसूल करने का अधिकार मल्हारराव होल्कर को दिया।[८०] मारवाड़ पर मराठा आक्रमण की संभावना बढ़ने लगी। मारवाड़ की सुरक्षा हेतु मराठा प्रभाव को गुजरात तक ही सीमित रखना आवश्यक था। यह तभी सम्भव था जबकि गुजरात पर राठौड़ों का प्रभाव रहे। १७३० में मुगल दरबार में सरबुलन्दखां की मराठी नीति की तीव्र आलोचना होने लगी। उसे सूबेदार के पद से हटा दिया गया। उसके स्थान पर अभयसिंह को नियुक्त किया गया। महाराजा ने फरमान प्राप्त होते ही, बिना मुगल कोष और सेना की प्रतीक्षा किये, अहमदनगर की ओर कूच कर दिया। अक्टूबर १७३० में उसने एक युद्ध के पश्चात् गुजरात पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।[८१]

(iii) अहमदाबाद समझौता और उसके परिणाम—अक्टूबर, १७३०

अक्टूबर, १७३० के बाद गुजरात में तीनों शक्तियों के आपसी संघर्ष की संभावना बढ़ने लगी। दाभाडे-निज़ाम मित्रता, पेशवा का सैनिक अभियान एवं मुगल आदेश कि पेशवा के विरुद्ध निज़ाम की सहायता की जाए, अभयसिंह के लिए पूर्ण समस्या थी। राठौड़ी स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए निज़ाम के विरुद्ध उसने पेशवा का समर्थन करने का निश्चय किया। उसने राठौड़ अमरसिंह, अजीमुल्लाखां और विजयसिंह भंडारी को बाजीराव के पास भेजा। बाजीराव को निमन्त्रण दिया गया कि वह उससे अहमदाबाद में मिले। पेशवा ने इसे स्वीकार किया। वह २३ जनवरी १७३१ को अहमदाबाद पहुँचा। उसे शाही बाग में ठहराया गया। करीब एक माह तक वार्ताएँ चलती रही।[८२] अन्त में फरवरी १७३१ में बाजीराव और अभयसिंह ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये।[८३] इस समझौते के अनुसार—

१ पीलाजी गायकवाड़ व कन्याजी कदम को गुजरात से निकालने में पेशवा सहायता करेगा।

२. गुजरात की चौथ के रूप में अभयसिंह पेशवा को १३ लाख रुपये देगा।

३. ८ लाख रुपये तत्काल दिये जाएंगे। बाकी रकम पेशवा को उस समय

मिलेगी जबकि वह पीलाजी व कन्थाजी को गुजरात से निकाल देगा और स्वयं भी प्रस्थान कर जाएगा।

४. यदि पीलाजी व कन्थाजी गुजरात मे पुनः प्रवेश करें तो पेशवा भी गुजरात मे हस्तक्षेप करेगा।

५ बाजीराव के अलावा किसी अन्य मराठा सरदार की सेना गुजरात में प्रवेश नहीं करेगी।

६ बड़ोदा पर अधिकार हो जाने के बाद उसे महाराजा को सौंप दिया जाएगा।

७ पेशवा की सहायता के लिए महाराजा मुगल सेना और ढाई हजार राठौड़ सैनिक देगा।

इस समझौते की शर्तें करीब-करीब वैसी ही थी जैसी कि सरबुलन्दखा ने १७३० मे चिमनाजी अप्पा के साथ की थी।[८४] अभयसिंह ने पेशवा को गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इसके बदले मे, बाजीराव ने पीलाजी और कन्थाजी को गुजरात से दूर रखने का विश्वास दिया, जिससे दाभाड़े का प्रभाव समाप्त किया जा सके। इस समझौते से अभयसिंह को पीलाजी से; जिसने कि सूरत अठाविसी मे अपनी स्थिति काफी मजबूत कर ली थी, मुक्ति प्राप्त हो सकती थी। पेशवा ने यह सोचा कि सेनापति के इस योग्य प्रतिनिधि का हटा देने से गुजरात में उसका प्रभाव आसानी से हो जाएगा। इस समझौते ने गुजरात मे एक ही मराठा शक्ति को मान्यता दी, वह थी पेशवा की शक्ति। इस शक्ति की शून्यता के लिए भी समझौने मे धारा रख दी गयी थी। अभयसिंह ने इस प्रकार १३ लाख रुपयों की चौथ के बदले मे गुजरात मे अपने निःशक शासन की पृष्ठभूमि तैयार कर ली थी। इसके अलावा यदि पीलाजी और कन्थाजी ने गुजरात मे पुनः प्रभाव-क्षेत्र स्थापित करने का प्रयास किया, तथा चौथ देने के लिए सूबेदार पर दबाव डाला तो समझौते के अनुसार बाजीराव को गुजरात मे पुनः प्रवेश करने तथा पीलाजी व कन्थाजी को पुनः निकालने का अधिकार दिया गया था।

तत्कालीन परिस्थितियों मे अभयसिंह के लिए यह समझौता अत्यन्त लाभकारी था। अपने पड़ोस के क्षेत्रों म मराठी आतंक को हटाने के लिए उसे उस समय सिर्फ ६ लाख रुपये और २५०० राठौड़ सैनिक ही देने थे। दाभाड़े के स्थान पर उसने बाजीराव का साथ इसलिए दिया कि वह निजाम के विरुद्ध अपनी शक्ति को दृढ़ कर सके तथा गुजरात में अपने प्रभाव को स्थायी बना सके। वह गुजरात मे अर्ध-स्वतन्त्र राठौड़ी शासन की महत्त्वाकांक्षा रखता था परन्तु घटनाओं ने ऐसा मोड़ लाया कि उसकी यह महत्त्वाकांक्षा हवाई महल बनकर ही रह गयी।

समझौते के अनुसार बाजीराव ने बड़ौदा विजय करने के लिए प्रस्थान किया। बड़ौदा पर उस समय पीलाजी के भाई मालाजी का अधिकार था। पेशवा के साथ

भंडारी विजयसिंह और राठोड अमरसिंह के नेतृत्व में एक राठोडी सैनिक टुकडी भी चली।[८४] मार्च २५, १७३१ को पेशवा सावली पहुँचा। यहां उसे सूचना प्राप्त हुई कि निजाम मोहम्मदशाह बंगश से मिलकर दामाडे की सहायतार्थ आ रहा है। पेशवा ने दामाडे व निजामबंगश की सेनाओं को न मिलने देने की नीति अपनायी। अमरसिंह की फौज और तोपखाने की सहायता से पेशवा ने दामाडे पर आक्रमण कर दिया।[८६] अप्रेल १, १७३१ को दभोई के पास भिलापुर के मैदानों में पेशवा ने सेनापति को बुरी तरह परास्त किया, जिसमें सेनापति युद्ध करता हुआ मारा गया।[८७] उसके सामन्त पीलाजी, कन्थाजी और आनदराव भाग गये। परन्तु बडोदा में मालाजी ने अपना अधिकार बनाये रखा।[८८] महाराजा ने राठोड-पेशवा विजय का शानदार स्वागत किया। उसने मुगल सम्राट को सिफारिश की कि बाजीराव को योग्यतापूर्ण सेवाओं के कारण एक फरमान, एक हाथी, एक मन्सब तथा एक खिलअत सिरोपाव दिये जाने चाहिए।[८९]

मुगल दरबार में इसकी विरोधी प्रतिक्रिया होने लगी। खानेदौरा को यह संदेह हुआ कि बादशाह के पक्ष में बाजीराव पेशवा की सहायता प्राप्त करने में अभयसिंह का निहित स्वार्थ था जिससे उसकी स्थिति कमजोर हो सकती थी।[९०] प्रारम्भ में उसकी यह प्रतिक्रिया थी कि दामाडे के डर से बाजीराव ने अभयसिंह की सहायता की थी। वह किसी प्रकार भी बडे कार्यों में मुगलों की सहायता नहीं करता।[९१] वजीर ने भी अभयसिंह का समर्थन नहीं किया। निजाम की सूचना पाकर उसने महाराजा द्वारा स्वीकृत अहमदाबाद समझौते पर (फरवरी १७३१ में) शाही मोहर नहीं लगने दी।[९२] वजीर ने महाराजा, निजाम और बंगश को गुप्त सन्देश भेजा कि बाजीराव को सिर्फ दंडित ही नहीं किया जाए[९३] बल्कि उसकी हत्या कर दी जाए।[९४] बाजीराव के प्रति शाही नीति का घोर विरोध महाराजा ने किया।[९५] उसने अपने वकील के द्वारा वजीर को सूचना भिजवायी कि यदि बाजीराव को इस प्रकार से पृथक् रखा गया तो वह पीलाजी और कन्थाजी से जा मिलेगा। गुजरात में मुगल शासन को बनाये रखना अत्यन्त कठिन हो जाएगा। उसने इस बात पर अधिक बल दिया कि उसके द्वारा की गयी संधि व सिफारिशों को स्वीकार कर लिया जाय, जिससे कि मुगलों को गुजरात न खोना पडे।[९६] बाजीराव के साथ की गयी संधि के प्रति वह इतना आशावान था कि उसने वजीर व मुगल दरबार को चुनौती दे दी। उसने अपने वकील भंडारी अमरसिंह को लिखा कि यदि वजीर उसकी नीति का समर्थन नहीं करे तो वह वहां से छुट्टी लेकर चला आए।[९७]

इसी बीच निजाम ने अभयसिंह को एक भयंकर कूटनीति के जंजाल में फँसा दिया। उसने बाजीराव को उस गुप्त आलेख की सूचना दे दी, जो कि वजीर ने अभयसिंह, निजाम और बंगश को लिखा था और जिसके अनुसार पेशवा को गिरफ्तार कर उसकी हत्या का आदेश दिया गया था।[९८] इससे बाजीराव पेशवा

महाराजा के प्रति सशक हो गया। महाराजा ने पेशवा की शंका को दूर करने का बहुत ही प्रयास किया। एक बार उसने पुनः वजीर को लिखा कि वह बाजीराव को शाही खिलअत और प्रशंसा का फरमान भिजवाए। पेशवा को पृथक्-पृथक् स्रोतों से निजाम द्वारा दी गयी सूचना की सचाई प्राप्त होने लगी। अतः उसने अभयसिंह से की गयी संधि की शर्तों का अनुशासन करना छोड़ दिया।[99] अप्रैल १७३१ में उसने बड़ौदा से घेरा उठा लिया और सतारा की ओर चल पड़ा, जहाँ की राजनैतिक गतिविधियों में उसकी उपस्थिति आवश्यक थी।[100] उसने जून में जोधपुर से अपने पण्डित को वापस बुला लिया और अभयसिंह से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।[101]

(iv) पीलाजी गायकवाड़ की हत्या (मार्च २३, १७३२)

पेशवा के आचरण से महाराजा अत्यंत क्षुब्ध हो गया। उसकी स्थिति उस समय नाजुक हो गयी जबकि छत्रपति शाहू ने भिलापुर के युद्ध के पश्चात् गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार बाजीराव के स्थान पर दामाडे को दे दिया।[102] इस प्रकार अहमदाबाद-समझौता हर रूप से नगण्य हो गया। न मुगल दरबार ने और न शाहू ने उसे पुनः स्वीकृति प्रदान की। महाराजा की गुजरात में स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी।

त्र्यम्बकराव दामाडे की मृत्यु के बाद शाहू ने उसके पुत्र यशवंतराव को सेनापति की पदवी से विभूषित किया। वह अल्पायु ही था अतः उसके प्रभाव क्षेत्र का कार्यभार पीलाजी पर आ पड़ा। यद्यपि पीलाजी बाजीराव से हार चुका था तथापि उसने डाभोई व बड़ौदा पर अपना अधिकार बनाये रखा।[103] उसे गुजरात की भील व कोहली जातियों का भी समर्थन प्राप्त था। मुगल सूबेदारों के अत्याचार और शोषण की नीति के कारण गुजरात के नागरिक, विशेषतः आदिवासी लोग तंग आ चुके थे। महाराजा भी नये कर लगाकर धन-संग्रह कर रहा था।[104] अतः जनता व आदिवासियों के संरक्षक के रूप में पीलाजी का उत्थान अभयसिंह की स्थिति के लिए वास्तविक चुनौती था।

नयी परिवर्तित परिस्थितियों में उसने (महाराजा ने) भी नयी नीति अपनायी। उसने पीलाजी की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाया।[105] परन्तु गायकवाड़ ने इसे अस्वीकार कर दिया। इस पर महाराजा ने उसकी हत्या करने की योजना बनायी।[106] राठौड़ सरदारों का एक दल, जिसमें ऊदा, लखधीर, पचोली रामानन्द और भंडारी अजबसिंह थे, पीलाजी से चौथ व सरदेशमुखी तय करने डाकोर पहुँचा, जहाँ मराठा सरदार ठहरा हुआ था।[107] इस दल को गुप्त आदेश दिये गये थे कि पीलाजी की हत्या के अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए, ज्योंही अतिरिक्त लिखित सूचना प्राप्त होगी, २००० सैनिक अश्वारोही सहायता के लिए भेज दिये जाएँगे।[108] २३ मार्च, १७३२ को जब यह दस्ता डाकोर पहुँचा, तो ऊदा

लखधीर ने पीलाजी से विदा लेने हेतु उससे उसके महल में साक्षात्कार किया। वहीं उसी रात्रि को पीलाजी की हत्या कर दी गई।[१०६] मराठी सेना अस्त-व्यस्त होकर बिखर गयी।[११०] पीलाजी की हत्या के बाद गुजरात में अभयसिंह का कार्य सरल हो गया। एक माह के भीतर उसने मराठों के २४ किले छीन लिये। अप्रेल, १७३२ में उसने बड़ोदा पर अधिकार कर लिया तथा दाभोई का घेरा डाल दिया।[१११] परन्तु किले पर उसका शीघ्र अधिकार नहीं हो सका। उसकी स्थिति शोचनीय होने लगी। उसने दिल्ली स्थित अपने वकील को लिखा कि[११२] वजीर से यह हुक्म प्राप्त करे कि सूरत का फौजदार उसे बड़ी तोपें भेजे। वह वर्षा प्रारम्भ होने से पहले ही दाभोई पर अधिकार कर लेना चाहता था। वर्षा के प्रारम्भ होने तक मुगल दरबार से कोई प्रत्युत्तर नहीं आया।[११३] मुगल सहायता की कोई आशा न पाकर महाराजा ने वर्षा प्रारम्भ होते ही घेरा उठा लिया। बड़ोदा में शेरखाँ बाबी को फौजदार नियुक्त कर वह अहमदाबाद लौट आया।[११४] शीघ्र ही महाराजा को गुजरात में भयंकर अकाल की स्थिति का सामना करना पड़ा, जिसका प्रभाव सेना पर पड़े बिना नहीं रह सका।[११५] सैनिक बकाया वेतन की मांग करने लगे।[११६]

मुगल सेमे की अराजकतापूर्ण स्थिति और वर्षा ऋतु का लाभ उठाकर, मराठों ने अपनी बिखरी हुई शक्ति को पुनः सगठित करना शुरू किया। वे गुजरात के कई भागों से चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने लगे। पीलाजी की तरह महाराजा ने कम्पाजी कदम की भी हत्या कराने का प्रयास किया पर वह बच कर भाग निकला।[११७] पीलाजी के पुत्र दामाजी गायकवाड ने गुजरात के पूर्वी भाग को लूटना शुरू किया। उसकी सेना १७३२ के अन्त तक मेवाड़ की सीमा पर भी आक्रमण करने लग गयी।[११८] १७३३ के प्रारम्भ में मल्हारराव होल्कर और रानोजी सिंधिया ने चम्पानेर और पावागढ पर अधिकार कर लिया।[११९] त्र्यम्बकराव सेनापति की पत्नी उमाबाई दाभाडे ७०,००० की सेना लेकर अहमदाबाद की ओर चल पड़ी। फरवरी १७३३में उसने अहमदाबाद का घेरा डाल दिया।[१२०] महाराजा के लिए समर्पण के अलावा कोई रास्ता न था। अतः उसने दुर्गादास के पुत्र अभयकरण को प्रतिनिधि बनाकर उमाबाई के पास समझौते हेतु भेजा।[१२१] उमाबाई की शर्तों के अनुसार महाराजा ने उसे न सिर्फ गुजरात की चौथ व सरदेशमुखी देने का विश्वास दिया बल्कि अहमदाबाद की आय से ८०,००० रु भी दिये।[१२२]

शीघ्र ही इसके बाद उमाबाई ने बड़ौदा पर आक्रमण कर दिया और शेरखाँ बाबी को चौथ देने के लिए विवश किया।[१२३] महाराजा की स्थिति अब अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। गुजरात में उसकी नीति असफल रही। मराठों का प्रभाव बढ़ता ही गया। मुगल दरबार में उसकी प्रतिष्ठा कम होने लगी। उसके विरोधियों का प्रभाव बढ़ने लगा। ठीक इसी समय बीकानेर के शासक ने मारवाड पर आक्रमण कर दिया।[१२४] महाराजा इस पर अपने डिप्टी रतनसिंह भंडारी को

गुजरात का भार सौंपकर १७३३ के मध्य मे गुजरात से जोधपुर चला गया।[१२५] यद्यपि १७३३ से १७३७ तक अभयसिंह गुजरात का सूबेदार बना रहा, परन्तु वह पुनः अहमदाबाद कभी नही गया। सारा कार्य रतनसिंह भडारी देखता रहा।[१२६] १७३७ मे मोमिनखा को गुजरात का सूबेदार बनाया गया, जिसने मई २६ को प्रबल विरोध के बाद रतनसिंह से सूबेदारी छीन ली।[१२७]

मराठो के विरुद्ध संयुक्त राजपूत मोर्चा

मारवाड लौट आने के बाद शीघ्र ही महाराजा अभयसिंह को बीकानेर राज्य से युद्ध करना पडा।[१२८] वर्षा समाप्ति के बाद उसे वजीर कमरुद्दीन का आदेश प्राप्त हुआ कि वह गुजरात वापिस लौट जाए, परन्तु बीकानेर के युद्ध को अधबीच मे छोडकर वह जाना नही चाहता था।[१२९] १७३४ के प्रारम्भ मे बीकानेर के साथ समझौता हो गया। उसने वजीर को सूचित किया[१३०] कि वह अहमदाबाद या अजमेर जिस ओर भी मराठो का आतक बढने[१३१] लगा है, जाने के लिए तैयार है। *उसकी इच्छा थी कि उसे अजमेर का सूबेदार नियुक्त कर दिया जाए।*[१३२] साथ ही उसने यह भी लिखा कि अजमेर की सुरक्षा हेतु उसे एक बडी सेना की आवश्यकता है अत उसे २५,००० रुपये भेजे जाए।[१३३] उसने वजीर को विश्वास दिलाया कि इसके बदले मे वह अहमदाबाद मे मुगल सुरक्षा हेतु १०,००० राठौड अश्वारोही शीघ्र ही भेजने को तैयार है।[१३४]

इसी बीच उसे जयसिंह ने पत्र लिखा कि मराठो के विरुद्ध उसकी सहायतार्थ आए।[१३५] १७३४ मे मराठो का बूँदी मे हस्तक्षेप अवश्यम्भावी हो गया। उस समय बूँदी का शासक दलेलसिंह जयसिंह की मदद से राज्य कर रहा था। वास्तविक शासक बुधसिंह गद्दीच्युत् कर दिया गया था। बुधसिंह की रानी ने मल्हारराव को पत्र लिखकर सहायता मांगी। मार्च, १७३४ मे होल्कर और रानोजी सिंधिया ने बूँदी पर आक्रमण किया और बुधसिंह को पुन गद्दी पर बिठाया।[१३६]

राजस्थान मे मराठो का यह प्रथम प्रवेश था। राजपूत शासकों मे इसकी भयकर प्रतिक्रिया हुई। मराठो के विरुद्ध सयुक्त मोर्चा स्थापित करने के लिए जयसिंह ने राजपूत शासकों का एक सम्मेलन आयोजित किया। यह सम्मेलन हुरडा मे जुलाई १७३४ मे हुआ। अभयसिंह और उसका छोटा भाई बखतसिंह सम्मेलन मे शामिल हुए। जो अन्य शासक सम्मिलित हुए उनमे मेवाड, किशनगढ बीकानेर, कोटा और करौली नरेश भी थे। १३ जुलाई, १७३४ को उन्होने एक सयुक्त समझौते पर हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अनुसार—

१ अच्छी या बुरी सभी परिस्थितियों मे सभी एक बने रहेंगे। युद्ध व शान्ति की शर्तों को सभी समान रूप से स्वीकार करेंगे।

२ कोई भी एक शासक दूसरे शासक के विद्रोही को शरण नहीं देगा।

३. वर्षा के बाद सभी हस्ताक्षरी शासक अपनी सेना सहित रामपुरा में एकत्र होंगे। यदि किसी कारणवश शासक उपस्थित नहीं हो सके तो वह या तो अपने युवराज को नियुक्त करें या किसी अन्य प्रभावशाली व्यक्ति को भेजे।
४. यदि किसी कारणवश युवराज या प्रभावशाली व्यक्ति से कोई गलती हो जाए तो सिर्फ राणाजी ही उसे हस्तक्षेप करके ठीक कर सकेंगे।
५. मराठों के विरुद्ध जो कोई भी अभियान होगा उसमें सभी संगठित रहेंगे और सभी एक होकर उसे कार्यान्वित करेंगे।[१३७]

हुरडा मे किये गये निर्णयों की सूचना वजीर व बख्शी को दे दी गयी कि राजपूत शासक मराठो को नर्मदा नदी के उस पार रखने के लिए संयुक्त कार्यवाही कर रहे हैं। वजीर ने शासकों को विश्वास दिलाया कि उन्हे मुगल सहायता दी जाएगी।[१३८] वर्षा समाप्त होते ही मराठो का आतंक बढने लगा। उनकी प्रगति को रोकने के लिए वजीर ने नवम्बर १७३४ मे दो सेनाएं भेजी। पहली सेना उसके स्वयं के नेतृत्व में चली, जो दक्षिण-पूर्वी भागों से मराठों को दूर करने के लिए थी, दूसरी सेना का उत्तरदायित्व बख्शी खानेदौरां को दिया गया, जो राजस्थान की ओर चल पडा। मार्ग मे उससे जयसिंह, अभयसिंह और कोटा के दुर्जनसाल आ मिले। सेना की संख्या करीब ५०,००० सैनिकों से ऊपर हो गयी थी। फरवरी १७३५ के प्रारम्भ मे राजपूत शासकों और मुगल बख्शी की सेना रामपुरा पहुँची। होल्कर और सिंधिया रामपुरा के आस-पास दिखाई दिये। अतः संयुक्त मोर्चे की सेना ने उन्हें वहीं परास्त करने का निश्चय किया। मल्हारराव व राणोजी ने एक पुरानी युक्ति से काम लिया। उन्होंने राजपूत सेना को पहुँचने वाली रसद पर रुकावटें डालनी शुरू की। आठ दिन तक इन दोनों मराठी नेताओ ने राजपूतों और बख्शी को तंग किये रखा। फिर अचानक इस घेरे को हटाकर मुगल सेना के पीछे के भाग को लूटते हुए वे मुकनदरा दर्रे की ओर चल पड़े, जहां से निष्कण्टक जयपुर की सीमा मे प्रवेश कर गये।[१३९] २८ फरवरी को इन्होने सांभर को लूटा, जहां उन्हें पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई।[१४०] जब मराठो ने जयपुर की ओर बढना शुरू किया तो जयसिंह संयुक्त मोर्चे से, जो कि प्रभावहीन हो गया था,[१४१] हट गया और गुप्त रूप से उसने और खानेदौरां ने मराठो से समझौते की वार्ता प्रारम्भ कर दी। इन्होने मालवा की चौथ के रूप में बाईस लाख रुपये सालाना देकर जयपुर से मराठो के आतंक को हटाने मे सफलता प्राप्त की।[१४२]

मुगल दरबार में मराठा विरोधी गुट और अभयसिंह

जयसिंह और खानेदौरां की मराठो को सन्तुष्ट करने की नीति से अभयसिंह अत्यंत क्षुब्ध हुआ। यद्यपि सिद्धान्ततः हुरडा सम्मेलन के निर्णयों से वह सन्तुष्ट नहीं था, तथापि रामपुरा मे करारी हार के बाद वह मराठो के प्रति कठोर नीति का समर्थक बन गया। पृथक रूप से जयसिंह ने मराठो से जो समझौता किया था, वह

संयुक्त राजपूत मोर्चे के प्रति विश्वासघात था। इससे संयुक्त मोर्चा विघटित हो गया। अभयसिंह कूटनीति और रणनीति दोनो में कछवाह शासक से पिछड गया था।

रामपुरा के युद्ध के बाद वह दिल्ली पहुँचा। मराठो के प्रति क्या नीति अपनानी चाहिए इस सम्बन्ध मे मुगल दरबार मे दो गुट बन चुके थे। एक गुट मराठों को प्रसन्न बनाये रखने के पक्ष मे था। उसका नेतृत्व खानेदौरां व जयसिंह कर रहे थे। दूसरा गुट वजीर कमरुद्दीन का था, जो मराठो के विरुद्ध कठोर सैनिक कार्यवाही करना चाहता था। महाराजा अभयसिंह ने वजीर के गुट मे शामिल होने का दृढ निश्चय किया।[१४३] १७३१ से ही अभयसिंह और वजीर के बीच मन-मुटाव चला आ रहा था। गुजरात मे निजाम तथा मराठो के विरुद्ध वजीर ने उसे कोई सहायता नही भेजी थी, जिससे उसे युद्ध मे न सिर्फ हार ही खानी पडी थी बल्कि गुजरात से उसे पलायन भी करना पडा था। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह भी मराठो के विरुद्ध कठोर नीति अपनाना चाहता था। अतः उसने वजीर और अभयसिंह के बीच समझौता करा दिया। शीघ्र ही योजना बनायी गयी। बादशाह स्वयं सेना का नेतृत्व करने के लिए उद्यत हुआ। इसके अलावा यह निश्चय किया गया कि मराठो के विरुद्ध एक सेना, जिसमें वजीर, अभयसिंह और शहादतखा हो, ग्वालियर होती हुई दक्षिण की ओर प्रयाण करे। दूसरी सेना जयसिंह और खानेदौरां के नेतृत्व मे जयपुर होती हुई दक्षिण की ओर बढे।[१४४] जयसिंह ने मुगल दरबार मे यह विचार व्यक्त किया था कि मराठो से सफलतापूर्वक लडना असंभव है, अत. समझौते की नीति अपनानी चाहिए, परन्तु बादशाह व मुगल दरबार ने उसे अस्वीकार कर दिया।[१४५]

जयसिंह अपनी नीति पर दृढ रहा। उसने युद्ध की तैयारियो मे रोड़े अटकाने शुरू किये और युद्ध के लिए प्रयाण करने मे आनाकानी करने लगा। इस पर उसे हुक्म दिया गया कि यदि वह सैनिक अभियान मे नही गया तो उसे दंड का भागी बनना पडेगा।[१४६] जयसिंह के लिए यह असहनीय था। उसने पेशवा से गुप्त सम्पर्क कर उसे राजस्थान आने का निमंत्रण दिया। उसने यह विश्वास दिलाया कि वह न सिर्फ राजस्थान अभियान का खर्चा ही देगा बल्कि मालवा की चौथ वसूल करने का शाही फरमान भी दिलवा देगा।[१४७]

अक्टूबर १७३५ मे बाजीराव उत्तर के लिए चल पडा और जयसिंह से धम्मोला के स्थान पर १४ मार्च, १७३६ को मिला।[१४८] उन दोनो के बीच कई दिन तक वार्ताएँ चली। जयसिंह की राय पर उसने मारवाड पर आक्रमण करने का निश्चय किया। यो वह मारवाड के शासक से नाराज भी था। १७३५ मे उसने अपनी ऋण-मुक्ति के लिए अभयसिंह से चौथ की बकाया राशि मांगी थी किन्तु महाराजा ने वचन देकर भी उसका भुगतान नहीं किया।[१४९] अतः उसने मल्हारराव होल्कर, रानोजी सिंधिया, कन्याजी और आनंदराव पंवार को मारवाड के शासक से धन की वसूली के आदेश दिये।[१५०]

मल्हारराव और रानोजी शाहपुरा को लूटते हुए मेड़ता की ओर बढ़े। बूंदी का राजा प्रतापसिंह [१२१] भी उनके साथ था। दिल्ली में महाराजा को इसकी सूचना प्राप्त हुई तो उसने अपने सेनाध्यक्ष भंडारी विजयराव को आदेश दिया कि वह मारवाड़ में मराठों के आक्रमण का दृढ़तापूर्वक सामना करे। मेड़ता में राठौड़ सैनिक एकत्र हुए। शाहपुरा का शासक उम्मेदसिंह सीसोदिया अपनी चार हजार सैनिकों की फौज के साथ उनसे आ मिला। प्रारम्भ में होल्कर व सिंधिया ने प्रतापसिंह हाड़ा को धन की वसूली के लिए भंडारी के पास भेजा, परन्तु भंडारी और उम्मेदसिंह ने, जिसने भी वार्ता में भाग लिया था अभयसिंह के आदेशों को पालन करते हुए धन राशि देने से इन्कार कर दिया। इस पर मराठों ने मेड़ता नगर पर अधिकार कर लिया तथा किले का घेरा डाल दिया। किले के चारों ओर खाई खोदकर वे दीवारों की ओर बढ़ने लगे। किले से राठौड़ों का तोपखाना लगातार अग्नि वर्षा करता रहा। शत्रु को भयंकर हानि होने लगी तथा युद्ध की प्रगति रुक गयी। कुछ समय तक ऐसा प्रतीत हुआ कि मराठे भाग जाएँगे। परन्तु दो माह तक लगातार घेरे के कारण राठौड़ों की शक्ति क्षीण हो गयी। अप्रैल, १७३६ के प्रारम्भ में भंडारी ने आत्मसमर्पण कर दिया। वह मुआवजा देने को तैयार हो गया। मेड़ता विजय के बाद होल्कर और सिंधिया नागौर की ओर बढ़े। वहां के शासक बख्तसिंह को चौथ देने को मजबूर किया। इसके बाद अजमेर होते हुए अप्रैल के अन्त में वे पेशवा से जा मिले।[१२२]

बम्भोला में जयसिंह ने बाजीराव को यह विश्वास दिलाया कि वह मुगल बादशाह से उसे मालवा की चौथ-वसूली का फरमान प्राप्त करा देगा पर वह पूरा नहीं हो सका।[१२३] दिल्ली स्थित अपने प्रतिनिधि बाजी भीवराव से पेशवा को यह सूचना प्राप्त हुई कि मुगल दरबार में जब तक कमरुद्दीनखां, रोशनउद्दौला, शहादतखां और अभयसिंह का प्रभाव रहेगा तब तक उसे अपने अधिकारों के लिए कोई फरमान प्राप्त नहीं हो सकेगा।[१२४] इस पर पेशवा ने यह निश्चय किया कि जब तक पेशवा विरोधी गुट का विघटन नहीं कराया जाता या युद्ध क्षेत्र में उसकी पराजय नहीं होती तब तक मालवा तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर उसके अधिकार की आशा धूमिल रहेगी। अतः उसने अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए दबाव की नीति अपनायी। दोआब पर आक्रमण करने के लिए १२ नवम्बर, सन् १७३६ को वह दक्षिण से चल पड़ा।[१२५]

मराठा आक्रमण को रोकने के लिए दिल्ली में बड़ी तैयारियां की जाने लगीं। वज़ीर व मीर बख्शी के नेतृत्व में सुसज्जित सेना का संगठन किया गया। मुगल सूबेदारों और राजपूत शासकों को सेना सहित आने के लिए फरमान भेजे गये। अभयसिंह को, जो उस समय मोजाबाद में था, आगरे की तरफ बढ़ने के आदेश दिये गये। वहां से मुगल सेना संगठित होकर मराठों के विरुद्ध प्रयाण करने वाली थी।[१२६] अभयसिंह १० से १५ हजार सैनिको सहित राजधानी के आसपास बना

रहा।[१४७] पेशवा ने २८ मार्च, १७३७ को दिल्ली पर आक्रमण किया। ३ दिन तक दिल्ली लूटी गयी फिर वह वहां से चला गया।[१४८] इस अचानक आक्रमण से पेशवा को कोई महत्त्वपूर्ण लाभ पहुँचा हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। जब दिल्ली से मराठी आतंक समाप्त हो गया तो अभयसिंह ने बादशाह से छुट्टी प्राप्त की और वह अप्रेल मे जोधपुर चला गया।[१४९]

बादशाह का फरमान पाकर मुगल सूबेदार अपनी सेना सहित आगरे की ओर बढ़ने लगे। निजाम दक्षिण से चला परन्तु मार्ग मे भोपाल के पास दिसम्बर १७३७ में उसे बाजीराव ने बुरी तरह से हराया। इस विजय के बाद पेशवा राजस्थान के राज्यो पर हमले करने लगा।[१५०] एक बार पुनः मराठो के विरुद्ध शाही सेना सगठित करने का प्रयास किया गया। राजपूत शासकों को सम्मिलित होने के फरमान भेजे गये।[१५१] परन्तु १७३७-१७४२ तक अभयसिंह ने मराठों के विरुद्ध किसी भी अभियान में भाग लिया हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। पेशवा के दिल्ली-आक्रमण से अभयसिंह की प्रतिष्ठा को आघात लगा था। इसका लाभ उसके विरोधी महाराजा जयसिंह ने उठाया। जब नागौर के बखतसिंह ने अपने भाई के विरुद्ध अक्टूबर १७४० मे विद्रोह किया तो जयसिंह को मारवाड पर आक्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।[१५२] १७४१ में उसने नये पेशवा बालाजी बाजीराव को राजस्थान मे आने का पुन निमत्रण दिया। पेशवा जयसिंह से धोलपुर मे मई १७४१ मे मिला।[१५३] दोनों ने आपसी शत्रुओं के विरुद्ध पारस्परिक सहायता का समझौता किया।[१५४] अभयसिंह को जब इसकी सूचना प्राप्त हुई तो उसने अपने भाई से समझौता कर लिया।[१५५] जयसिंह ने इस पर अभयसिंह के एक अन्य भाई रतनसिंह को जो कैद मे था,[१५६] जोधपुर के शासक के रूप मे मान्यता दे दी।[१५७] जयसिंह के आक्रमण ने अभयसिंह-और बखतसिंह को एक कर दिया। बखतसिंह के नेतृत्व मे मारवाडी सेना ने २८ मई, १७४१ को गगवाना के स्थान पर जयसिंह को बुरी तरह परास्त किया।[१५८] इस पर जयसिंह ने १७४२ मे एक सधि की, जिसके अनुसार उसने न सिर्फ रतनसिंह का समर्थन छोड दिया बल्कि भविष्य मे मारवाड के आन्तरिक मामलों मे हस्तक्षेप न करने का विश्वास भी दिलाया।[१५९]

१७३६ मे राठोडो ने मराठो को चौथ देने की शर्त स्वीकार कर ली थी। होल्कर व सिंधिया द्वारा पेशवा को १३ मार्च, १७४२ को लिखे गये पत्र से प्रतीत होता है कि अभयसिंह इस धन-राशि को लगातार नही दे सका। पेशवा ने मार्च,१७४२ मे होल्कर और सिंधिया को बकाया धन-राशि वसूल करने हेतु मारवाड भेजा। उनके पत्र के अनुसार धनराशि एकत्र होने की समावना नही थी। सोजत, रायपुर और जैतारण क्षेत्र से होल्कर व सिंधिया को वसूली करने मे कई कठिनाइयों का सामना करना पडा। वे सिर्फ १००,२०० रुपये ही प्राप्त कर सके। जनता ने मराठो का विरोध किया। ज्योंही मराठे आते, लोग अपनी झोंपड़ियों मे आग लगा देते और पहाडियों की ओर भाग जाते। अभयसिंह ने भी कोई धनराशि नही दी, अतः होल्कर ने पेशवा

को लिखा कि वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने के पहले ही कुछ कठोर कदम उठाये जाने चाहिए, जिससे कि पर्याप्त धन-राशि एकत्र की जा सके।[१७०]

अभयसिंह होल्कर समझौता १७४८ ई०

जयसिंह की ओर से मुक्त होकर अभयसिंह ने अपनी व्यवस्था को पुन सगठित करने का विचार किया परन्तु शीघ्र ही उसे बखतसिंह की ओर से खतरा पैदा होने लगा। इन दोनो के आपसी सम्बन्ध बिगडने लगे।[१७१] एक बार पुन. मारवाड मे गृह युद्ध के बादल मडराने लगे। बखतसिंह, शाहजादा अहमदशाह का परम मित्र था, अत जब अप्रैल, १७४८ मे बादशाह मोहम्मदशाह की मृत्यु के पश्चात् अहमदशाह मुगल शासक बना तो बखतसिंह की शक्ति मे वृद्धि हो गयी। अहमदशाह ने उसे गुजरात व अजमेर का सूबेदार बना दिया।[१७२] इसके अलावा उसे नारनौल, डीडवाना और साँभर क क्षेत्र भी शाही फरमान द्वारा प्राप्त हो गये।[१७३] बादशाह की गद्दी नशीनी के जलसे के बाद दिल्ली से लौटते हुए उसने साँभर पर अधिकार कर लिया।[१७४] अभयसिंह को उस समय खतरा हाने लगा जब बखतसिंह ने बीकानेर के शासक गजसिंह से मित्रता करने के लिए अपने पुत्र को भेजा।[१७५] उसको लगा कि उसका भाई अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी है और वह उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र के जोधपुर की गद्दी पर बैठने के मार्ग मे विकट समस्या बन जाएगा। अतः बखतसिंह की बढती हुई शक्ति को रोकने के लिए उसने होल्कर से मित्रता करने की बात सोची। उस समय होल्कर बूँदी मे था। राठोड शासक का प्रतिनिधि मनरूपचन्द भण्डारी होल्कर से बातचीत करने बूँदी गया।[१७६] बूँदी के शासक उम्मेदसिंह की मध्यस्थता से एक समझौता हो गया जिसके अनुसार होल्कर को ग्यारह हजार रुपया प्रतिदिन की शर्त पर राठोडो की सहायता करना था।[१७७]

अगस्त १७४८ के प्रारम्भ मे होल्कर साँभर की ओर बढा, जहाँ बखतसिंह ने अपनी स्थिति सुदृढ कर रखी थी।[१७८] परन्तु अचानक जयपुर के राजनैतिक सकट[१७९] ने होल्कर का ध्यान साँभर से हटा लिया। उसने दोनो भाइयो के बीच मध्यस्थता कर आपस मे समझौता करा दिया।[१८०] शीघ्र ही होल्कर जयपुर के ईश्वरीसिंह के विरुद्ध चला। उसके साथ मनरूपचन्द भण्डारी के नेतृत्व मे राठोड फौज भी थी।[१८१] मराठा व राठोड फोजो ने अगस्त १७४८ मे बगरू के स्थान पर ईश्वरीसिंह को बुरी तरह हराया।[१८२] इस विजय के बाद होल्कर पुष्कर आया और वहाँ महाराजा अभयसिंह से मिला।[१८३] दोनो ने अपनी पगडी बदलकर भाई-चारा स्थापित किया और एक ही साथ बैठकर खाना खाया।[१८४] बाद का इतिहास बताता है कि मारवाड के शासकों और होल्कर परिवार के भावी सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण बने रहे।

अभयसिंह के अन्तिम दिन बडी चिन्ता मे बीते। बखतसिंह से समझौता हो चुका था,[१८५] परन्तु वह असन्तुष्ट ही बना रहा। महाराजा जानता था कि उसका पुत्र रामसिंह इस योग्य नही था कि वह राठौडो का नेतृत्व कर सके।[१८६] इसी चिन्ता मे एक लम्बी बीमारी के बाद १६ जून, १७४६ को अजमेर मे उसका स्वर्गवास हो गया।[१८७]

●●●

सन्दर्भ

१ मग्रासिरुल उमरा भाग २, पृ० ६७४, अभ्युदय सर्ग ६, दो० ११–१२, उसे 'राज-राजेश्वर'की पदवी दी गयी और ७००० जात/७००० सवार का मनसब दिया गया।

२ अभयसिंह का अमरचन्द्रण को पत्र, मार्गशीर्ष बदी ७, वि० स० १७८१/२७ अक्टूबर १७२४ एवं आषाढ सुदी ११, वि०स० १७८१/८ जुलाई १७२५ जोध०

३ अजितोदय, सर्ग ३२, दो० २–३, जयसिंह का शिवदास को परवाना (ड्राफ्ट), मार्गशीर्ष बदी ७, वि० स० १७८१ २७ अक्टूबर १७२४ जय० ।

४ जयसिंह का शिवदास को परवाना मार्गशीर्ष बदी ७, वि० स० १७८१/२७ अक्टूबर १७२४ जय०

५ उपर्युक्त

६ जयसिंह का महाराणा उदयपुर को खरीता (ड्राफ्ट), मार्ग शीर्ष बदी ८, वि०स० १७८१/१३ नवम्बर १७२४ जय०

७ उपर्युक्त

८ मारवाड री ख्यात २, पृ० १२५

९ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, चैत्र सुदी १०, वि० स० १७८२/३१ मार्च, १७२५ जय०

१० मारवाड री ख्यात २, पृ० १२५

११ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, चैत्र सुदी १०, वि० स० १७८२/३१ मार्च १७२५ जय०

१२ बखतसिंह का पचोली बालकृष्ण को पत्र, श्रावण बदी ८, वि० स० १७८६/७ जुलाई १७२९ जोध० । इस पत्र के अनुसार बखतसिंह ने नागौर पर अपना एकाधिपत्य ३० जून १७२९ को किया । टॉड लिखता है कि बखतसिंह ने नागौर के शासक अमरसिंह के पौत्र इन्द्रसिंह, पर आक्रमण कर उससे नागौर छीन लिया। (ग्रन्थ २, पृ० १०३७)। मारवाड री ख्यात के अनुसार बादशाह मोहम्मदशाह ने अभयसिंह को जुलाई, १७२४ मे नागौर का शासन सौंपा, (भाग २, पृ० १२६)

१३. पे० द० का (१०) ?

१४ जयसिंह का अभयसिंह को खरीता, कार्तिक सुदी ४, वि० स० १७८२/ २० अक्टूबर १७२५ जोध० ।

१५ उपर्युक्त आश्विन सुदी ४, वि० स० १७८२/२६ सितम्बर १७२५ जय० ।

१६ उपर्युक्त

१७ उपर्युक्त, जयसिंह ने अभयसिंह को सलाह दी कि ईडर महाराणा को दे दिया जाए । इसके बदले मे महाराणा से क्षतिपूर्ति ले ली जाए । अभयसिंह ने इस सलाह को उस समय नही माना ।

१८. उपर्युक्त

१९ जयसिंह का अभयसिंह को खरीता मार्गशीर्ष बदी २ वि० स० १७८२/ २५ नवम्बर १७२५ जय०

२० उपर्युक्त, मार्गशीर्ष बदी ८, वि० स० १७८२/२ दिसम्बर १७२५ जय० ।

२१ उपर्युक्त, बादशाह ने शाही दरबार मे अमरसिंह राठौड के पौत्र इन्द्रसिंह को उपस्थित रहने का आदेश दिया जिससे कि नागौर उसे सौंप दिया जाए । शाही दरबार मे यह विचार भी व्यक्त किया गया कि आनन्दसिंह को मारवाड का शासक बना दिया जाए ।

२२ जयसिंह का अभयसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष बदी ३, वि०स० १७८२/ २६ नवम्बर १७२५ जय०

२३ उपर्युक्त, पौष बदी १२, वि० स० १७८२/२० दिसम्बर १७२५ जय०

२४ उपर्युक्त, पौष सुदी ११, वि० स० १७८२/३ जनवरी १७२६ जय०

२५ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, चैत्र बदी ३, वि० स० १७८२/ ९ मार्च १७२६ जय०

२६ उपर्युक्त चैत्र सुदी १०, वि० स० १७८२/३१ मार्च, १७२६ जय०

२७ जयसिंह का अभयसिंह को खरीता, आश्विन सुदी ४,वि० स० १७८२/ २६ सितम्बर, १७२५ जय० ।

२८ उपर्युक्त

२९ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, आश्विन सुदी ६, वि०स० १७८३/ २३ सितम्बर, १७२६ जय० ।

३० उपर्युक्त, चैत्र सुदी १०, वि० स० १७८२/३१ मार्च १७२६ जय०

३१ जयसिंह का अभयसिंह को खरीता, भाद्रपद बदी ११, वि०स० १७८३/ १२ अगस्त १७२६ व आश्विन सुदी ११, वि० स० १७८३ । ११ सितम्बर १७२६ जय० ।

३२. उपर्युक्त, भाद्रपद बदी ४, वि०स० १७८३ । ६ अगस्त १७२६ जय० ।

३३ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, आषाढ वदी ७, वि० स० १७८३/३१ मई १७२७ (वीर-विनोद भाग २, पृ० ९९६ मे उल्लेख)

३४. १७२६ मे मराठो ने मेवाड की सीमा पर पुन आक्रमण करना शुरू कर दिया था।

३५. जयसिंह का अभयसिंह को खरीता, आश्विन वदी ३, वि० स० १७८३/३ सितम्बर १७२६, जयसिंह का महाराणा को खरीता, कार्तिक बदी ४, वि० स० १७८३/४ अक्टूबर १७२६ जय०।

३६ महाराणा सग्रामसिंह का अभयसिंह को खरीता, श्रावण बदी ३, वि० स० १७८४। २५ जून, १७२७ (पो० फो० न० ३, फाइल न० २, जोध०)

३७ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, श्रावण बदी ४, वि० स० १७८४।२६ जून १७२७ जय०

३८ उपर्युक्त

३९ सग्रामसिंह का अभयसिंह को खरीता, कार्तिक बदी २, वि० स० १७८४। २१ सितम्बर १७२७ (पो० फो० न० ३ फाइल न० २, जोध०)

४० अभयसिंह का महाराणा उदयपुर को खरीता, भाद्रपद बदी २, वि० स० १७८५। १० अगस्त १७२८ उद०)

४१ मारवाड री ख्यात २, पृ० १३१

४२-४३-४४ उपर्युक्त।

४५ अभयसिंह का महाराणा उदयपुर को खरीता, भाद्रपद, बदी २, वि० स० १७८५। १० अगस्त १७२८, जयसिंह का सग्रामसिंह को खरीता, भाद्रपद बदी १३, वि० स० १७८५। २२ अगस्त १७२८ उद०।

४६ पे० द० का० (३०) ३१२

४७ उपर्युक्त (१५) ८६

४८. अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, कार्तिक सुदी १२, वि० स० १७८७। १० नवम्बर १७३० जोध०, राजरूपक, प्रकाश ४२, पृ० ६५६ दोहा ८०, पृ० ६९९, दोहा २३८, सियर १, पृ० २५४

४९ अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, कार्तिक बदी २, वि० स० १७८७। १६ अक्टूबर १७३० जोध०। राजरूपक प्रकाश ४४ पृ० ७०७-८११ दोहा १-४५०, सियर (१) पृ० २५४-२५५

५० उपर्युक्त

५१ मीरात ए-अहमदी भाग २, पृ० १३१

५२ अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, कार्तिक बदी २, वि० स० १७८७। १० नवम्बर १७३० जोध०

५३ से ५९ उपर्युक्त (४० लाख रुपये तो सेना के ही बकाया थे।)

६१. उपर्युक्त (१०) ७३
६२. उपर्युक्त (१०) ६७ (१२) ४२
६३. अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, माघ वदी ८, वि० सं० १७८७। १७ जनवरी १७३१ जोध०।
६४. उपर्युक्त, चैत्र सुदी १४, वि० स० १७८७। १० अप्रेल १७३१ जोध०
६५. उपर्युक्त, कार्तिक सुदी १२, वि० स० १७८७। १० नवम्बर १७३० एवं माघ वदी ८, वि० स० १७८७। १७ जनवरी १७३१ जोध०।
६६. उपर्युक्त, कार्तिक सुदी १२, वि० स० १७८७। १० नवम्बर १७३० जोध०
६७ उपर्युक्त एव पत्र माघ वदी ८, वि० स० १७८७। १७ जनवरी १७३१ जोध०।
६८ उपर्युक्त, चैत्र सुदी १४, वि० स० १७८७। १० अप्रेल १७३१ जोध० सघर्ष का विस्तृत वर्णन देखिए मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १४५-१६६
६९ उपर्युक्त, कार्तिक सुदी १२, वि० सं० १७८७। १० नवम्बर १७३० जोध०। सघर्ष का विस्तृत वर्णन देखिए मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १४५-१६६
७० राजवाडे (२) पृ० २८
७१ पे० द० का० (३०) ३१२, सोनगढ खानदेश के पश्चिम मे है।
७२. उपर्युक्त (१३) २
७३. उपर्युक्त (१०) १
७४. मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० ९२-९३
७५. पे० द० का० (१५) ८६
७६. आनन्दसिंह ने मराठो से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर उनसे मारवाड मे अपनी स्थिति की सुरक्षा हेतु सहायता चाही थी। अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, चैत्र सुदी १०, वि० सं० १७८२। ३१ मार्च १७२६ जय०
७७ अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, कार्तिक सुदी १२, वि० स० १७८७। १० नवम्बर १७३० जोध०
७८ अजितोदय सर्ग (२२) (२३) दोहा—१-३५, मारवाड री ख्यात (१) पृ० १४२
७९. बखतसिंह का पत्र, आश्विन वदी १३, वि० स० १७८४। १७ सितम्बर १७२७, जोध०
८० पे०द० का० (नयी सिरीज) (१) ६
८१. अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, कार्तिक सुदी १२, वि० सं० १७८७ १० नवम्बर १७३० जोध०।
८२. मारवाड (२) पृ० १३९
८३. अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, चैत्र सुदी १४ वि० स० १७८७। १० अप्रेल १७३१, जोध०; डेनियाल इन्स का हेनरी लाउथर को पत्र, ७.

अप्रेल १७३१ स० ६७ (सूरत फैक्टरी डायरी ग्रन्थ ६१४), मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १३४ १३५, मारवाड ख्यात (२) १३६

८४. राजवाडे (२) पृ० ५६ इस समझौते के अनुसार सरबुलन्दखां ने अहमदाबाद की आय का ५ प्रतिशत और गुजरात (सूरत के अतिरिक्त) की सरदेशमुखी देने का वचन दिया था।

८५ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १३६

८६ अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, चैत्र सुदी १४, वि० स० १७८७। १० अप्रैल १७३१ जोध०

८७ उपर्युक्त, राजवाडे (२) ६१, पे० द० का० (१२) ४६

८८ अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, चैत्र सुदी १४ वि० स० १७८७। १० अप्रैल १७३१, जोध०।

८९ से ९२ उपर्युक्त

९३ उपर्युक्त (इसी दिनाक का दूसरा पत्र)

९४ उपर्युक्त, ज्येष्ठ सुदी ६, वि० स० १७८७। १८ मई १७३१ जोध०

९५ उपर्युक्त, चैत्र सुदी १४, वि० स० १७८७। १० अप्रैल १७३१, जोध०

९६-९९ उपर्युक्त

१००. मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १३४-१३५

१०१ बाजीराव का महाराजा जयसिंह को पत्र, आषाढ बदी ७, वि० स० १७८८। १५ जून १७३१ कपड-जय०।

१०२ पे० द० का० (१२) ५४, ५५

१०३. अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, चैत्र सुदी १४, वि० स० १७८७। १० अप्रैल १७३१ जोध०।

१०४ मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १३५-१४१, महाराजा ने जाली फरमानो, जाली सिक्को और धार्मिक भूमि पर राज्य के पुनः अधिकार की नीति अपनायी। एकत्र धन का काफी भाग जोधपुर भेजा गया। मारवाड री ख्यात के अनुसार गुजरात की तीन वर्ष की कुल आय, जो महाराजा को प्राप्त हुई थी, ८५, ३४,००० रुपये थी (ग्रन्थ २ पृ० १३८) राठोड दानेश्वर वशावली पृ० २६८, दोहा ३१

१०५ अभयसिंह का अमरसिंह को पत्र, चैत्र सुदी ११, वि० स० १७८८। २६ मार्च १७३२, जोध०

१०६ उपर्युक्त एव पत्र, वैशाख सुदी १३, वि० स० १७८८। २६ अप्रैल १७३२, जोध०।

१०७ उपर्युक्त मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४०

१०८ उपर्युक्त

१०९ उपर्युक्त, डाकोर वैष्णव व जैन मतावलम्बियो के लिए धार्मिक स्थान है, अत पीलाजी की हत्या से हिन्दू भावनाग्रो को गहरी ठेस लगी।

११० अभयसिंह का अमरसिंह भण्डारी को पत्र, वैशाख सुदी १३, वि० स० १७८८। २६ अप्रैल १७३२, जोध०, महाराजा ने वजीर को सूचित किया कि इस अवसर पर उसन मराठा से ७०० से ८०० घाडे और कुछ तोपें छीनी थी।

१११ उपर्युक्त, ज्येष्ठ वदी २, वि० स० १७८८। ३० अप्रैल १७३२ और पत्र दिनाक भाद्रपद बदी १, वि० स० १७८९। २७ जुलाई १७३२ जोध०

११२ उपर्युक्त, ज्येष्ठ वदी २, वि० स० १७८८। ३० अप्रैल १७३२ एव पत्र दिनाक आषाढ सुदी ११, वि० स० १७८८। ७ जून १७३२ जोध०

११३ उपर्युक्त, भाद्रपद बदी १, वि० स० १७८९। २७ जुलाई १७३२—जोध० शाही दरबार को गुप्त स्रोतो से यह सूचना प्राप्त हुई कि महाराजा को बडौदा से ३० लाख रुपये प्राप्त हुए। अतः महाराजा को कोई सहायता नही भेजी गयी।

११४ मीरात-ए अहमदी (२) पृ० १४३-१४४

११५ अभयसिंह का भण्डारी अमरसिंह को पत्र, भाद्रपद बदी १, वि० स० १७८९। २७ जुलाई १७३२ जोध०। गेहू का भाव एक रुपये का एक सेर था। घास मिल नहीं पा रही थी। सैनिक व घोडे ग्राम के पत्ते खाने लगे थे, जिससे कई सौ अच्छे घोडे मर गये।

११६. उपर्युक्त, बकाया वेतन की धन-राशि करीब तीस लाख रुपये थी, महाराजा ने एक लाख रुपया ऋण लेकर शेरखा बाबी को भेजा था, जिससे कि वह बडौदा की रक्षा कर सके।

११७ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १२९

११८ ग्राण्टडफ : मरहठो का इतिहास (अंग्रेजी म) (१) पृ० ३८१

११९ पे० द० का० (१४) १

१२० उपर्युक्त, मीरात ए अहमदी (२) पृ० १५७—१५८, राठौड दानेश्वर वशावली पृ० २६६, दोहा २७

१२१ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४१

१२२ राजवाडे (२) पृ० ६४, मीरात ए-अहमदी (२) पृ० १६०-१६१, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४१, इसके अनुसार महाराजा ने दो लाख रुपये देने का वचन दिया।

१२३ मीरात ए-अहमदी (२) पृ० ६१

१२४ दयालदास रीख्यात (२), ६१

१२५ मीरात-ए अहमदी (२) पृ० १६२-१६३ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४२-१४३

१२६. मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १६३-१६८, १७७-२३६ (रतनसिंह के कार्यों का विस्तृत वर्णन)

१२७. उपर्युक्त, पृ० १६५-२३६, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४६

१२८ दयालदास री ख्यात (२) ६१, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४६

१२९ अभयसिंह का अमरसिंह भडारी को पत्र, मार्गशीर्ष सुदी ७, वि० स० १७९० ३० नवम्बर १७३३, जोध०

१३० उपर्युक्त, दिनाक फाल्गुन सुदी १०, वि० सं० १७९०। ३ मार्च १७३४ जोध०

१३१ से १३५ उपर्युक्त

१३६. वश भास्कर (४) पृ० ३१२६-३१२७, वि० स० १७९०-१७९१, बस्ता न० ४७ भण्डार न० १, कोटा रिकार्ड राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर।

१३७. टाड (१) पृ० ४८२-४८३ (फुट नोट), वश भास्कर (४) पृ० ३२२७-३२२८; राठौड दानेश्वर वंशावली, पृ० २६९-२७० दोहा ३९-४१, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४२-१४३; वीर-विनोद (२) पृ० १२१९-१२२१ हुरडा सम्मेलन की तिथि के बारे मे, मैंने वीर-विनोद की तिथि को सही मानकर स्वीकार किया है। वश-भास्कर के अनुसार यह सम्मेलन कार्तिक सुदी (अक्टूबर) मे हुआ था, टाड यह तिथि श्रावण सुदी १३ (१ अगस्त) लिखता है, मारवाड री ख्यात मे सिर्फ वर्ष दिया हुआ है, माह और दिनाक नही है। समझौते मे 'वर्षा के बाद' मिलने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि सम्मेलन वर्षा के पहले हुआ था। राजस्थान मे जुलाई के मध्य से सामान्यत वर्षा शुरू होती है। टाड ने श्रावण सुदी लिखा है, सम्भवतः सुदी के स्थान पर 'बदी' हो, जो भूल से अंकित कर दी गयी हो। अत वीर-विनोद की तिथि १३ जुलाई १७३४ ठीक प्रतीत होती है। टॉड के 'वदि' से इसकी पुष्टि होती है।

१३८. सियर (१) पृ० २६८-२६९, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४३

१३९ पे० द० का (१४) २१, २३, (३०) ३१२-३१८; सियर (१) पृ० २८६; वशभास्कर (४) पृ० ३२२७; धार स्थित मराठा वकील नारो शिवदेव के अनुसार इस सेना (मुगल-राजपूत सयुक्त सेना) मे दो लाख अश्वारोही और असख्य पैदल थे। मारवाड री ख्यात (ग्रन्थ २) पृ० १४४ भी यही सख्या अंकित करता है परन्तु यह सख्या बहुत अधिक प्रतीत होती है। ऐतिहासिक चरित्रं (पत्र ६८) मे लिखी सख्या पचास हज़ार ठीक प्रतीत होती है।

१४०. पे० द० का० (१४) २१-२३, सियर (१) पृ० २८६

१४१ हस्ताक्षरियो मे आपसी मनमुटाव सम्मेलन समाप्त होते ही होने लग गये थे। जयसिंह ने मुगलो से माँग की कि उसे रणथम्भौर का किला दे दिया जाए। इस पर अभयसिंह ने गढ़ बीटली (अजमेर का तारागढ) की माँग की।

बादशाह ने इसे स्वीकार नहीं किया । राठौड दानेश्वर वंशावली, पृ० २७०, दोहा ४२-४४ ।

१४२ पे० द० का० (१४) २३-२७, (२२) २८४, हिंगणें दफ्तर (१) २, रस्तम अली, तारीख-ए-हिन्द (इलियट और डाऊसन : ग्रन्थ (८) पृ० ५०-५१

१४३. पे० द० का (१५) ८६, ६१, सियर (१) पृ० २८६, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४४, सतीशचन्द्र, पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, पृ० २२३

१४४. पे० द० का० (१४) ३६

१४५ पे० द० का० (१५) ८६, ६१, सतीशचन्द्र ' पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, पृ० २२३, डा सतीशचन्द्र के अनुसार १७३५-१७३६ मे मराठों के विरुद्ध कोई मुगल सैनिक अभियान नही हुआ (पृ० २४०)

१४६. पे० द० का (१४) ३६, जयसिंह की अप्रसन्नता का यह कारण भी था कि आगरा और मालवा की सूबेदारी उससे लेकर वजीर को दे दी गयी थी ।

१४७ पे० द० का (१४) ४७, ५१

१४८. पे०द० का (३०) ३२२-३२४

१४९. पे०द० का० (२६) ३६

१५० पे०द० का० (१३) ४६, मारवाड री ख्यात (२), पृ० १४५

१५१. १७३४ से ही होल्कर और प्रतापसिंह हाडा मे मित्रता थी । उसकी वजह से ही बुधसिंह को मराठी सहायता प्राप्त हो सकी ।

१५२. पे० द० का० (१४) १४ (इस पत्र का सही दि १ अप्रैल १७३६ है), मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० १९२-९३, इसके अनुसार मल्हारराव व कन्याजी भीनमाल के मार्ग मे मारवाड मे प्रविष्ट हुए, तारीख ए-हिन्द (इलियट और डाऊसन, ग्रन्थ (८) पृ० ५२, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १४५ १४६, इस ग्रन्थ के अनुसार होल्कर और सिंधिया ने गुजरात की ओर से मारवाड मे प्रवेश किया । इनके पास ५०,००० सेना थी । वे जालौर, सोजत, बिलाडा को लूटते हुए मेडता पहुँचे । एक अन्य मराठी टुकडी जोधपुर की ओर बढ़ी और रातानाडा का क्षेत्र लूटा ।

१५३. पे० द० का० (१४) ५४

१५४. उपर्युक्त (१५) ८६, ९१

१५५. उपर्युक्त (२२) ३४१, वंश भास्कर (४) पृ० ३२४०, सतीशचन्द्र–पार्टीज एण्ड पोलिटिक्स एट द मुगल कोर्ट, पृ० २३०-२३१

१५६. पे० द० का० (३०) १६७, (१५) १७, १८, सियर (१) पृ० २९१-२९२

१५७ पे० द० का० (१५) १८

१५८ पे० द० का० (१५) १७, ३७ (३०) १६८, २००, मियर (१) पृ० २६१-२६२

१५६ पे० द० का० (१५) ३०, ५ अप्रेल को अभयसिंह जोधपुर में था (बाजीराव का जयपुर से चिमनाजी अप्पा को लिखा ५ अप्रेल १७३७ का पत्र)।

१६०. पे० द० का० (१५) ६८, ६६

१६१ उपर्युक्त ३३

१६२. पे० द० का० (नयी सीरीज) (१) ५६

१६३ पे० द० का० (२१) २

१६४ उपर्युक्त

१६५ उपर्युक्त (नयी सीरीज) (१) ५६

१६६ मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १५५-१५६

१६७ उपर्युक्त

१६८ राठौड़ दानेश्वर वशावली, पृ० २८३, दोहा ११६

१६६ अभयसिंह का जयसिंह को खरीता, माघ सुदी २, वि० स० १७६८। ३० जनवरी १७४२, कपड़ जय०

१७० पे० द० का० (२७) (इस पत्र का सही दिनाक १३ मार्च १७४२ है)

१७१ जब अभयसिंह ने १७४३-१७४४ ई० मे अजमेर पर आक्रमण किया तो बख्तसिंह उससे अलग हो गया। (मारवाड़ री ख्यात २, पृ० १५७) बीकानेर के उत्तराधिकार-युद्ध मे दोनो भाइयो ने एक दूसरे के विरोधी प्रत्याशियों का साथ दिया (दयालदास री ख्यात) (२) (६६-७२), पे० द० का० (२)।

१७२ मीरात-ए-अहमदी (२) पृ० ३७६ ३७७, हिंगणें दफ्तर (१) ३२, मारवाड़ री ख्यात (२), पृ० १६०

१७३ मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १६०

१७४ उपर्युक्त

१७५. उपर्युक्त, दयालदास री ख्यात (२) ७१-७२

१७६ मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १६०

१७७-१७८. उपर्युक्त

१७६ जयसिंह की मृत्यु सितम्बर १७४३ मे हुई। ईश्वरसिंह, जो कि जयसिंह का बड़ा पुत्र था, नया शासक बन गया। इस पर उसके सौतेले भाई माधोसिंह ने विद्रोह कर दिया। मई, १७४८ मे बालाजी बाजीराव पेशवा ने निवाई नामक स्थान पर दोनो भाईयो के बीच समझौता करा दिया। बालाजी के प्रस्थान के शीघ्र बाद ही ईश्वरसिंह ने समझौते की शर्तो को भग करना शुरु

किया। पेशवा ने होल्कर को माधोसिंह के पक्ष मे शर्तें बनाये रखने हेतु जयपुर जाने का आदेश दिया।

१८० दयालदास री ख्यात (२) ७१-७२' मारवाड री ख्यात (२), पृ० १६०

१८१ वंश भास्कर (४), पृ० ३४८३-३५२७, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १६०

१८२ पे० द० का० (२) १, मारवाड री ख्यात (२), पृ० १५९

१८३ वंशभास्कर (४) पृ० ३५३४ ३५४३, मारवाड री ख्यात (२), पृ० १५०–१६०

१८४ उपर्युक्त मारवाड मे मराठा प्रतिनिधि कृष्णाजी जगन्नाथ ने पेशवा को लिखा कि मल्हार राव और अभयसिंह धर्म भाई बन गये हैं (जोध० ये थील, ५)

१८५ हिंगणें दफ्तर (१) ३२, बखतसिंह–अभयसिंह की अन्तिम मुलाकात २९ दिसम्बर १७४८ को हुई।

१८६ वंश भास्कर (४) पृ० ३५८३-३५८४

१८७ मारवाड री ख्यात (२), पृ० १६१

अध्याय ३

रामसिंह और बखतसिंह के बीच गृह युद्ध (१७४६–१७५२) और मराठा हस्तक्षेप

राम और बखत में वैमनस्य

१७४८ मे बखतसिंह की शक्ति मे आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। नये मुगल बादशाह अहमदशाह ने उसे गुजरात और अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया, जिससे वह उन क्षेत्रो मे मराठों के प्रभाव को रोके।[१] अभयसिंह और बखतसिंह के बीच १७४० से ही मनोमालिन्य प्रारम्भ हो चुका था। बखतसिंह की महत्त्वाकाक्षा दिनो-दिन बढ रही थी। वह जोधपुर की गद्दी प्राप्त करना चाहता था। होल्कर की सहायता से अभयसिंह ने अपने भाई की महत्त्वाकाक्षा को सीमित रखा परन्तु ज्योंही उसके भतीजे रामसिंह ने १३ जुलाई, १७४६ को गद्दी प्राप्त की, उसकी महत्त्वाकाक्षा पुन उग्र हो गयी।[२]

मारवाड का नया शासक उस समय १६ वर्ष का था।[३] उसके बारे म उसके पिता का भी विश्वास था कि वह मारवाड का शासक बनने म असमर्थ रहेगा। वह अत्यत लापरवाह, दुराचारी, दुश्चरित्र एव विश्वासघाती था। ऐसे शासक के लिए यह असभव था कि वह अपने महत्त्वाकाक्षी चाचा के होते हुए शान्ति से शासन कर सके। इसके अलावा अभयसिंह के समय लगातार कभी मराठो से, कभी बीकानेर से और समय-समय पर जयपुर से युद्धों मे उलझे रहने के कारण मारवाड की वित्तीय स्थिति अत्यत कमजोर हो गयी थी।[४] इन परिस्थितियों मे सामती दलो की बन आयी। उनके आपसी द्वेष के कारण मारवाड का राजनैतिक वातावरण अशान्त हो गया। यो रामसिंह सुसस्कृत और अच्छी समझ का था परन्तु अपने अस्थिर, उग्र और उत्शृखल स्वभाव के कारण उसने मारवाड के सामन्तो को नाराज कर दिया था।

मल्हारराव होल्कर ने रामसिंह को राठौडो के नये शासक के रूप मे मान्यता देकर उसकी स्थिति को मज्बूत बना दिया। राजतिलक के अवसर पर उसने एक हाथी और टीका भेजा,[५] पर बखतसिंह ने उसे शासक मानने से इन्कार कर दिया।[६] बीकानेर के शासक गजसिंह से मिलकर वह रामसिंह के विरुद्ध युद्ध की तैयारी करने लगा।[७]

गृह-युद्ध का नगाडा बज चुका था। राठौड सामन्त दो गुटो मे विभाजित हो गये। कुछ सामन्त, जिनका नेतृत्व आउवा के कुशालसिंह, आसोप के कनीराम और खीवसर के ठाकुर कर रहे थे—रामसिंह के स्वभाव व आचरण से अति क्षुब्ध हो चुके थे। महाराजा ने छोटी जाति के लोगो, भामिया नगारची, चन्दा-चाकर, सरफुद्दीन चूडीगर और खुदाबख्श घसियारे को अपना सलाहकार बना लिया था। अतः उपर्युक्त सामन्त नागौर चले गये।[८] बखतसिंह ने अपनी सीमा पर उनका स्वागत किया।[९] उन्हे अपनी सेवा मे लेकर कई जागीरें प्रदान की।[१०] बाकी रीया, कुचामन, आलनियावास, भाद्राजून आदि के अन्य जागीरदार महाराजा रामसिंह के भक्त बने रहे और उसके झण्डे के नीचे एकत्र हो गये।[११] रामसिंह ने अपने चाचा से जालौर का किला, जिसमे राज्य कोष सुरक्षित था, लेने की कोशिश की परन्तु वह सफल नहीं हो सका।[१२]

बाह्य शक्तियो का हस्तक्षेप

दोनो दलो ने बाह्य शक्तियों की सहायता के लिए प्रयास करना प्रारम्भ किया। रामसिंह ने १७५० के प्रारम्भ मे जयपुर के महाराजा ईश्वरसिंह से सहायता मांगी।[१३] राजस्थान की राजनीति मे यह एक नया मोड था। १७४१ मे सवाई जयसिंह ने अभयसिंह को गद्दी से हटाने और रतनसिंह को गद्दी पर बैठाने की कोशिश की थी, परन्तु मई १७४१ मे गगवाना के युद्ध मे जब वह हार गया तो उसे राठौड शासक के साथ समझौता करना पडा। १७४३ मे उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्रो मे, ईश्वरीसिंह और माधोसिंह के बीच उत्तराधिकार युद्ध हुआ। अभयसिंह ने मल्हारराव होल्कर से मिलकर माधोसिंह का साथ दिया। राठौड कछवाह वैमनस्य, जो परम्परा से चला आ रहा था, और तीव्र हो गया। अब ईश्वरी सिंह ऐसे समय की खोज मे था जबकि मारवाड मे हस्तक्षेप का अवसर प्राप्त हो। मई १७४८ मे बखतसिंह के विद्रोह के समय यह सुअवसर प्राप्त हुआ। परन्तु मराठो के साथ सघर्ष म सलग्न होने के कारण वह कुछ न कर सका। बगरू के युद्ध के बाद उसके राज्य मे अस्थायी शान्ति स्थापित हो गयी, परन्तु आंतरिक स्थितियो के कारण राज्य में पुन अराजकता फैलने लगी।[१४] अत जब मारवाड के शासक रामसिंह की ओर से सहायता के लिए सदेश प्राप्त हुआ तो उसने परम्परागत वैमनस्य को मित्रता में बदलकर एक-दूसरे की सहायता करने की नीति अपनायी।[१५] जब यह सूचना बखतसिंह को मिली तो उसने माधोसिंह को सहायता के लिए लिखा।[१६] ईश्वरीसिंह की चालों को निष्क्रिय करने के लिए माधोसिंह न बखतसिंह को सूचित किया कि वह सहायता के लिए तैयार है।[१७] इसके अलावा बखतसिंह को मुगल सहयोग भी प्राप्त हो गया। बादशाह ने इस शर्त पर उसकी सहायता की कि वह अजमेर और आगरा के सूबों से मराठो को दूर रखने म उसकी मदद करेगा।[१८] रामसिंह और बखतसिंह ने जयपुर मे प्रतिद्वन्द्वी तत्वों का सहयोग तो प्राप्त कर लिया था परन्तु यह

पर्याप्त नही था। अत दोनो ने मराठो की सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। माधोसिंह ने नवम्बर, १७४९ मे बखतसिंह को सूचित किया कि वह उदयपुर के महाराणा से सैनिक सहायता लेकर और समव हो सकेगा तो होल्कर के ५०००-६००० मराठा सैनिको को लेकर उसकी सहायता को पहुचेगा।[१९] रामसिंह ने ईश्वरीसिंह से प्रार्थना की कि वे मराठा सहायता के लिए भी प्रयास करें।[२०] जयपुर के शासक ने अपने दीवान केशोराय को, जो कि रायमल का पुत्र था, शाहू और पेशवा के पास भेजा।[२१] पेशवा ने १५०० सैनिक रामसिंह की सहायतार्थ भेजे।[२२] होल्कर ने रामसिंह के लिए अपने पुत्र के नेतृत्व मे एक फौज भेजी।[२३]

पीपाड-युद्ध (१४ से १६ अप्रैल १७५०) और उसके बाद

बखतसिंह को मुगलो की पूरी सहायता प्राप्त हुई। बख्शी सलावतखा ने एक बडी फौज लेकर दिल्ली से प्रस्थान किया। बखतसिंह उसकी अगुवाई करने के लिये नारनौल पहुँचा। फिर वे दोनो अजमेर, मेडता होते हुए जोधपुर चले। पीपाड से ४ मील पूर्व उन्होने अपना डेरा जमाया। इसी बीच रामसिंह, ईश्वरीसिंह और उनके मराठे सहयोगी ३०,००० सैनिक और एक बडे भारी तोपखाने के साथ जोधपुर से रवाना होकर ४ अप्रैल, १७५० को पीपाड पहुँचे। अप्रैल माह मे भयकर गर्मी और अपर्याप्त जल के अभाव के कारण दोनो दलो की सेना परेशान होने लगी। सलावतखा ने ईश्वरीसिंह के द्वारा रामसिंह और बखतसिंह के बीच समझौता कराने की पहल की। १० दिन तक वार्ताएँ चलती रही। परन्तु समझौता न हो सका। मराठे इस दौरान तटस्थ रहे। गर्मी की अधिकता, पानी की कमी और निष्क्रियता के कारण वे अत्यन्त परेशान थे। अत बहुत-सी मराठा फौज वहां से प्रस्थान कर गयी। रामसिंह के कई जागीरदारो ने भी दल बदलने का क्रम प्रारम्भ किया। १४ अप्रैल से १६ अप्रैल तक अनियोजित युद्ध हुआ। अन्त मे सलावतखा और रामसिंह ने समझौता करने का निर्णय किया। १६ अप्रैल को शान्ति-सधि पर हस्ताक्षर हो गये। इस सधि के अनुसार रामसिंह ने मुगल सम्राट को सात लाख रुपये देने का वचन दिया, जिसमे ३ लाख नकद और बाकी के ४ लाख किश्तो के अनुसार देने का तय किया। बखतसिंह को कुछ भी प्राप्त नही हुआ।[२४]

यह समझौता बखतसिंह को अमान्य था क्योंकि उसका किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हुआ। अत वह पीपाड से हटकर नागौर चला गया।[२५] वहां जाकर रामसिंह के विरुद्ध युद्ध की पुन तैयारियां करने लगा। ज्योंही बाह्य शक्तियां मारवाड से हट गयी उसने रामसिंह पर आक्रमण कर दिया। २७ नवम्बर, १७५० को लूणियावास के स्थान पर चाचा और भतीजे के बीच एक भयकर युद्ध हुआ।[२६] रामसिंह को अपनी राजधानी की ओर भागना पडा।[२७] इस युद्ध के बाद अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए बखतसिंह को अनुकूल परिस्थितियां मिलने लगीं। १२

दिसम्बर १७५० को जयपुर के शासक ईश्वरीसिंह ने आत्म-हत्या कर ली।[२८] मल्हारराव होल्कर की सैनिक सहायता से माधोसिंह दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में जयपुर का शासक बन गया।[२९] बखतसिंह ने माधोसिंह को याद दिलाया कि रामसिंह के विरुद्ध उसे मराठा सहायता प्राप्त होनी चाहिए।[३०] इसके साथ ही उसने लिखा कि मल्हारराव पर, जो उस समय जयपुर में था, वह दबाव डाले कि रामसिंह को किसी प्रकार की सहायता न दे।[३१] उक्त पत्र मे इस बात का स्पष्ट संकेत था कि वह किसी प्रकार रामसिंह से समझौता करने को तैयार नही था अत होल्कर इस प्रकार का प्रयास नही करने पाए।[३२] उसकी इच्छा यही थी कि होल्कर उसकी (बखतसिंह की) सहायता न करे तो वह कम-से-कम तटस्थ तो बना ही रहे।[३३]

रामसिंह ने भी होल्कर से सम्पर्क स्थापित किया। उसके पिता अभयसिंह के अन्तिम दिनों से ही होल्कर के साथ पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। अतः अपने चाचा की विद्रोही प्रवृत्तियो को दबाने हेतु रामसिंह ने होल्कर से सहायता मांगी। उसने अपने प्रतिनिधि को जयपुर भेजा जिससे कि वह होल्कर को जोधपुर ला सके।[३४] होल्कर के लिए दुविधा का समय था। एक ओर पारिवारिक सम्बन्ध, दूसरी ओर माधोसिंह का दबाव। अत उसने तटस्थ रहने का बहाना किया।[३५] इसी बीच मुगल राजनीति की दलबन्दी और आपसी संघर्ष के कारण होल्कर का ध्यान उधर चला गया। उसके पास वजीर सफदरजग की ओर से सहायता के लिए संदेश आने लगे।[३६] यह बहाना उचित मिला। होल्कर फरवरी १७५१ के प्रथम सप्ताह में जयपुर से मथुरा की ओर चल पड़ा।[३७] इसका लाभ उठाकर बखतसिंह ने रामसिंह को मेड़ता के युद्ध मे हराया और जोधपुर पर आक्रमण कर उस पर २१, जून १७५१ को अधिकार कर लिया।[३८]

रामसिंह का यह दुर्भाग्य था कि एक अनुपयुक्त समय पर गृह युद्ध प्रारम्भ हुआ। जयपुर और दिल्ली की राजनैतिक गतिविधियो की ओर होल्कर का ध्यान बँटा हुआ था अत वह अपने धर्म भाई के पुत्र को उचित सहायता नही दे सका। सितम्बर १७५० से फरवरी १७५१ तक के समय में पहले तो ईश्वरीसिंह ने मराठो को चुनौती देकर जयपुर मे उनका हस्तक्षेप आमन्त्रित किया।[३९] बाद में, उसकी मृत्यु के बाद माधोसिंह ने भी मराठा से झगड़ा मोल ले लिया। उसने दक्षिणी सिपाहियो को अपने नगर में आमन्त्रित कर उनकी हत्या करवा दी।[४०] इसी बीच रुहेलखण्ड मे वजीर सफदरजग के सामने एक समस्या उठ खड़ी हुई और उसने होल्कर से सहायता मांगी।[४१] इसके अलावा रामसिंह के प्रतिनिधि ने होल्कर को प्रसन्न बनाये रखने के लिए कोई विशेष प्रयास नही किया। होल्कर भी जोधपुर के नये शासक से प्रसन्न नही था। राजतिलक के समय होल्कर का टीका लेकर उसका प्रतिनिधि जोधपुर पहुँचा तो नये शासक ने उचित व्यवहार नही किया, जिससे होल्कर क्षुब्ध हो

उठा।[४२] धीरे-धीरे प्रभावशाली जागीरदार रामसिंह का साथ छोडने लगे। इस परिवर्तन को भी होल्कर नगण्य नही मान सकता था। फिर भी वह रामसिंह से सम्बन्ध-विच्छेद के पक्ष मे नही था। इसलिए पीपाड के युद्ध (१७४६) मे उसने एक छोटी सी टुकड़ी रामसिंह की सहायतार्थ भेजी थी।[४३] परन्तु उसके बाद वह तटस्थ रहा। उसकी तटस्थता के कारण ही रामसिंह को बखतसिंह से हार खानी पडी और जोधपुर से भागना पडा। परन्तु बखतसिंह की विजय का श्रेय मराठा तटस्थता को ही नही बल्कि राज्य के बडे जागीरदारों एवं मुगल दरबार के सहयोग को भी था।[४४]

मराठा हस्तक्षेप (१७५१–१७५२)

जोधपुर हाथ से निकल जाने के बाद रामसिंह मारोठ चला गया।[४५] वहां वह अपनी सेना को पुनः सगठित करने लगा। साथ ही उसने अपने प्रतिनिधि पुरोहित जगन्नाथ को माधोसिंह के पास सहायता प्राप्त करने के लिए भी भेजा।[४६] जोधपुर पर अधिकार करने के बाद बखतसिंह के लिए यह आवश्यक हो गया कि रामसिंह कहीं से सहायता प्राप्त नही कर सके। इसी उद्देश्य से उसने अपने प्रतिनिधि बारहठ करणीदान को आदेश दिया कि जयपुर महाराजा से मिलकर पूर्ण स्थिति से अवगत कराए तथा रामसिंह के कार्मों को सफल न होने दे।[४७] मारवाड के गृह-युद्ध मे माधोसिंह का हस्तक्षेप करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। जयपुर-स्थित मराठा राजदूत गोविन्द तामाजी ने जुलाई १७५१ मे[४८] अपने एक पत्र मे दिल्ली स्थित मराठा प्रतिनिधि बापूजी महादेव हिंगणे को सूचित किया कि माधोसिंह ने पुरोहित जगन्नाथ को दरबार मे आमन्त्रित किया एवं उसके विचारो पर सहानुभूति से गौर किया। बखतसिंह की बढती हुई शक्ति माधोसिंह के लिए ठीक नही थी। वह उसके उग्र स्वभाव व महत्वाकाक्षा को जानता था। अत कहीं जयपुर की शक्ति के लिए वह चुनौती न बन जाए इस दृष्टि से उसने रामसिंह को सहायता देने की नीति अपनायी। परन्तु जयपुर-शासक की शक्ति इतनी नही थी कि वह तत्काल ही सेना और धन से गद्दी-च्युत शासक की सहायता कर सके। अत उसने पुरोहित जगन्नाथ को अपने जागीरदारो सहित होल्कर व सिन्धिया से सहायता प्राप्त करने को लिख दिया।

पुरोहित जगन्नाथ मराठो के प्रतिनिधि बापूजी महादेव हिंगणे से मिला।[४९] तामाजी ने अपने पत्र मे इस बात का सकेत भी दिया था कि पुरोहित दो मास के लिए १०,००० सैनिकों का व्यय तत्काल देने को तैयार था।[५०] उसका विश्वास था कि रामसिंह और बखतसिंह के बीच एक साल तक युद्ध चलेगा और मराठो को करीब एक करोड रुपये प्राप्त होने की सम्भावना थी।[५१] हिंगणे ने होल्कर और सिन्धिया को सूचित किया कि वे रामसिंह को सहायता करें।[५२]

जब जगन्नाथ पुरोहित होल्कर के पास पहुँचा तो उसे इस कार्य मे सहायता देने के प्रति उदासीन पाया।[५३] इसी बीच बखतसिंह ने अपने प्रतिनिधि राजसिंह चौहान

द्वारा होल्कर को २ लाख रुपये देकर अपनी ओर कर लिया था ।[५४] पुरोहित ने होल्कर की बहुत मिन्नतें की । अमरसिंह को दिये गये वचन की याद दिलायी, पर होल्कर इस बहाने से उसे लगातार टालता रहा कि इस प्रकार के सैनिक अभियान के लिए पेशवा साथ नहीं देगा ।[५५] पर पुरोहित ने दबाव डालना नहीं छोड़ा । इस पर होल्कर ने उसे जयप्पा सिंधिया से मिलने को कहा ।[५६] दो माह तक राठौड़ प्रतिनिधि होल्कर व सिन्धिया से वार्ता करते रहे ।[५७] सिन्धिया ने १०-१२ हजार सैनिकों के लिए दो माह का खर्च पहले मांगा, जिसे जगन्नाथ ने शीघ्र ही दे दिया ।[५८] इस पर सिन्धिया ने राठौड़ प्रतिनिधियों को विश्वास दिलाया कि ज्योंही हाथ में लिया हुआ सफदरजंग-अफगान संघर्ष समाप्त होगा, वह रामसिंह की सहायता के लिए प्रस्थान करेगा ।[५९]

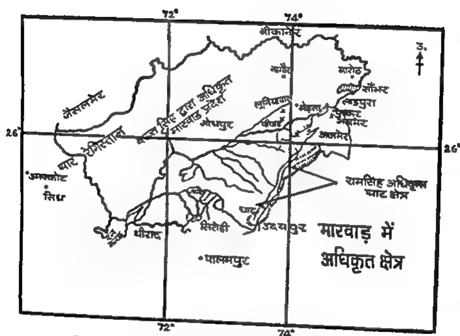
अप्रैल, १७५२ में सफदरजंग का अफगानों से संघर्ष समाप्त हुआ । शीघ्र ही होल्कर व सिन्धिया को पेशवा का सन्देश प्राप्त हुआ कि वे दक्षिण के नये सूबेदार गाजीउद्दीन को लेकर चले आएँ । अत १४ मई को वे पूना के लिए चल पड़े ।[६०] मई के अन्त में मार्ग में ही ५,००० सैनिकों सहित सिन्धिया ने, होल्कर से अलग होकर, अजमेर पर अधिकार कर लिया ।[६१] वह अधिक दिनों तक अजमेर में नहीं रहा । रामसिंह की सहायता का काम उसने साहिबा पटेल को सौंपा । फिर वह दक्षिण की ओर चल पड़ा ।[६२] मराठों का अजमेर पर अधिकार हो जाने से मारवाड़ में इसकी भयकर प्रतिक्रिया हुई । अपने राठौड़ सरदारों सहित आक्रमणकारियों का सामना करने हेतु बख्तसिंह जून, १७५२ में जोधपुर से चला ।[६३] अजमेर के पास लाडपुरा में उससे बीकानेर का शासक गजसिंह भी आ मिला ।[६४] दोनों पुष्कर की ओर बढ़े,जहाँ बख्तसिंह ने अपनी सीमा पर सुदृढ़ रक्षा-पंक्ति स्थापित की।[६५] इसी बीच साहिबा पटेल मारोठ गया और वहाँ से रामसिंह को अजमेर ले आया ।[६६] जुलाई के मध्य में बख्तसिंह ने अचानक मराठों पर आक्रमण कर दिया ।[६७] राठौड़ अश्वारोहियों और तोपखाने के आगे रामसिंह और मराठे टिक न सके । १८ जुलाई, १७५२ के युद्ध में वे हार कर रामसर की ओर भाग गये ।[६८] बाद में साहिबा पटेल और उसकी मराठी सेना दक्षिण की ओर चल पड़ी ।[६९] रामसिंह को मारोठ में रखा हुआ अपना तोपखाना भी गँवाना पड़ा क्योंकि बख्तसिंह के पुत्र विजयसिंह ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया था ।[७०] परन्तु बख्तसिंह रामसिंह से घाट क्षेत्र[७१] को छीनने में असफल रहा ।[७२]

इस विजय के बाद इसकी संभावना अधिक बढ़ गयी कि मराठे पुनः कभी भी आक्रमण कर सकते हैं । अत बख्तसिंह ने राजपूत शासकों का नया संयुक्त मोर्चा बनाने की योजना गठित की, जिससे राजस्थान से मराठों को दूर रखा जा सके ।[७३] उसने कई राजपूत शासकों से पत्र-व्यवहार किया । अजमेर के पास स्थित शकरदत्त के नेतृत्व में पाच हजार की कछवाही फौज ने बख्तसिंह का साथ देने का निश्चय

किया।[७४] शाहपुरा के शासक उम्मेदसिंह की ओर से उसका प्रतिनिधि फतेहराय कायस्थ सयुक्त कार्यवाही के लिए बात-चीत करने पहुँचा।[७५] बखतसिंह ने माधोसिंह को एक प्रस्ताव भेजा कि राठौड कछवाहा फौज मराठा को नर्मदा नदी के पार धकेल दे और मालवा पर अधिकार कर उसे दोनो मे बीच विभाजित कर ले।[७६] इससे माधोसिंह होल्कर से बदला ले सकेगा और बखतसिंह सिंधिया से।[७७] माधोसिंह-बखतसिंह मुलाकात निश्चित की गयी। १४ अगस्त, १७५२ को बखतसिंह केकडी से रवाना हुआ।[७८]

वह माधोसिंह से सोनेली गाव मे १८ सितम्बर, १७५२ को मिला।[७९] इस मुलाकात की दिल्ली मे बडी प्रतिक्रिया हुई। वहाँ के मराठा सेनापति अन्ताजी मनकेश्वर ने पेशवा को सूचित किया कि जयपुर व जोधपुर के शासक उत्तरी भारत से मराठो के प्रभुत्व को समाप्त करने के लिए सयुक्त योजना बना रहे हैं।[८०] परन्तु इसके पूर्व कि सारी योजना को अन्तिम रूप दिया जा सके, बखतसिंह का २१ सितम्बर, १७५२ को सोनेली गाव म स्वर्गवास हो गया।[८१] बखतसिंह का सम्पूर्ण जीवन सघर्षमय रहा। पहले तो उसने जोधपुर की राजगद्दी से अपने भतीज रामसिंह को, जो कि अयोग्य और कमजोर शासक था, हटाने के लिए सघर्ष किया। इसमे उसने सफलता प्राप्त की। बाद म, उसने अपने राज्य को मराठो के हस्तक्षेप से दूर रखने के लिए कठोर परिश्रम किया। मराठो ने जयपुर के उत्तराधिकार-सघर्ष (१७४३-१७५१) मे जिस सीमा तक हस्तक्षेप किया, बखतसिंह न जोधपुर की राजनीति मे उस हस्तक्षेप को नगण्य कर दिया। रामसिंह ने दो बार मराठो की सहायता ली। परन्तु दोनो ही बार मराठे मारवाड की सीमा मे प्रवेश नही कर पाये। बखतसिंह की असामयिक मृत्यु से मारवाड की गद्दी के उत्तराधिकारी की समस्या का युद्ध से समाधान अनिर्णीत ही रह गया।





चित्र 4 मारवाड में 1752 ई. मे अजमेर के युद्ध के बाद बख्तसिंह रामसिंह के अधिकृत प्रदेश ।



सन्दर्भ

१ मीरात ए-ग्रहमदी (२) पृ० ३७६-३७७, हिगर्णे दफ्तर (१) १३२

२ ग्रभयसिंह की मृत्यु १६ जून, १७४६ को ग्रजमेर म हुई। रामसिंह का राज्याभिषेक जोधपुर म १३ जुलाई, १७४६ को हुआ (मारवाड री ख्यात (२) पृ० १६३)

३ उसका जन्म २८ जुलाई १७३० को हुग्रा (उपर्युक्त)

४ पे० द० का० (२७) २

५ उपर्युक्त (२७) ४०, वश भास्कर (४) पृ० ३५८५, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १६४

६ बखतसिंह न दाभाई क साथ टीका भेजा। परम्परा के अनुसार नय महाराजा के राजतिलक के अवसर पर बखतसिंह को उपस्थित रहकर टीका देना चाहिए था। यह उसकी राज्यभक्ति का प्रदर्शन होता। बखतसिंह के न ग्राने पर नवयुवक महाराजा उससे अप्रसन्न हो गया। हिगणे दफ्तर (२) ८, विजयविलास पृ० १०, दोहा १०३ राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० २६५, दोहा (१६)

७ दयालदास री ख्यात (२) ७२-७३, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १७२

८ पे० द० का० (२) १७, विजयविलास पृ० १०३-१०४, वश भास्कर (४) पृ० ३६२५-२६, मारवाड री ख्यात (४) पृ० १६४-१६५

९ उपर्युक्त

१० मारवाड री ख्यात (२) पृ० १६४-१६५

११ राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० २६६-३०१ दोहा ३८-४८

१२ उपर्युक्त पृ० २६५, दोहा १६

१३ पे० द० का० (२) १५, १६ (२१) २५, सियर (३) पृ० ३१६, मारवाड री ख्यात (२) १७२

१४ पे० द० का० (२) १, १५

१५ पे० द० का० (२१) २७, ३५, सियर (३) पृ० ३१६ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १६८ १६९। इस ग्रन्थ के अनुसार ईश्वरीसिंह ने अपनी पुत्री की शादी रामसिंह से कर दी।

१६ माधोसिंह का बखतसिंह को खरीता, कातित्र सुदी ११, वि० स० १८०६/ ६ नवम्बर १७४९-जय० । उस समय माधोसिंह नेनवा मे था (पे० द० का० (२) १३)।

१७. उपर्युक्त

१८. सियर (३) पृ० ३११

१९ माधोसिंह का बखतसिंह को खरीता, कार्तिक सुदी ११ वि० स० १८०६/ ६ नवम्बर १७४६ जय०

२० पे० द० का० (२१) २५, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १७२

२१. पे० द० का० (२) २५

२२ उपर्युक्त, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १७२

२३ सियर (३) पृ० ३१७, सम्भवत यह पुत्र खाडेराव था ।

२४ पे० द० का० (२) १६, (२१) २५,२७,३५, सियर (३) पृ० ३१५-३१८, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १७१-७२, सलावतखा सम्भवत पीपाड से ७ मील पूर्व की ओर रावणा गाव म ठहरा ।

२५ सियर (३) पृ० ३१८

२६. पे० द० का० (२) १५, वश भास्कर (४) पृ० ३६२६ ३०, दयालदास री ख्यात (२) ७४-७५ (इसके अनुसार यह युद्ध दूदासर तालाब के पास ११ नवम्बर, १७५० को हुआ था । लूनियावास मेडता के दक्षिण-पश्चिममे ११ मील दूर है)

२७ दयालदास री ख्यात (२) ७५

२८ पे० द० का० (२) ३१, सियर (३) पृ० ३२५

२९ पे० द० का० (२) ३१

३० बखतसिंह का प्रेमसिंह गोगावत को परवाना, पौष सुदी ९, वि० स० १८०७/ २६ दिसम्बर १७५० जय०

३१ बखतसिंह का माधोसिंह को खरीता, पौष सुदी ११, वि० स० १८०७/(२८ दिसम्बर १७५०) जय० (इस पत्र मे वर्ष अकित नही है, परन्तु विषय के आधार पर इसका वर्ष माना गया है ।)

३२-३३-३४ उपर्युक्त

३५. माधोसिंह का बखतसिंह को खरीता पौष सुदी १५ वि० स० १८०७/ ३१ दिसम्बर १७५० जय० ।

३६ पे० द० का० (२५) ६४, ६५

३७ उपर्युक्त माधोसिंह का रामसिंह को खरीता फाल्गुन वदी १२, *वि० सं०* १८०७/१२ फरवरी १७५१ (जय०)

३८. माधोसिंह का होल्कर को खरीता भाद्रपद वदी १, वि०सं० १८०८ २८ जुलाई १७५१-जय०, *हिंगर्णे दफ्तर* (१) ५६, आई० एच० आर० सी० (१६४४) पृ० १०-१२ म लेख 'ए लेटर फ्रॉम द मराठा एजेण्ट एट जयपुर इन १७५१ ए डी'०, *दयालदास री ख्यात* (२) ७५, *मारवाड़ री ख्यात* (२) पृ० १७८

३९ पे० द० का० (२) १६, ३१, (२) ३४

४०. उपर्युक्त (२७) ६४, ६५

४१ उपर्युक्त (२१) ३८, ४० (२७ ६४, ६५

४२ वंश भास्कर (४) पृ० ३५८५, मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १६४-१६५

४३. सियर (३) पृ० ३१८, मल्हारराव के पुत्र ने युद्ध के बीच में ही महाराजा का साथ छोड़ दिया और दक्षिण की ओर चल पड़ा।

४४ आई० एच० आर० सी० (१९४४) पृ० १०-१२ में लेख 'ए लेटर फ्रॉम द मराठा एजेन्ट एट जयपुर इन १७५१ ए० डी०'

४५ माधोसिंह का होल्कर को खरीता भाद्रपद वदी १, वि० सं० १८०८/ २८ जुलाई १७५१ जय०। मारोठ सांभर के १३ मील उ० प० में है।

४६-४७ उपर्युक्त

४८ आई० एच० आर० सी० (१९४४) पृ० १०-१२ में लेख "ए लेटर फ्रॉम द मराठा एजेन्ट एट जयपुर इन १७५१ ए० डी०"

४९ एच० एस० आई० एस० (१) १४३

५० आई० एच० आर० सी० (१९४४) पृ० १०-१२ में लेख, 'ए लेटर फ्रॉम द मराठा एजेण्ट एट जयपुर इन १७५१ ए० डी०'

५१. उपर्युक्त

५२ एस० एच० आइ० एस० (१) १४३

५३ हिंगर्णे दफ्तर (१) ५६, राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ३६६ दो० ४१३

५४ राठोड़ दानेश्वर वंशावली पृ० ३६६, दो० ४१३

५५ उपर्युक्त, *हिंगर्णे दफ्तर* (१) ५६

५६ हिंगर्णे दफ्तर (१) ५६, राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ३६६ दो० ४१४; वंश भास्कर पृ० ३६३०-३१

५७ हिंगर्णे दफ्तर (१) ५६

५८ उपर्युक्त

५९ उपर्युक्त, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८३, मराठे १७५१ व १७५२ के प्रथम चार महीनो मे वजीर सफ्दरजग और अफगानो के बीच युद्ध मे व्यस्त थे अतः राजस्थान मे सैनिक अभियान के लिए वे सेना नियुक्त नही कर सके ।

६० ऐतिहासिक पत्रें १०२, पे० द० वा० (२१) ४०

६१. मारवाड री ख्यात मे इस बात का उल्लेख है कि जयप्पा सिंधिया ने १०,००० की सेना लेकर अजमेर पर आक्रमण किया (ग्रन्थ २, पृ० १८४)

६२. शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र, श्रावण वदी २ वि० स० १८०९/१७ जुलाई १७५२ जय०, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८४ टॉड ने महादजी पटेल का नाम साहिबा पटेल के स्थान पर लिखा है, जो गलत है ।

६३ विजय-विलास पृ० १०७, दोहा १६-१७, राठौड दानेश्वर वशावली पृ० ३६८

६४ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८४-१८५, लाडपुरा मारवाड अजमेर-सीमा पर आसनियावास से ८ मील पूर्व की ओर है ।

६५ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८४-१८५

६६ शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र श्रावण वदी २, वि० स० १८०९ । १७ जुलाई १७५२ जय० ।

६७ विजय विलास पृ० १०६, दोहा १५ राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० ३६७ दो० ४२०

६८ शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र, श्रावण वदी ३, वि० स० १८०९ । १८ जुलाई १७५२ जय०, विजय विलास पृ० १०८, दोहा २१, मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८५ (इसके अनुसार रामसिंह मन्दसौर की ओर भाग गया ।) रामसर-अजमेर के द० पू० मे २० मील पर है ।

६९ शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र श्रावण वदी ३ वि० स० १८०९ । १८ जुलाई १७५२ जय०

७० उपर्युक्त पत्र श्रावण वदी १२, वि० स० १८०९ २६ जुलाई १७५२ । जय०, विजय-विलास, पृ० ११० दो० ।

७१ मारवाड का दक्षिण-पूर्वी भाग घाट क्षेत्र कहलाता है । इसम गोडवाड के प्रदेश भी शामिल हैं (नक्शा सख्या–१) ?

७२. शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र, श्रावण वदी १२ वि० स० १८०९ । २६ जुलाई १७५२ जय०

७३ मारवाड री ख्यात (२) पृ० १८५

७४. शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र, श्रावण वदी २ व ३ वि० स० १८०९। १७ व १८ जुलाई १७५२ जय०

७५ उपर्युक्त पत्र, भाद्रपद वदी २, वि० स० १८०९/१५ अगस्त १७५२-जय०। कोटा के हाडा, सिरोही के राव, व मेवाड़ के सीसोदिया शासक ने भी बखत-सिंह का साथ देने का निश्चय किया (विजय विलास पृ० १०८, दोहा १९-२०)

७६ मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १८५

७७ उपर्युक्त

७८ शकरदत्त का दीवान सदाशिव को पत्र, भाद्रपद वदी २, वि० स० १८०९। १५ अगस्त १७५२ जय०। केकड़ी अजमेर के द० पू० म ६० मील पर है।

७९ मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १८५, राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ३७२, दोहा ४४८-४५६

८० पे० द० का० (२१), ५०

८१ विजय-विलास पृ० १०६ दोहा २४

मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १८६ के अनुसार बखतसिंह की मृत्यु २१ सित-म्बर को हुई थी। यदुनाथ सरकार (मुगल साम्राज्य का पतन भाग (१) पृ० १७८ (अंग्रेजी) बखतसिंह की मृत्यु २३ सितम्बर को मानते हैं। समकालीन राजस्थानी ग्रन्थ 'विजयविलास' में यह तिथि २१ सितम्बर को ही पड़ती है इसके दोहे २४ के अनुसार

'सम्वत् अठारे सौ नवे, सुद पख भादव मास।
तिथि तेरस बखतौ नृपत थमियो सुरपुर वास ॥

अर्थात् भादवा सुदी १३ वि० स० १८०९। २१ सितम्बर १७५२ को बखत-सिंह स्वर्गवासी हुए थे।



अध्याय : ४

विजयसिंह और मराठे (पूर्वार्द्ध)
(१७५२-१७८० ई०)

जोधपुर का उत्तराधिकार-संघर्ष और मराठे

(१) एक राजनैतिक विराम (१७५२-१७५३)

मुगल राजनीति में अराजकता के कारण, १८ वीं शताब्दी के मध्य चरण में उत्तरी भारत में मराठों के प्रसार के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होने लगीं। राजस्थान इससे अछूता नहीं रह सका। बूँदी (१७३४), जयपुर, (१७४३-५१) और जोधपुर (१७५०-५२) के उत्तराधिकार युद्धों में मराठों का हस्तक्षेप हो चुका था। अजमेर-युद्ध (१८ जुलाई १७५२) के बाद बखतसिंह ने उत्तरी भारत से मराठों को निष्कासन के लिए कछवाह, राठौड़, जाट एवं मुगल शक्तियों की संयुक्त कार्यवाही की योजना बनाई थी। परन्तु इससे पूर्व कि यह योजना ठोस नीति में परिणत हो सके, राठौड़ शासक बखतसिंह की सितम्बर १७५२ में मृत्यु हो गयी।

पिता की मृत्यु के समय, विजयसिंह मारोठ में था और रामसिंह मन्दसौर में मराठी सहायता की प्रतीक्षा कर रहा था।[२] नये शासक को मराठों के विरुद्ध अपनी शक्ति को सगठित करने के लिए समय की आवश्यकता थी जो उसे १७५२-१७५३ उत्तरी व दक्षिणी भारत की राजनैतिक स्थिति के कारण उपलब्ध हो गया।

अगस्त २७ १७५२ को अहमदशाह के प्रिय सेवक जाविदखां की हत्या कर दी गयी। इससे वजीर सफदरजंग का प्रभाव बढ़ने लगा। बादशाह सफदरजंग का प्रभाव कम करना चाहता था, जिसके परिणामस्वरूप मुगल दरबार षडयंत्रों का केन्द्र बन गया। मुगल राजनीति की शोचनीय अवस्था का लाभ उठाकर अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली ने अपने प्रतिनिधि को भेज कर ५० लाख रुपयों की माँग की। वजीर के लिए इतनी बड़ी रकम की व्यवस्था करना असम्भव था, फिर भी उसने कुछ राशि भेज कर अब्दाली को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। मुगलों के लिए उत्तर-पश्चिम से अब्दाली का खतरा बना रहता था दक्षिण की ओर से मराठों का। वजीर चाहता था कि मराठों की सहायता से अब्दाली का मुकाबला

दिया जाए, जबकि बादशाह की माँ ऊधमबाई, मीरबख्शी, इन्तजामद्दौला और शहाबुद्दीन मराठों के विरुद्ध थे तथा अब्दाली को प्रसन्न बनाये रखना चाहते थे। इन गुटों में इतना मतभेद बढ़ा कि १७५२ के अन्त में और १७५३ के प्रारम्भिक महीनों में गृह-युद्ध की सम्भावनाएँ बढ़ने लगी। वजीर ने पेशवा को सैनिक सहायता के लिए लिखा। बादशाह ने दिल्ली स्थित मराठा सेनापति अन्ताजी मनकेश्वर और प्रतिनिधि बापूजी महादेव हिंगणे से सम्पर्क स्थापित किया।[3] बापूजी ने बादशाह अहमदशाह को पाँच हजार मराठा सैनिक देने का वादा किया। इसके बदले में उसने अवध और इलाहाबाद की चौथ व सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार माँगा। दूसरी ओर अन्ताजी मानकेश्वर वजीर और बादशाह दोनों से गुप्त बातचीत में संलग्न था। बापूजी को यह बुरा लगा। उसकी दृढ़ता के कारण ही बादशाह के लिए मराठी सहायता निश्चित हुई। इस पर अन्ताजी ने सफदरजंग का यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया कि उसे सहायता देने पर मराठों को सोलह लाख रुपये वार्षिक की जागीर दी जा सकेगी।[4] इन्हीं दिनों दक्षिण भारत में पेशवा नये निजाम गाजीउद्दीन को दक्षिण की सूबेदारी दिलाने के लिए उसकी स्थिति मजबूत करने में तथा कर्नाटक-विजय में व्यस्त था।[5]

बख्तसिंह की मृत्यु के बाद विजयसिंह मारोठ में मारवाड़ का नया शासक घोषित किया गया।[6] अक्टूबर १७५२ में मल्हारराव होल्कर से उसे एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें नये शासक को न सिर्फ बधाई ही दी गयी थी बल्कि मारवाड़ के राठौड़ घराने और होल्कर परिवार के बीच आपसी सहयोग का वचन भी दिया गया था।[7] इन परिस्थितियों में विजयसिंह का जोधपुर के गढ़ में ३१ जनवरी, १७५३ को राजतिलक शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया।[8]

(२) सिंधिया का मारवाड़ पर आक्रमण (जुलाई-अगस्त १७५४)

यह 'राजनैतिक विराम' अल्पकालीन ही रहा। दिल्ली में २६ मार्च, १७५३ को गृह-युद्ध प्रारम्भ हो गया। पेशवा ने रघुनाथराव को उत्तर की ओर भेजा। उसे आदेश दिये गये थे कि वह वहाँ की स्थिति का मूल्यांकन करे और गृह-युद्ध समाप्त होने तक प्रतीक्षा करे। फिर या तो विजयी दल का समर्थन करे या दोनों पक्षों की शक्ति की पूर्णतया क्षीणता का लाभ इस प्रकार उठाए कि उत्तर भारत में मराठों का प्रभाव बढ़ सके। अक्टूबर १७५३ के प्रारम्भ में रघुनाथराव होल्कर और सिंधिया राजस्थान के मार्ग से दिल्ली की ओर बढ़े। राजस्थान में रघुनाथराव ने कोटा, बूँदी और जयपुर के शासकों से लम्बे अरसे से चली आ रही बकाया धन-राशि वसूल की।[9]

१७ दिसम्बर को रामसिंह कोटा के समीप जयप्पा के मार्फत रघुनाथराव से मिला और उसने अपने भाई विजयसिंह के विरुद्ध मराठों की सहायता की प्रार्थना की। रघुनाथराव ने सहायता का वचन दिया। अतः ज्योंही राजनैतिक उथल-पुथल

से मराठो को विराम प्राप्त हुआ, रघुनाथराव ने २३ जून, १७५४ को जयप्पा सिंधिया को आदेश दिया कि वह मारवाड जाकर जोधपुर की गद्दी पर रामसिह को आसीन कराए। जयप्पा बूंदी होता हुआ, जहाँ के शासक उम्मेदसिंह ने उसकी बडी आवभगत की, मारवाड की ओर बढ़ा। मार्ग मे उसका पुत्र जनकोजी और भाई दत्ताजी भी शामिल हो गये। कोटा के शासक ने भी सिंधिया को कई सैनिक दिये।[10]

सिंधिया के आक्रमण की सूचना मिलते ही महाराजा विजयसिंह ने अपने सलाहकारो, राज्याधिकारियो एव सामन्तो की बैठक गढ मे बुलायी। मातृभूमि की रक्षा हेतु चम्पावत देवीसिंह, बल्ला उदयसिंह, ऊदावत केसरसिंह, मेडतिया जवानसिंह कूंपावत उदयसिंह और दीवान फतेहमल ने युद्ध की नीति अपनाने पर जोर दिया। सामन्तो बल पाकर विजयसिंह ने बख्शी लालचन्द परिहार को आदेश दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र युद्ध की तैयारी करे।[11]

बैठक मे यह भी तय किया गया कि सिंधिया के विरुद्ध बीकानेर, किशनगढ व जयपुर के शासको से सहायता प्राप्त की जाए। इन राज्यो के शासको ने आशा से अधिक सहायता देने का विश्वास दिलाया। मारवाड की सीमा पर ही मराठो को रोकने का निश्चय किया गया, अत: अजमेर के पास ५ हजार राठौड सैनिक भेजे गये।[12] बीकानेर के शासक गजसिंह और किशनगढ के बहादुरसिंह स्वय अपनी सेना लेकर मेडता मे महाराजा विजयसिंह से आ मिले।[13] जयपुर के माधोसिंह ने अपने सेनापति राव मोहनसिंह को आज्ञा दी कि जयपुर क्षेत्र मे से गुजरती हुई मराठी फौज के रास्ते मे रुकावट डाले।[14]

(३) मेडता का प्रथम युद्ध (१४-१७ सितम्बर १७५४)

सिंधिया दस हजार की फौज लेकर अजमेर की ओर बढा। राठौड़ो से पहला मुकाबला गगरार के पास हुआ। मराठा शक्ति के सामने राठोड़ टिक न सके। वे पीछे हट गये और मेडता मे एकत्र हो गये। बीकानेर व किशनगढ की फौज आ जाने से राठौडो की शक्ति बढ गयी। जयप्पा ने बिना किसी विरोध के अजमेर पर अधिकार कर लिया। फिर वह पुष्कर की ओर बढा। वहाँ कुछ समय तक ठहरा। सितम्बर के प्रारम्भ मे रामसिह व उसकी दस से पन्द्रह हजार की फौज को लेकर वह मेडता की ओर चल पडा। १४ सितम्बर को मेडता के मैदान मे राठौडो और मराठो के बीच भयकर लड़ाई प्रारम्भ हुई। दिन भर तोपें आग उगलती रही और अश्वारोही सैनिको के आक्रमण होते रहे पर राठौड अपनी स्थिति मजबूत न कर सकें। वे हार गये। राठौड विजयसिंह, गजसिंह, व बहादुरसिह भाग खडे हुए। जयप्पा ने १७ सितम्बर को मेडता नगर मे विजयी के रूप मे प्रवेश किया। रामसिह भी उसके साथ था। लगातार तीन घटे तक मेडता नगर मे मराठो ने लूट-पाट की। उत्तराधिकार युद्ध के पहले चरण मे रामसिह जीत गया था।[15]

(४) नागौर का घेरा (अक्टूबर १७५४ फरवरी १७५६)

मेड़ता के मैदान में विजयसिंह हार गया था, परन्तु उसने आत्मसमर्पण नहीं किया। वह भागकर नागौर चला गया। उसने अपनी सेना को पुनः संगठित किया। वित्तीय स्थिति को ठीक करने के लिए गुडला और नन्दवाना के वोहरों से धन-राशि प्राप्त की।[१६] जयप्पा ने कुछ समय मेड़ता में व्यतीत कर ३१ अक्टूबर को नागौर का घेरा डाल दिया।[१७]

मराठा सेनापति ने नागौर पर अधिकार करने के लिए चक्रव्यूह की रचना की। किले में माल असबाब पहुँचाने के सारे रास्ते रोक दिये गये।[१८] नागौर और जोधपुर के बीच ईडाना में सिंधिया-रामसिंह फौज तैनात कर दी गयी, जिससे जोधपुर से विजयसिंह को किसी प्रकार की सहायता प्राप्त न हो सके।[१९]

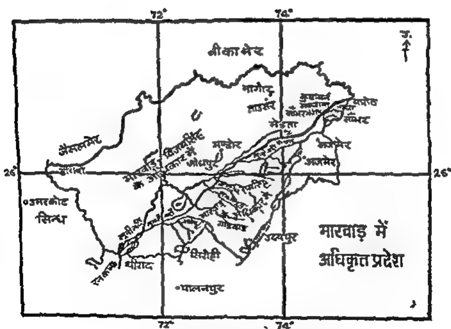
जनकोजी सिंधिया, सन्ताजी वाबेल और पुरोहित जगन्नाथ के नेतृत्व में एक फौज जोधपुर की ओर भेजी गयी। इस सेना ने अभयसागर पर डेरा डाला और सुरंगें बिछाकर गढ़ पर आक्रमण कर दिया।[२०] अजमेर नगर पर अधिकार करने के बाद मराठों ने वहाँ के किले तारागढ़ का घेरा डाल दिया। १७५५ के प्रारम्भ में जयप्पा को यह सूचना प्राप्त हुई कि किसी भी समय तारागढ़ पर मराठों का अधिकार हो सकता था।[२१] रामसिंह के आदमियों के साथ मराठों की एक टुकड़ी जालौर पर अधिकार करने गयी, जहाँ जोधपुर के शासकों का खजाना सदियों से सुरक्षित था।[२२] जनवरी १७५५ में जयप्पा ने पेशवा को सूचित किया कि कुछ ही दिनों में विजयसिंह आत्मसमर्पण कर देगा और नागौर पर मराठों का अधिकार हो जाएगा।[२३]

पेशवा ने सिंधिया को मारवाड़ के उत्तराधिकार-संघर्ष में मराठों के हस्तक्षेप के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश दिये थे। वह रेगिस्तान में मराठों को उलझाये रखने के पक्ष में नहीं था क्योंकि वहाँ से प्राप्त होने वाली आय इतनी नहीं हो सकती थी जितनी उपजाऊ क्षेत्रों में,जो दिल्ली के पूर्व में थे। रघुनाथराव अवध और इलाहाबाद से चौथ वसूल करने के लिए नियुक्त किया गया था। अवध के नये उत्तराधिकारी शुजाउद्दौला से धन-वसूली का सुअवसर आ रहा था अतः उसे अतिरिक्त सेना की आवश्यकता थी। इसके लिए उसने पेशवा को लिखा तो पेशवा ने जयप्पा सिंधिया को आदेश दिया कि वह मारवाड़ अभियान को शीघ्र ही समाप्त कर रघुनाथराव की सहायता को पहुँचे। उसे यह भी आदेश था कि विजयसिंह से इस बात पर समझौता कर लिया जाए कि उसे उत्तराधिकार में अपने पिता का क्षेत्र मिले तथा रामसिंह को अपने पूर्वजों का क्षेत्र अथवा फिर मारवाड़ को दो समान भागों में विभाजित कर समझौता कर लिया जाए। पेशवा विजयसिंह को पूर्णतः नष्ट करने के पक्ष में नहीं था। वह उसे भी बनाये रखना चाहता था ताकि मराठी सेना अनंत काल तक मारवाड़ में बनी रहे। वह चाहता था कि मराठी सहायता से 'रामसिंह के अधीन चार-पाँच राठौड़

स्थान को दक्षिणियों से मुक्त कराया जा सके।[५२] विजयसिंह ने अहमदशाह अब्दाली को भी मराठों के विरुद्ध सहायता के लिए लिखा। अफगान शासक ने मुल्तान के सूबेदार को आदेश दिया कि वह राठौड शासक की सहायता के लिए जाए।[५३]

महाराजा माधोसिंह ने अनिरुद्धसिंह खंगारोत को सेना देकर विजयसिंह की सहायता लिए भेजा। वह रामगढ़ होता हुआ नागौर की तरफ बढ़ा। मार्ग में शाहपुरा का शासक उम्मेदसिंह, रूपनगर का बहादुरसिंह, करौली का गोपालसिंह और बूंदी का हाडा शासक सेना सहित उससे आ मिले। इस सेना के पास पच्चीस से तीस हजार सैनिकों की फौज और शक्तिशाली तोपखाना था।[५४] परन्तु अनिरुद्धसिंह का रास्ता मराठी सेनापति रानोजी मोहिते ने रोक लिया। १० अक्टूबर १७५५ को खाडोल के स्थान पर उसने कछवाहों सेना को बुरी तरह हराया[५५] और शान्ति वार्ता के लिए मजबूर किया।[५६]

इसी बीच बीकानेर सेना, जिसका नेतृत्व दीवान बख्तावरमल कर रहा था, नागौर पहुँची। वहां से दीवान, अनिरुद्धसिंह की सहायता के लिए चल पड़ा।[५७] कछवाहा सेनापति ने मोहिते से हो रही शान्ति वार्ता भंग कर दीवान की सेना से मिलने हेतु रामगढ़ से प्रस्थान किया।[५८] जनकोजी ने इन दोनों सेनाओं को एक न होने देने के लिए नरसिंह सिंधिया और खानाजी को, जिसे जोधपुर से बुला लिया गया था, आदेश दिया कि वे मोहिते की सहायता करें। तीनों मराठा सेनापतियों ने अनिरुद्धसिंह पर १६ अक्टूबर की रात्रि को हमला कर दिया। अनिरुद्ध ने भाग कर डीडवाना के किले में शरण ली।[५९] बीकानेर की सेना डीडवाना की ओर चल पड़ी। इसकी भी परन्तु वही गति हुई जो कि कछवाहा सेना की हुई।[६०] दीवान बख्तावरमल दौलतपुरा नामक स्थान पर हार गया।[६१] मराठों ने डीडवाना के लिए रसद के सब मार्ग अवरुद्ध कर दिये।[६२] जोधपुर में मराठों का घेरा पड़ा हुआ था। अतः जोधपुर की सेना की सहायता के लिए जालोर की राठौड सेना राजधानी की ओर बढ़ने लगी, परन्तु गोड़ावास नामक स्थान पर उसकी भी हार हो गयी। नवम्बर १७५५ के प्रथम सप्ताह में अन्ताजी मनकेश्वर डीडवाना पहुँचा।[६३] राजपूतों की सफलता अब सम्भव नहीं थी। दौलतपुरा की हार के बाद माधोसिंह ने अनिरुद्धसिंह को मराठों से समझौता करने के आदेश दिये। ३१ अक्टूबर को कछवाहा सेनापति ने वार्ता प्रारम्भ की।[६४] अन्ताजी के आ जाने से माधोसिंह विजयसिंह की सहायता के लिए आनाकानी करने लगा।[६५] राठौड शासक ने बीकानेर की यात्रा कर वहां से सहायता के लिए जोर लगाया पर उसे निराशा ही हाथ लगी।[६६] एक बार पुनः मुगल दरबार में सहायता के लिए प्रार्थना की गयी पर वहां की गुट-परस्त राजनीति के कारण उसकी सुनवाई भी नहीं हुई।[६७] नागौर के घेरे में कोई शिथिलता दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी।[६८] माधोसिंह ने विजयसिंह और जनकोजी के बीच समझौता कराने का प्रयास किया परन्तु विजयसिंह



चित्र 5. मारवाड़ में 1756 की मराठा–राठौड़ संधि के बाद विजयसिंह–रामसिंह के अधिकृत प्रदेश ।

ने उसे अस्वीकार किया।[६९] जनवरी १७५६ में मराठों ने जोधपुर का घेरा और कठोर कर दिया।[७०] पेशवा ने नारोशंकर को आदेश दिया कि मारवाड़ में सिंधिया की सहायता कर उनभी हुई स्थिति से उसे मुक्त कराए।[७१]

(६) राठौड़-सिंधिया संधि (फरवरी १७५६)

बीकानेर की यात्रा का असफल होना, मुगलों की ओर से सहायता का न मिलना, जयपुर के शासक माधोसिंह का विरोध में अभियान करना और मराठों की शक्ति में वृद्धि होना आदि कारणों से अन्ततः विजयसिंह ने समझौता करने का निश्चय किया। जनवरी १७५६ में, उसने अपने दीवान सिंघवी फतेहचन्द और प्रधान देवीसिंह चाँपावत को दत्ताजी सिंधिया के पास वार्ता के लिए भेजा।[७२] मराठा भी समझौते के लिए तैयार था क्योंकि नये वर्ष के प्रारम्भ में ही मारवाड़ में अकाल पड़ने लगा। इसमें वे लम्बे काल तक घेरा लगाये रखने की स्थिति में नहीं थे।[७३] दोनों शक्तियों के बीच फरवरी, १७५६ में समझौते पर हस्ताक्षर हो गये।[७४] इस समझौते के अनुसार—

१ अजमेर, गढ़ बीठली (तारागढ़) व उसके आसपास के क्षेत्र पर मराठों का आधिपत्य मान लिया गया।

२ विजयसिंह से युद्ध व क्षतिपूर्ति के रूप में ५० लाख रुपया लिया जाना निश्चित हुआ, इसमें २५ लाख रुपया एक वर्ष के भीतर और बाकी धनराशि दो वर्ष में देने का निश्चय हुआ।

३. जोधपुर के शासक ने प्रतिवर्ष मराठों को एक लाख पचास हजार रुपये कर के रूप में देना स्वीकार किया।

४ रामसिंह का जालोर, सांभर, मारोठ, सोजत, परबतसर और अजमेर में केकड़ी क्षेत्र के ८४ गाँवों पर और विजयसिंह का जोधपुर, नागोर और मेड़ता पर आधिपत्य मान लिया गया।[७५]

५. मराठों की सहायता के लिए एवं अजमेर की सुरक्षा के लिए विजयसिंह ने अपने खर्च पर एक सैनिक टुकड़ी रखने का वचन दिया।[७६]

६. मराठों ने यह स्वीकार किया कि यदि रामसिंह ने विजयसिंह के अधीनस्थ क्षेत्र में हस्तक्षेप किया तो जोधपुर-शासक रामसिंह के विरुद्ध कार्यवाही करने में स्वतन्त्र होगा परन्तु इससे रामसिंह के क्षेत्र में मराठों के हितों की उपेक्षा नहीं होगी।[७७] रामसिंह के साथ जनकोजी ने एक पृथक् संधि पर हस्ताक्षर किये, जिसके अनुसार मराठों का एक कमाविसदार उसके क्षेत्र में रहेगा और वह प्रतिदिन चुंगी आदि एकत्रित करेगा। रामसिंह और मराठे उस धन का समान बटवारा करेंगे।[७८]

दत्ताजी ने रामसिंह के पास सदाशिव को कमविसदार नियुक्त किया।[७९] मराठा सेना मेड़ता होती हुई अप्रेल में रूपनगर पहुँची।[८०] इस प्रकार मारवाड़ में सिंधिया के आक्रमण का अन्त हुआ। राठौड़ राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। साभर से जालौर तक एक रेखा बने तो पूर्व का भाग रामसिंह को तथा पश्चिम का भाग विजयसिंह को प्राप्त हुआ।[८१] उसे क्षतिपूर्ति की भारी रकम देनी पड़ी। इस सन्धि ने मारवाड को मराठों का "अमुख्य राज्य" या कृपाकांक्षी राज्य (ट्रीब्यूटरी स्टेट) बना दिया। राजनैतिक दृष्टि से मारवाड़ मराठों के प्रभाव क्षेत्र में आ गया। रामसिंह को जोधपुर की गद्दी प्राप्त न हो सकी। इस दृष्टि से यह समझौता विजयसिंह के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। मराठा शक्ति के आश्रय में मारवाड़ में राठौड़ वंश की द्वितीय शाखा का शासन प्रारम्भ हुआ।

पानीपत का युद्ध (जनवरी १७६१) के पूर्व और पश्चात् राठौड़ नीति

१७५२ से १७५६ तक राठौड़-मराठा युद्ध के फलस्वरूप मारवाड़ की अर्थ-व्यवस्था नष्ट हो गयी थी। कोष खाली था, खालसा भूमि पर खेती नहीं हो पायी थी, असुरक्षा की स्थितियों और डाके पड़ने के कारण कृषक भाग गये और व्यापार शिथिल पड़ गया। इस युद्ध के कारण मारवाड़ के शासकों का सग्रहीत धन समाप्त हो गया। फरवरी १७५६ के समझौते ने तो विजयसिंह की स्थिति और शोचनीय कर दी। जालौर में रखा कोष अब रामसिंह के अधिकार में था। अजमेर और गढ़बीटली, साभर की नमक पूँजी और दक्षिण-पूर्वी मारवाड़ का उपजाऊ क्षेत्र सभी विजयसिंह से छीने जा चुके थे। वह तो सिर्फ राजधानी और मारवाड़ के रेगिस्तानी भाग का शासक ही बना रहा। रामसिंह भी प्राप्त हुए भाग से असन्तुष्ट था। वह जोधपुर की गद्दी पर अपने अधिकार प्रदर्शित करता रहा और उसे पुन. प्राप्त करने का प्रयास करता रहा।[८२]

१७५६ में विजयसिंह ने "शांति खरीद तो ली" परन्तु उसके राज्य की वित्तीय स्थिति ऐसी नहीं थी कि क्षतिपूर्ति की रकम तत्काल दे सके और फिर आगे के दो वर्षों तक बकाया रकम के साथ-साथ वार्षिक कर भी दे सके। किसी तरह वह प्रथम किश्त देने में सफल हो सका। परन्तु शीघ्र ही उसे असन्तुलित आर्थिक एव वित्तीय स्थिति संभालना भारी पड़ गया। अत कुछ सुविधाएँ पाने के लिए वह मराठों से पत्र-व्यवहार करने लगा। जून १७५७ में रघुनाथराव दिल्ली और पजाब जाने के लिए राजस्थान से गुजरा। विजयसिंह ने अपने मन्त्रियों को उसके पास भेजा, जिससे समझौते की वित्तीय शर्तों को सुविधाजनक बनाने हेतु वह सिंधिया पर दबाव डाले।[८३] रघुनाथराव ने महाराजा की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया ऐसा करना वह सिंधिया के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप मानता था।[८४] परन्तु वास्तव में तथ्य यह था कि राघोबा विजयसिंह से नाराज था, वह अजमेर के मराठा सूबेदार गोविन्दकृष्ण जी

से सहयोग करने के स्थान पर उसे अत्यन्त तंग करता था।[८५] पेशवा ने फरवरी १७५८ मे अन्ताजी मनकेश्वर को आदेश दिया कि वह अजमेर जाकर गोविन्दकृष्ण की स्थिति सुरक्षित करें।[८६] १७५८ के मध्य मे सिंधिया राजपूताने की ओर आया।[८७] विजयसिंह ने वार्षिक कर की राशि को पुन संशोधित करने हेतु अपने प्रतिनिधियो को कोटा भेजा, जहाँ जनकोजी ठहरा हुआ था।[८८]

जनकोजी जुलाई अगस्त तक कोटा म ठहरा रहा और जयपुर, कोटा व बूंदी से कर एकत्र करता रहा। विजयसिंह के प्रतिनिधियो से उसकी वार्ता सफल नही हुई। उसने क्षतिपूर्ति और कर के लिए कोई सुविधा प्रदान नही की। राठौड शासक की वित्तीय परिस्थितियाँ अनुकूल नही होने के कारण वह इतनी बडी धन राशि देने म असमर्थ था। इस पर जनकोजी ने सितम्बर मे मारवाड की ओर प्रस्थान किया। पुष्कर म वह कुछ दिन ठहरा। वहाँ उसे रघुनाथराव और अन्ताजी मनकेश्वर के पत्र प्राप्त हुए कि वह मारवाड की ओर न जाकर दिल्ली की ओर शीघ्र प्रस्थान करे। जनकोजी फिर भी कुछ समय पुष्कर मे ठहरा रहा। राठौड प्रतिनिधि, व्यास गुलाबराय, बारहठ करणीदान और पहाडसिंह ने मराठो की स्थिति का लाभ उठाने की कोशिश की। उन्होंने पुन संशोधित सुझाव रखे परन्तु सिंधिया दृढ रहा। मराठे सेनापति ने रामसिंह को जोधपुर का राज्य देने की नीति अपनाकर मारवाड पर आक्रमण की धमकी दी। इस पर विजयसिंह ने मराठो के ध्वंसात्मक अभियान से भयभीत होकर एव रामसिंह की शक्ति मे वृद्धि की सभावना का अनुमान कर पुरानी शर्तों पर ही बकाया धनराशि देकर पुष्कर से उसे विदा किया।[८९]

१७५८ मे मराठो की शक्ति पजाब तक फैल चुकी थी। रघुनाथराव के मराठा सैनिक अटक तक चौथ और सरदेशमुखी करने लगे। अफगान शासक अहमदशाह अब्दाली ने, जो कि पजाब और दिल्ली के मुगल बादशाहो से कर वसूल किया करता था, पजाब व दिल्ली मे मराठो के प्रभाव को समाप्त करने हेतु भारत पर पुन आक्रमण करने का निश्चय किया। राठौड शासक भी मराठो से मुक्ति के लिए अब्दाली का साथ देने को तैयार था। फरवरी १७५७ से ही विजयसिंह अब्दाली से पत्र व्यवहार कर रहा था। अगस्त १७५९ मे अब्दाली ने सिंध नदी पार कर मराठो को पजाब से भगा दिया। जब वह दोआब की ओर बढा तो उसने जोधपुर और जयपुर के शासको को फरमान भेजा कि वे मराठों के विरुद्ध उससे आकर मिलें। दिसम्बर के फरमान म तो उसने राठौड शासक को शीघ्र ही सेना भेजने के लिए कहा।[९०]

राठौड अब्दाली पत्र-व्यवहार से मराठे अनभिज्ञ नही थे। फरवरी १७५७ मे राजा केशवराव ने पेशवा को लिखा कि विजयसिंह मराठो की तुलना मे अब्दाली के प्रति अधिक निष्ठा प्रकट करता था।[९१] गोविन्द बल्लाल ने सदाशिवराव भाऊ को २२ नवम्बर १७५९ को सूचित किया कि विजयसिंह ने यह निश्चय किया है कि वह

मराठों को उखाड़ फेंकने के लिए अब्दाली का साथ देगा।[६२] मराठों ने अब्दाली के रूप में आये खतरे को उस समय तक महत्वपूर्ण नहीं समझा जब तक कि १ जनवरी १७६० को बरोया घाट के युद्ध में दत्ताजी सिंधिया युद्ध करता हुआ नहीं मारा गया। सिंधिया के मंत्री, आनन्दराव वाबले ने विजयसिंह को शीघ्र सहायता के लिए लिखा।[६३] इस स्थिति का लाभ उठाकर विजयसिंह ने एक ओर अपने प्रतिनिधि बारहठ करणीदान को वाबल के पास भेजकर सहायता की शर्तें तय करनी चाही,[६४] दूसरी ओर उसने अब्दाली को विश्वास दिलाया कि वह उसे सहायता भेज रहा है।[६५]

विजयसिंह के लिए अपनी खोयी हुई भूमि को, जो रामसिंह को १७५६ के समझौते के कारण दी गयी थी, पुनः प्राप्त करने का अवसर था। सिंधिया और अन्य मराठे सेनापति अब्दाली के प्रति संगठित हो रहे थे। उसने स्थिति का उचित मूल्यांकन किया कि ऐसे समय में वह रामसिंह से भूमि छीन ले तो उसकी सहायता करने के लिए मराठे नहीं आ सकेंगे। अतः यह बहाना बनाकर कि रामसिंह के आदमियों ने जून १७६० में उसके क्षेत्र में हस्तक्षेप किया है, विजयसिंह ने रामसिंह के क्षेत्रों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया।[६६] इस सम्बन्ध में जयपुर के शासक का विरोध पहले ही नगण्य बन चुका था। राठौड़ एवं कछवाहों के बीच १७६० के फरवरी माह में यह समझौता हुआ कि अब्दाली और मराठों के प्रति दोनों शासक एक सी नीति अपनाएंगे और वे एक दूसरे के शत्रुओं की सहायता नहीं करेंगे।[६७]

करणीदान और वाबले के बीच वार्ताएं चलती रहीं। समझौते में काफी समय लगा। विजयसिंह ने इस प्रकार के समझौते पर १५ जनवरी १७६१ को हस्ताक्षर किये।[६८] इस समझौते के अनुसार विजयसिंह अब्दाली के विरुद्ध मराठों की सहायता करेगा। सिंधिया रामसिंह की कोई मदद नहीं करेगा। यदि रामसिंह ने मारवाड़ के क्षेत्रों पर, जिन पर विजयसिंह का एकाधिकार था, आक्रमण किया तो सिंधिया जोधपुर नरेश की सहायता करेगा। इस प्रकार पानीपत के युद्ध के पूर्व मराठों की स्थिति का लाभ उठाकर विजयसिंह ने अपनी राजनैतिक स्थिति सुदृढ़ कर ली। फिर भी १४ जनवरी १७६१ के पानीपत के युद्ध में मारवाड़ का शासक तटस्थ रहा। कारण स्पष्ट थे, जैसा कि राजा केशवराव ने पेशवा को सूचित किया "राठौड़ शासक एक ओर तो शक्तिशाली अब्दाली को रुष्ट नहीं कर सकता और दूसरी ओर वह मराठों से पुनः शत्रुता मोल लेते हुए घबराता था।[६९]

पानीपत के युद्ध में मराठों की हार का प्रभाव राठौड़ शक्ति पर भी पड़ा। २० फरवरी १७६१ को अब्दाली ने विजयसिंह को लिखा कि वह उससे मिले और राठौड़ों की ओर से दिया जाने वाला कर भी भेजे।[१००] उसने यह विश्वास दिलाया था कि भविष्य में उसे मराठों ने तंग किया तो वह उससे सैनिक सहायता की अपेक्षा कर सकता था।[१०१] मार्च १७६१ में अब्दाली भारत से चला गया। उत्तरी भारत में राजनैतिक रिक्तता की स्थिति उत्पन्न हो गयी। अब्दाली के चले जाने के बाद, मई

१७६१ में रामसिंह ने विजयसिंह से अपने क्षेत्रों पर पुन: अधिकार करने के लिए आक्रमण करना शुरू किया।[१०२] माधोसिंह ने फरवरी १७६० की संधि की अवज्ञा कर रामसिंह का समर्थन किया।[१०३] शीघ्र ही उसे चांपावत व कूंपावत राठौड और शेखावाटी के कछवाहों का सहयोग भी प्राप्त हो गया।[१०४] वह मराठों से भी सहायता की आशा करने लगा।[१०५] जुलाई के प्रारम्भ में खानाजी जादव ने मारवाड पर आक्रमण किया–कुछ स्थानों पर सैनिक टुकडियां स्थापित कीं और जोधपुर के पास पीपाड में अपना डेरा स्थापित किया।[१०६] विजयसिंह अकेला पड गया। उसने एक ओर तो अपनी स्थिति मजबूत की[१०७] दूसरी ओर उसने रघुनाथराव को सहायता के लिए लिखा।[१०८] उत्तरी भारत में मराठों के प्रतिनिधि गोविन्दकृष्ण ने राघोबा को ६ जुलाई को पत्र लिखकर मारवाड की स्थिति से अवगत कराया तथा इस बात का उल्लेख किया कि सिंधिया की प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक था कि वह मारवाड के वकीलों को प्रोत्साहन नहीं दे।[१०९] पानीपत की हार को मराठा शक्ति का पतन मानकर जयपुर शासक पडौसी राज्यों पर आक्रमण करने लगा। कोटा और बूंदी के शासकों को इससे खतरा पैदा हुआ। पेशवा ने मल्हारराव होल्कर को माधोसिंह के विरुद्ध सैनिक अभियान के आदेश दिये। उसने विजयसिंह को भी सूचित किया कि होल्कर की सहायता करे।[११०] वर्षा प्रारम्भ हो जाने से मल्हारराव ने अपनी राजस्थान यात्रा स्थगित रखी।[१११] अक्टूबर १७६१ में माधोसिंह ने रामसिंह और चांपावत श्यामसिंह को मारवाड पर आक्रमण करने के लिए साभर की ओर भेजा।[११२] विजयसिंह ने मेडता की ओर प्रस्थान किया।[११३] इसी बीच होल्कर का निमन्त्रण पाकर खानाजी जादव मारवाड से विदा हो चुका था।[११४] राठौड शासक ने होल्कर को राजस्थान में बुलाने के लिए उससे पत्र व्यवहार किया।[११५] नवम्बर के प्रारम्भ में होल्कर इन्दौर से चला और २९ नवम्बर को मांगरोल नामक स्थान पर माधोसिंह की सेना को बुरी तरह से हराया।[११६] यद्यपि मराठों को पानीपत के मैदान में भयंकर धक्का लगा था और कुछ समय के लिए उत्तरी भारत में उनकी शक्ति प्रभावहीन हो गयी थी फिर भी मारवाड में उनकी शक्ति को चुनौती नहीं दी जा सकी। रामसिंह और विजयसिंह के बीच पुन: हुए युद्ध में उन्होंने भाग लिया और उनके द्वारा समर्थित शासक को ही विजय प्राप्त हुई। मांगरोल के युद्ध के बाद मारवाड में अपना स्थान बनाने के लिए आतुर रामसिंह को हमेशा के लिए हाथ धोने पड़े। अपना अन्तिम समय उसने जयपुर में बिताया, जहाँ १७७२ में उसकी मृत्यु हो गयी।[११७]

मराठा-राठौड सहयोग (१७६२–१७८०)

नवम्बर १७६१ के बाद रामसिंह की ओर से आक्रमण की आशंका मिट गयी अत: विजयसिंह ने जालौर व साभर पर पुनः अधिकार कर लिया। परन्तु अजमेर

एव घाटक्षेत्र उसके हाथ से निकल चुके थे। १७६२ मे उसने अजमेर लेने का प्रयास किया। मराठा सूबेदार सन्तोजी बावले की प्रार्थना पर सिंधिया ने बाबुराव के नेतृत्व मे एक सैनिक टुकडी भेजी जो कि मारवाडी आक्रमण से अजमेर की रक्षा कर सके। इस पर राठौड-शासक ने आक्रमण का विचार त्याग दिया। सिंधिया ने उससे वार्षिक कर के अलावा ३ लाख रुपयों की क्षतिपूर्ति चाही। विजयसिंह ने आनाकानी की, परन्तु सैनिक अभियान की धमकी देकर सिंधिया ने यह रकम प्राप्त कर ली।[११८]

इस घटना के बाद राठौड शासक ने बाह्य रूप से ऐसी नीति अपनायी कि मराठे मारवाड पर आक्रमण न करें, वे उसे सहयोगी समझते रहे व आतरिक रूप मे वह उनके प्रभाव से मुक्त हो सके। १७६४ मे होल्कर ने जब जयपुर पर आक्रमण किया तो माधोसिंह ने विजयसिंह से सहायता चाही पर उसने सहायता देने से इन्कार कर दिया।[११९] १७६४-६५ मे मराठो द्वारा सहायता मागने पर उसने सैनिक टुकडियाँ भेजी।[१२०] होल्कर ने भी सैनिक सहायता के लिए १७६५ मे मध्य मे लिखा। वह अवध के नवाब शुजाउद्दौला और अग्रेजो के बीच सघर्ष मे नवाब की सहायता के लिए राठौड शक्ति का सहयोग चाहता था, परन्तु विजयसिंह अग्रेज और नवाब के झगडो के बीच पडना नही चाहता था, अतः उसने होल्कर के दीवान पण्डित गगाधर को ■ जून १७६५ को लिखा कि मारवाड पर सिंधिया के आक्रमण की सम्भावना है, अत राठौड फौज भेजने मे वह असमर्थ है।[१२१] १७५६ के समझौते के अनुसार राठौड राज्य सिंधिया का एक प्रभावित एव रक्षित राज्य बन चुका था। परन्तु राठौडो की आर्थिक स्थिति ठीक नही होने से वार्षिक कर समयानुसार नही दिया जा सकता था। बकाया राशि बनी रहती थी। १७६५ तक काफी बकाया राशि एकत्र हो गयी थी। सिंधिया का दीवान प्रद्युम्न गणेश इसकी वसूली करने नवम्बर मे अजमेर आया। वहाँ से वह जोधपुर की ओर सैनिक अभियान की तैयारियाँ करने लगा। इसके लिए उसने अजमेर की सूबेदारी बापूजी तकपीर से हटाकर गोविन्दकृष्णा जी को सौंपी। विजयसिंह ने एक ओर अपनी सुरक्षा के लिए मेडता मे सैनिक एकत्र किये तथा साभर की ओर से आक्रमण को रोकने के लिए उसकी सुरक्षा मजबूत की, दूसरी ओर उसने चारण आलावरण को मदवन्तराव बावला के पास भेजकर दीवान से किश्तो मे बकाया देने की बात चलायी। बावले व चारण की मध्यस्थता से उस समय १० लाख रुपया हुण्डियो के रूप मे देना तय हुआ। इसके पूर्व कि दीवान इन हुण्डियो को प्राप्त करे उसे जयपुर की ओर जाना पडा, जहाँ जाट-सिक्ख सयुक्त सेना ने कछवाहा राज्य पर आक्रमण कर दिया था।[१२२]

दीवान ने हुण्डियो का भुगतान प्राप्त करने के लिए मानाजी जादव को नियुक्त किया। मई १७६४ मे मानाजी ने पाच-सात हजार मराठो को लेकर मारवाड मे प्रवेश किया और नावाँ क्षेत्र को लूटना शुरू कर दिया। विजयसिंह को यह बुरा लगा। उसने अपने दीवान सूरतराम को जादव को खदेडने के लिए भेजा।

मराठा सेनापति हार गया और उसे अजमेर की ओर भागना पड़ा। दीवान सूरतराम, जादव का पीछा करता हुआ, पिसनगाव में ठहर गया और अजमेर के सूबेदार से वार्ता प्रारम्भ की। इसी बीच विजयसिंह ने महादजी को बकाया धन राशि की सूचना भेज दी थी अत उसे काटकर बाकी रकम अजमेर के सूबेदार को दे दी गयी।[१२३] मराठों के लगातार आक्रमणों से राजस्थान के राज्यों में स्थिति अस्त व्यस्त हो गयी थी। शासकों की कमजोरी का लाभ मराठों ने पूर्ण रूप से उठाया और उनकी कर सम्बन्धी माग इतनी बढ़ने लगी कि शासको द्वारा उसे पूरा करना असम्भव हो गया। उनकी मांग की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार थी। वे किसी शासक से कर सम्बन्धी समझौता कर लेते परन्तु पूर्ण धनराशि वे एक साथ कभी नही लेते थे। एक किश्त तो उसी समय दे दी जाती थी। शासकों की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण, बाकी किश्तें देर से दी जाती थी। इससे मराठों को पुन सैनिक अभियान का अवसर मिल जाता था और नया समझौता होता। उनके लिए मित्रता और शत्रुता का कोई सिद्धान्त नहीं था। धनराशि की मात्रा के प्रलोभन के आधार पर वे बड़ी आसानी से पक्ष या विपक्ष का दृष्टिकोण बना लेते थे। अत मराठों के इस दृष्टिकोण से सभी राजपूत शासक परेशान थे। वे उन पर भरोसा भी नही करते थे।

१७६२ के बाद विजयसिंह मराठा का लगातार हस्तक्षेप और सैनिक अभियान की धमकियों के कारण अत्यन्त परेशान था, परन्तु उसमें इतनी सैनिक शक्ति नहीं थी कि मराठों का सामना कर सके अत समय समय पर वह कर भी देता रहा और सैनिक सहायता भी।[१२४] इस प्रकार के सहयोग से प्रभावशाली राजनीति की भूमिका नहीं बन सकी। १७८२ तक वह इसी प्रकार की राजनीति अपनाता रहा। मराठों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने हेतु उसने मारवाड में एक नया कर, जिसे 'रखवाव' कहा गया, लगाया[१२५] और स्थानीय बोहरों से ब्याज की ऊँची दर पर ऋण लिया।[१२६] इसके अलावा १७६६–६७ मे, जब भरतपुर के जाट शासक राजा जवाहरसिंह ने राजस्थान के शासकों का मराठा विरोधी संयुक्त मोर्चा बनाने की कोशिश की, तो विजयसिंह ने उसका स्वागत किया। दोनों ने 'पुष्कर में ६ नवम्बर १७६७ को मुलाकात की और पगड़ी बदल 'धर्म भाई' का रिश्ता स्थापित किया। उन्होंने राजपूताना और मालवा से मराठों को निकालने का निश्चय किया और जयपुर के माधोसिंह को इस कार्य म सहायता के लिए लिखा। परन्तु जाट-कछवाहा अनबन के कारण माधोसिंह प्रारम्भ में तटस्थ रहा, बाद में वह मांवडा के युद्ध (१४ दिसम्बर १७६७) में मराठों की ओर मिल गया। जाट राठौड सेना बुरी तरह से हार गयी। मराठों ने परबतसर तक राठौड़ों का पीछा किया, जहाँ दीवान सूरतराम ने धन देकर उनसे पीछा छुड़ाया।[१२७]

१७६६ के प्रारम्भ में मेवाड म गृह-युद्ध की आशंकाएँ बढ़ने लगीं। महाराणा अरिसिंह के विरुद्ध रतनसिंह ने विद्रोह कर दिया। मार्च १७६६ मे महाराणा ने

अपने चाचा बाघसिंह को विजयसिंह के पास सहायता के लिए भेजा।[१२८] इसके पूर्व कुछ सामन्तों ने राठौड शासक को पत्र लिखकर[१२९] प्रार्थना की कि वह रतनसिंह की सहायता करे तो वे इसके लिए १५ लाख रुपया देने को तैयार हैं।[१३०] रतनसिंह के समर्थकों ने मराठा नेताओं माधोजी और तुकाजी को भी सहायता के लिए लिखा। सिंधिया और होल्कर ने इसे तत्काल स्वीकार किया। वे उदयपुर की ओर चल दिये। मई में उन्होंने मेवाड की राजधानी के पास अपना डेरा डाल दिया।[१३१] जब सिंधिया को ज्ञात हुआ कि अरिसिंह विजयसिंह से सहायता की वार्ता कर रहा है तो उसने हस्तक्षेप कर इस वार्ता को असफल कर दिया।[१३२] महादजी ने विजयसिंह को जून में लिखा कि वह वार्षिक कर की न सिर्फ बकाया राशि भेजे बल्कि नजराना और आगामी वर्षों की राशि का भुगतान भी करे।[१३३] इस पर विजयसिंह ने रतनसिंह का समर्थन करना राजनैतिक और वित्तीय दृष्टि से उचित समझा। एक तो उसे रतनसिंह के समर्थकों से १५ लाख रुपये प्राप्त हो गये।[१३४] दूसरी ओर सिंधिया को वह प्रसन्न बनाये रख सका।[१३५] विजयसिंह के प्रतिनिधि छतरसिंह व्यास गुलाबराय और मेहबालाल १७६६ से १७६६ के वर्षों की बकाया राशि के ३ लाख ८८ हजार ८३५ रुपये लेकर महादजी के समक्ष उपस्थित हुए।[१३६] इसके अलावा राठौड शासक ने १७६६-१७७२ के लिए पाँच लाख दस हजार रुपये भी देने का वायदा किया।[१३७] इस रकम की अदायगी में पच्चीस हजार नजराना भी था।[१३८] इस प्रकार मेवाडी सामन्तों से प्राप्त पन्द्रह लाख रुपयों में से उसने करीब नौ लाख रुपये सिंधिया को दे दिये।

महाराणा अरिसिंह की स्थिति कमजोर थी। अतः उसने सिंधिया और होल्कर से समझौते हेतु बातचीत करने का निश्चय किया। कुछ समय तक होल्कर वहाँ ठहरा, परन्तु शीघ्र ही सिंधिया और उसके बीच मतभेद उभर आया। अतः २ जून को उदयपुर से प्रस्थान कर कोटा की ओर चल पडा।[१३९] उसका लाभ महाराणा को प्राप्त हुआ। जुलाई में अरिसिंह और महादजी के बीच जो समझौता हुआ उससे उदयपुर की गद्दी पर अरिसिंह का अधिकार बना रहा। महाराणा ने मराठों को ६४ लाख रुपया दिया। रतनसिंह को पच्चीस हजार रुपयों की आय की भूमि दी और महादजी को पृथक् से पाँच लाख रुपये दिये।[१४०] सितम्बर में सिंधिया भी उदयपुर से चल पडा। जाने से पूर्व उसने मेवाड में अपने व्यक्तिगत एवं मराठा स्वार्थों की रक्षा हेतु मराठा-राठौड सेना को कार्य सौंपा।[१४१] मराठा सेनापति गोविन्दराव था। अप्रेल, १७७० में राठौड मराठा सेना ने गोडवाड पर अधिकार कर लिया।[१४२] महाराणा के २१ अप्रेल, एवं ■ अक्टूबर १७७० के पत्रों[१४३] से स्पष्ट होता है कि उसने राठौडों को गोडवाड का क्षेत्र इस शर्त पर दिया कि वे महाराणा के विरोध में शामिल नहीं होंगे। विजयसिंह ने ३००० राठौड सैनिक गोडवाड के क्षेत्र में रख दिये।[१४४] सितम्बर में मेवाड में सिन्धी पैदल सैनिकों ने विद्रोह किया। राठौड, मराठा फौज ने उसे दबा दिया।[१४५]

१७७१ मे उदयपुर की राजनीति मे एक बार पुन अरिसिंह-रतनसिंह विवाद उठ खडा हुआ। इस बार होल्कर ने हस्तक्षेप किया। इससे सिंधिया के स्वार्थों को खतरा पैदा होने लगा। महादजी के ३० व ३१ मई १७७१ के पत्रों[१४६] से मालूम होता है कि होल्कर ने मेवाड मे पण्डित बीसाजी को भेजा। उसने रतनसिंह के पक्ष वाले सामन्तों से वार्ता की। सिंधिया ने राठौड शासक को स्पष्ट संकेत दिया कि वह बीसाजी या अन्य किसी भी प्रतिनिधि से समझौते की वार्ता नहीं करे बल्कि वह और गोविन्दराव मिलकर मेवाड एवं गोडवाड मे मराठा-राठौड स्वार्थों की रक्षा हेतु संयुक्त कार्यवाही करें। सिंधिया ने इस तथ्य पर अधिक बल दिया कि यदि मेवाड मे किसी प्रकार का किसी ओर से हस्तक्षेप हो तो सैनिक कार्यवाही द्वारा मेवाड को उसके प्रभाव से मुक्त कर दिया जाना चाहिए। ४ अक्टूबर १७७१ के[१४७] पत्र मे उसने विजयसिंह को लिखा कि यदि रतनसिंह मेवाड मे पुन गडबडी करे तो वह स्वयं मेवाड की ओर प्रस्थान करे तथा उसे उन शर्तों पर निपटाये जो कि पहिले ही निश्चित की जा चुकी थी। १० फरवरी १७७२ को विजयसिंह ने महादजी को सूचित किया कि[१४८] वह उसके निर्देशानुसार मेवाड की ओर जा रहा है तथा गोविन्दराव को गोडवाड के कर के रूप मे एक लाख का भुगतान करेगा। परन्तु राठौड शासक को मेवाड मे कोई लाभ नहीं हुआ। होल्कर और अरिसिंह की वार्ता मे वह हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था।[१४९] शीघ्र ही उसे राजधानी मे सूचना प्राप्त हुई कि सिंधिया, १७६६-१७७२ की राशि न दिए जाने पर, जिसे अग्रिम देने का वायदा किया था, सैनिक कार्यवाही की तैयारियाँ कर रहा है।[१५०] मार्च २३, १७७२ को महादजी ने विजयसिंह को सूचित किया कि यदि १५ जून १७७२ तक पूर्ण रकम किश्तों मे नहीं पहुंची तो वह सैनिक कार्यवाही करेगा।[१५१] विजयसिंह ने मेवाड की राजनीति मे अपना स्वार्थ प्रमुख रखने का प्रयास भी किया पर कोई रकम न मिलने से वह निराश होकर जून १७७२ के प्रथम सप्ताह मे जोधपुर लौट आया।[१५२]

सिंधिया की रकम चुकाने हेतु उसके पास पर्याप्त धन राशि नहीं थी। यद्यपि सिंधिया ने राठौड शासक को विश्वास दिलाया कि यदि समय पर किश्तें चुका दी गयी तो कोई मराठा आक्रमण नहीं होगा[१५३] और यदि दुर्भाग्य ऐसा हो भी गया तो उसके देश मे इस कारण जो हानि होगी उसकी रकम किश्तों मे से काटी जा सकेगी।[१५४] सिंधिया मारवाड के वार्षिक कर की रकम ही नहीं मांग रहा था बल्कि गोडवाड का कर भी मांग रहा था, जो कि वार्षिक १० हजार रुपया निश्चित किया गया था। इसमें ५ हजार नजराना भी शामिल था।[१५५] उसने विजयसिंह को स्पष्ट लिखा कि इस राशि मे से होल्कर व पेशवा को कुछ भी नहीं [illegible] जाए।[१५६] पर विजयसिंह ने कोई भुगतान नहीं किया। इस पर दिसम्बर १७[illegible] सिंधिया ने बाजीकृष्णसिंह को ससैन्य वसूली के लिए भेजा।[१५७]

इसी बीच रामसिंह की १७७२ में मृत्यु हो गयी।[१५८] विजयसिंह ने सांभर के उस क्षेत्र पर, जहाँ उसका शासन था, अधिकार कर लिया। विजयसिंह ने १८ फरवरी १७७३ को मनोजी बावले का एक पत्र[१५९] लिखकर यह विश्वास प्रकट किया कि सिंधिया इसे मान्यता देगा तथा उसकी बकाया रकम पूरी दी जायगी। अपने वचन का विश्वास रखने हेतु ठाकुर बदनसिंह को सिंधिया के पास जमानती बनाकर भेजा।[१६०] सिंधिया ने सांभर पर विजयसिंह का अधिकार स्वीकार किया।[१६१] महाराजा ने वकील गुलाबराय को २७ फरवरी, १७७३ को सिंधिया के पास बकाया रकम के बारे में नया समझौता करने हेतु भेजा।[१६२] १७६६-१७७२ की बकाया रकम दो किश्तों में दी गयी, पहली किश्त ४,८६,४८३ रुपये ७ आना, ३० अप्रैल १७७४[१६३] को, दूसरी किश्त में रुपये ६०,५१६ और ६ आना, १४ जुलाई १७७५ को दिये गये।[१६४]

विजयसिंह के पास न तो पर्याप्त धन था और न सैनिक शक्ति ही, अतः वह सिंधिया की लगातार माँग को न तो पूरा ही कर सकता था और न पूर्णतः ठुकरा ही सकता था वह कभी देता तो कभी आनाकानी करने लगता। इससे मारवाड़ में मराठों के सैनिक अभियान होने लगते जिसके फलस्वरूप बकाया राशि का भुगतान करना ही पड़ता। मराठों के सेनापतियों की माँग का न कोई अन्त था और न सैनिक कार्यवाही का औचित्य, जैसा कि १६ नवम्बर, १७७६ को दीवान सूरतराम के महादजी को लिखे गये एक पत्र से पता लगता है। उसने अम्बाजी इंगले की सैनिक कार्यवाही को अनुचित बताया पर मराठों को इस बात की कोई परवाह नहीं थी।[१६५] राठौड़ शासक सिंधिया से अप्रसन्न बना रहा, पर होल्कर से सम्बन्ध अच्छे रहे। महारानी अहिल्याबाई को मन्दिर निर्माण के लिए संगमरमर पत्थर विजयसिंह ने मकराणा से भिजवाने के स्थायी आदेश दे दिये थे।[१६६]

सन्दर्भ

१. पे० द० का० (२१) ५०
२. मारवाड़ री ख्यात (२), पृ० १८५
३ ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार ८६
४. ऐतिहासिक पत्र ग्रन्थ २, ८६
५ पे० द० का० (२७), ६८
६. मारवाड़ री ख्यात (३), पृ० १
७ मल्हारराव का विजयसिंह को पत्र, आश्विन सुदी १२ वि० स० १८०९। ६ अक्टूबर १७५२ (पो० फो० २, व फाईल १ जोध०); विजय-विलास पृ० ११० दोहा १।
८. मारवाड़ री ख्यात (३) पृ० १
९ पे० द० का० (२७) १०४
१०. मीणा दस्तूरी बस्ता स० २६। वि० स० १८१०। १७५३ ई० (बूँदी रिकार्ड)
११. विजयविलास, पृ० स० १२२-१२६
१२. पे० द० का० (२७) ६८
१३. मारवाड़ री ख्यात (३), पृ० १-२
१४. माधोसिंह का मोहनसिंह को पत्र, वि० स० १८११। १७५४ (कपड़ जय०)
१५. पे० द० का० (नई सीरीज (१) १७७ (युद्ध की तिथि १४ सितम्बर है); मारवाड़ री ख्यात में इस तिथि को युद्ध होना माना है— (३) पृ० ३-६), पे० द० का (२) ३५ (२१) ६०, (२७) ६८, ७९, १०८; ऐतिहासिक पत्र (२) १२२, १२४; एस० एम० आई० एस०, पृ० ९९-१२४; रामसिंह का दाँता के भवानीसिंह को पत्र, आषाढ सुदी ४ वि० स० १८११ २४ जून १७५४ (वरदा पत्रिका ग्रन्थ ४, पृ० ९ में प्रकाशित)
१६. विजयसिंह का नन्दवाना के वोहरों को पत्र, मार्गशीर्ष सुदी १४ वि० स० १८११। २८ नवम्बर १७५४ व गुड़ला के वोहरों को पत्र, माघ सुदी ८ वि० स० १८११। ५ जनवरी १७५५ (अर्जी वही ४, पृ० २८५-२८६)
१७ पे० द० का० (२१) ६७ मारवाड़ री ख्यात (३) पृ० ७; दयालदास री ख्यात (२), ७९
१८. पे० द० का (२१) ६७

१६. उपर्युक्त
२० उपर्युक्त
२१ हिंगणे दफ्तर ग्रन्थ, (१) १०६, मुडियाड स्यात (विजयसिंह), पृ० ४६ बस्ता स० २० (जोध०)
२२ पे० द० का० (२१) ६०, (२७), १०७, हिंगणे दफ्तर (१), १०६; मारवाड री ख्यात (३) पृ० ७,८
२३ पे० द० का० (२१) ६७
२४ पे० द० का ग्रन्थ (२१), ६७, ६६ (२७) १०५, १०७, ऐतिहासिक पत्र, १२५, १२७, १३१, राजवाडे ग्रन्थ (६) ३२७ ३४१
२५ पे० द० का० (२१) ६६, (२७) १०७
२६ उपर्युक्त (२७) १०५
२७ उपर्युक्त १०६
२८. उपर्युक्त १०५
२९ उपर्युक्त १०७
३० उपर्युक्त
३१ उपर्युक्त (२१) ६६
३२ उपर्युक्त
३३ उपर्युक्त, मारवाड री ख्यात (३), पृ० ७, ८, ख्यात में समझौते के लिए वार्ता का श्रेय जयप्पा के कैम्प मे मेवाड के राजदूत जैतसिंह रावत को जाता है।
३४-३५ पे० द० का० ग्रन्थ (२७) १०७
३६ उपर्युक्त १०६
३७ उपर्युक्त (२१) ६६
३८ उपर्युक्त (२७) १०६, मारवाड री ख्यात (३), पृ० ७, ८
३९ राजवाडे (१) ४४
४० पे० द० का० (२७, १०६)
४१ उपर्युक्त ११२
४२-४३. उपर्युक्त
४४. महाराजा बीकानेर का जयपुर के माधोसिंह को खरीता, ज्येष्ठ सुदी ७, वि० स० १८११। १७ मई १७५५, माधोसिंह से विजयसिंह को खरीता ज्येष्ठ सुदी ३०, वि० स० १८११। ६ जून १७५५ (जय०)
४५. उपर्युक्त
४६ पे० द० का० (२७) ११६
४७. पे० द० का० (२) ४६ (२७) ११६, ऐतिहासिक पत्र १३६, १४१; एस० एस० आई० एस० (३), ३२०, चहर गुलजार (इलियट व डाउसन (८) पृ०

२१०) फारसी तवारीखो के अनुसार जयप्पा ने विजयसिंह को गालियाँ दी अत उसके दूतो ने हत्या कर दी । राजपूत स्रोतो (टाड ग्रन्थ २, पृ० ८७३, वंश भास्कर ग्रन्थ ४, पृ० ३६४६-३६५२, मारवाड री ख्यात ग्रन्थ ३, पृ० ८, ९) मे वर्णित हत्या का उल्लेख अविश्वसनीय है । राठौडो के लिए राजनैतिक हत्याएँ करना कोई नयी बात नही थी । अभयसिंह ने १७३२ म पीलाजी गायकवाड की राजनैतिक हत्या करवायी थी । बखतसिंह ने अपने पिता अजीतसिंह की हत्या की थी ।

४८ पे० द० का० (२७), ११६, इस हत्या के फलस्वरूप मराठा सेना मे क्रोध की लहर फैल गयी । समझौता करने आने वाले राठौड प्रतिनिधियो एव मेवाडी दूतो को वही मौत के घाट उतार दिया गया । सेना मे बदला लेने की भावना उग्र होने लगी ।

४९ पे० द० का० (२), ५२, ५६ (२१) ७०

५० उपर्युक्त

५१-५२ उपर्युक्त (२७), ११६ गजसिंह का जयपुर के माधोसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष बदी २, वि० स० १८१२ । २१ नवम्बर १७५५ (कपड जय०)

५३ अहमदशाह अब्दाली का विजयसिंह को फरमान, सफर १७ हिजरी, ११६७ । १७ नवम्बर १७५५ (स० १४ जोध०)

५४ पे० द० का० (२१), ७४, ७७, (२७) ११७, रामगढ डीडवाना से ३८ मील पूर्व की ओर है ।

५५. पे० द० का० (२१), ७७ (२७) ११७

५६-५७ ५८ उपर्युक्त (२१) ७४

५९ पे० द० का० (२) ५०, ५१ (२१) ७६, ७७, वह २० अक्टूबर को किले मे पहुँचा ।

६० महाराजा बीकानेर का माधोसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष बदी २, वि० स० १८१२ । २१ नवम्बर १७५५ (कपड-जय०)

६१ पे० द० का० (२१) ७७; दौलतपुरा डीडवाना से ५ मील दूर पूर्व मे है ।

६२ उपर्युक्त

६३ उपर्युक्त ८७

६४ ६५ उपर्युक्त (२१), ७७, ८०, उपर्युक्त, (नयी सीरीज १), १८६

६६ उपर्युक्त, महाराजा बीकानेर का माधोसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष बदी २, वि० स० १८१२ । २१ नवम्बर १७५५ (कपड जय०)

६७ पे० द० का० (नयी सीरीज) १, १८६

६८-६९ उपर्युक्त

७० पे० द० का० (२१) ८२

७१ उपर्युक्त (२७), ११६

७२ उपर्युक्त (२१) ८२, मु डियाड ख्यात (विजयसिंह) पृ० ५६ (जोध०)
७३. उपर्युक्त
७४. उपर्युक्त, ऐतिहासिक पत्र १४२, दयालदास री ख्यात (२), ८२ (इसके अनुसार यह समझौता २, फरवरी १७५६ मे हुआ था)
७५. पे० द० का० (२१) ८२ ८४ (२७) १२८, हिंगर्णे दफ्तर १,१८६, राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० ४०७ ४०८, दो० ४५५-४६२, मारवाड री ख्यात (३) पृ० १२
७६. जनकाजी का विजयसिंह को पत्र, आषाढ वदी १६, वि० स० १८१३। २६ जून १७५६ (पो० फो० फाइल न० १०८-११२ जोध०)
७७ विजयसिंह का आनदराव वावले को पत्र, आषाढ सुदी ६ वि० स० १८१६। २२ जून १७६० (अर्जी बही न० ४ पृ० ६१ जोध०), राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० ४०८, दोहा ६६५।
७८ राठौड दानेश्वर वशावली, पृ० ४०८, दोहा ६६५
७६ उपर्युक्त
८०. पे० द० का० (२१) ८४, ८५
८१ देखिए नक्शा (परिशिष्ठ)
८२ रामसिंह का माधोसिंह को खरीता, ज्येष्ठ बुदी ४, वि० स० १८१४। २६ मई १७५८ (जय०)
८३ राजवाडा (१) ६६
८४. उपर्युक्त
८५ पे० द० का० (२) ८७
८६. महाराजा किशनगढ का विजयसिंह को खरीता, वैशाख सुदी १४ वि० स० १८१४। २१ मई, १७५८ (पो० फो० ४, फा० न० ८। ११ जोध०)
८७ ८८ उपर्युक्त
८६. रामसिंह का माधोसिंह को खरीता ज्येष्ठ बदी ४ वि० स० १८१४। २५ मई १७५८ (जय०), विजयसिंह का आनन्दराव वावले को पत्र, कार्तिक सुदी १२ वि० स० १८१५। १२ नवम्बर १७५८ (अ० ब० न० ४, पृ० ६०), पे० द० का० (२) ६४, ६५ ६६ १०१, (२७) २३०, २३६
६०. अहमदशाह का माधोसिंह को फरमान, १७ मुहर्रम ११७३ हिजरी। १० सितम्बर १७५६ (कपड-जय०), अहमदशाह का विजयसिंह को फरमान (न १५), १६ रवि उल अव्वल ११७३ हिजरी। १० दिसम्बर १७५६ (जोध०)
६१. पे० द० का० (२) १०६, पे० द० का० (२१) १०१
६२ उपर्युक्त (४०) १२६

९३. विजयसिंह का आनन्दराव वावले को पत्र, माघ वदी १०, वि० स० १८१६ १३ जनवरी १७६० (अर्जी वही नं० ४, पृ० ९१, जोध०)
९४ उपर्युक्त
९५ माधोसिंह का उदयपुर के राणा राजसिंह को खरीता, फाल्गुन सुदी १४, वि० स० १८१६। फरवरी २६, १७६० (कपड-जय०)
९६ विजयसिंह का आनन्दराव को पत्र, आषाढ सुदी ९ वि० स० १८१६। २२ जून १७६० (अर्जी वही नं०४, पृ० स० ६१ जोध०)
९७ माधोसिंह और विजयसिंह के बीच कौलनामा, फाल्गुन सुदी १२, वि० स० १८१६। २४ फरवरी १७६० (कपड जय०)
९८. विजयसिंह और जनकोजी सिंधिया के बीच समझौता, पौष सुदी ६, वि० स० १८१७। १५ जनवरी १७६१ (पो० फो० ६ फाईल नं० १०८। १२ जोध०) इस समझौते की तिथि सन्देहात्मक है। १४ जनवरी १७६१ को पानीपत के युद्ध में जनकोजी मारे जा चुके थे अत. उनकी मृत्यु के बाद यह समझौता सम्भव नहीं माना जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के पूर्व ही यह समझौता हो चुका था और विजयसिंह के हस्ताक्षर हेतु युद्ध के कुछ समय पूर्व ही जोधपुर भेजा गया हो। विजयसिंह ने १५ जनवरी १७६१ को हस्ताक्षर किये। उस समय तक पानीपत के युद्ध के परिणाम की सूचना राठौड़ शासक के पास नहीं पहुंची।
९९ पे० द० का० (२१) १८७
१००. अहमदशाह अब्दाली का विजयसिंह का फरमान, २५ रजब। ११७४ हिजरी २० फरवरी १७६० (जोध०)
१०१. उपर्युक्त
१०२ पे० द० का० (नई सीरीज) १,२४६
१०३-५ उपर्युक्त
१०६ - पे० द० का० (२७) २७५
१०७ पे० द० का० (नयी सीरीज) १, २४६
१०८-९. उपर्युक्त (२७), २७५
११०. पे० द० का० (२७), २६६
१११ उपर्युक्त
११२-३ उपर्युक्त (२९) १७
११४ उपर्युक्त (२१) ९२-९४ (२९) २७
११५ किशनगढ़ महाराजा का विजयसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष सुदी ३ वि० स० १८१८। २९ नवम्बर १७६१ (पो० फो० नं० ४, फाइल न० ८। ११ जोध०); पे० द० का० (२९) २७
११६ पे० द० का (२९) २७ मांगरोल कोटा के उत्तर-पूर्व में २५ मील दूर है।

११७ मारवाड री ख्यात (३) पृ० ४८

११८ विजयसिंह का सन्तोजी बावले को पत्र, मार्गशीर्ष बदी १, वि० स० १८१९ । २ नवम्बर १७६२ (प्र० ब० न० ४, पृ० ८० जोध०), विजयसिंह का महादजी को पत्र कार्तिक बदी ४ वि स० १८२० । २६ अक्टूबर १७६३ (प्र० ब० न० ८ पृ० २४ जोध०), मारवाड री ख्यात (३), पृ० ३४-३७

११९ दीवान सूरतराम का जयपुर के दलेलसिंह को पत्र, श्रावण बदी ४ वि० स० १८२१ । १७ जुलाई १७६४ (प्र० ब० न० ४, पृ० २४४, जोध०)

१२० विजयसिंह का प० गगाधर को पत्र, ज्यष्ठ सुदी १०, वि० स० १८२० । ९ जून १७६४ (प्र० ब० न० ४ पृ० १७, जोध०(विजयसिंह का बाबूराव पटेल को पत्र, माघ सुदी २, वि० स० १८२१ । २३ जनवरी १७६५ (प्र० ब० न० ४ पृ० ७९ जोध०)

१२१ विजयसिंह का प० गगाधर को पत्र, आषाढ बदी ६, वि० स० १८२१ । ९ जून १७६५ (प्र० ब० न० ४, पृ० १७ जोध०)

१२२ उपर्युक्त पे० द० का० (२९), १८, ९९, १०२

१२३ विजयसिंह का महादजी को पत्र ज्यष्ठ बदी १२, वि० स० १८२२ । ४ जून १७६६ (प्र० ब० स० ४, पृ० २४ जोध०), पे० द० का० (२९), १२८, पृ० १०५-१०६, मारवाड री ख्यात (३), पृ० ४०-४१ साभर जिले के उत्तरी कोने पर नावां २७° १ उत्तर व ७५° पूर्व म है ।

१२४ विजयसिंह का महादजी को पत्र, माघ बदी १० , वि० स० १८२३ । २५ जनवरी १७६७ (प्र० ब० न० ४, पृ० २६ जोध०)

१२५ मारवाड री ख्यात (३) पृ० ४१

१२६ विजयसिंह का नन्दवाना के बोहरो को पत्र, पौष बदी ३०, वि० स० १८२३ । ३१ दिसम्बर १७६६ (प्र० ब० न० ४, पृ० २८९ जोध०)

१२७ पे० द० का० (२९) १६२, १६४, १६५, चहर गुलजार (इलियट और डाउसन (८) पृ० २२५, वश भास्कर (४), पृ० ३७२०-३७२७, मारवाड री ख्यात (३), पृ० ४३-४७, परबतसर किशनगढ की क्षेत्रीय सीमा के पास व मकराणा स्टेशन से १२ मील दक्षिण की ओर २७ °५३ उत्तर व ७४ °४६ पूर्व में है ।

१२८ अरिसिंह का विजयसिंह को खरीता, चैत्र बदी ५, वि० स० १८२६ । १६ मार्च १७६९ (पो० फो० २, फाइल न० ३ खरीता न० ४, जोध०)

१२९ मेवाड के सामन्तो का विजयसिंह को पत्र, श्रावण बदी १२, वि० स० १८२५ । ६ अगस्त १७६८ (पो० फो० फाइल न ३ पत्र न ३जोध०)

१३० पे० द० का० (३८) १८५

१३१-२ उपर्युक्त (२९) २३६, (३८), १८५

१३३ महादजी का विजयसिंह का पत्र, ज्येष्ठ सुदी ५, वि० सं० १८२६। ८ जून १७६६ (पो० फो० नं० ६, पत्र नं० ८, जोध०)

१३४ प० द० का० (३८) १८५

१३५ विजयसिंह का महादजी को पत्र, मार्गशीर्ष वदी १२, वि० सं० १८२५। ५ दिसम्बर १७६८ (प्र० ब० नं० ४, पृ० नं० २६ जोध०), विजयसिंह का बहादुरसिंह किशनगढ़ नरेश, को पत्र, पोष बदी ६, वि० सं० १८२५। २६ दिसम्बर १७६८ (प्र० ब० नं० ४, पृ० २४०, जोध०), महाराजा पृथ्वीसिंह का महादजी को पत्र, पौष सुदी २, वि० सं० १८२५। १० जनवरी १७६६ (कपड–जय०)

१३६ महादजी का विजयसिंह को पत्र, ज्येष्ठ सुदी ५, वि० सं० १८२६। ८ जून १७६६ (पो० फो० नं० ६, पत्र नं० ८, जोध०) रकम प्राप्ति की रसीद।

१३७ हथवही नं० २ पृ० १२२-१२३ (जोध०) कुल रकम ५,४०,००० रुपये मांगी गई, जिसमें ४०,००० रुपये सिंधिया ने इस शर्त पर कम किये कि अदायगी अग्रिम दी जायगी।

१३८ उपर्युक्त, महादजी का विजयसिंह को पत्र, ज्येष्ठ सुदी ५, वि० सं० १८२६ ८ जून १७६६ (पो० फो० नं० ६ पत्र नं० ६ जोध०), रकम–प्राप्ति की रसीद

१३९ प० द० का० (२६) २३६

१४० उपर्युक्त (२६), २४३ (३८) १८५

१४१ गोविन्दराव का विजयसिंह को पत्र, आषाढ़ सुदी ५ वि० सं० १८२७। २७ जून १७७० (पो० फो० नं० ६, पत्र ५ जोध०)

१४२ सूरतराम का बाघसिंह को पत्र, चैत्र सुदी १२, वि० सं० १८२६। १७ अप्रेल १७७० (प्र० ब० सं० ४, पृ० १७६ जोध०)

१४३ अरिसिंह का विजयसिंह को खरीता, बैशाख बदी ११, वि० सं० १८२७। २१ अप्रेल १७७० (पो० फो० नं० ३ फाईल नं० १ खरीता नं० ३ जोध०), अरिसिंह का विजयसिंह को खरीता, ७ अक्टूबर १७७० (पो० फो० नं० ३ फाइल नं० १ खरीता नं० ६ जोध०)

१४४ मेहता अगरचन्द से कायस्थ जसवंतराय को पत्र, पौष सुदी १३, वि० सं० १८२७। ३० दिसम्बर १७७० (उदयपुर-रिकार्ड)

१४५ महादजी का विजयसिंह को पत्र, भाद्रपद सुदी वि० सं० १८२७। सितम्बर १७७० (पो० फो० नं० ६ पत्र नं० १० जोध०)

१४६ महादजी का विजयसिंह को पत्र, आषाढ़ बदी २-३, वि० सं० १८२८। ३१ मई १७७१ (पो० फो० नं० ६, पत्र नं० ३ व ४ जोध०)

१४७. उपर्युक्त को पत्र, आश्विन वदी ११, वि० सं० १८२८। ४ अक्टूबर १७७१ (पो० फो० न० ६, पत्र न० ११ जोध०)

१४८ विजयसिंह का महादजी को पत्र, माघ सुदी ६ वि० सं० १८२८। १० फरवरी १७७२ (म० ब० न० ४, पृ० ३० जोध०)

१४९ उपर्युक्त, चैत्र वदी १३, वि० सं० १८२८। ३१ मार्च १७७२ (म० ब० ४, पृ० ३०, जोध०)

१५० महादजी का विजयसिंह को पत्र, चैत्र बदी ५ वि० स० १८२६। २३ मार्च १७७२ (पो० फो० न० ६, पत्र नं० १८ जोध०)

१५१. उपर्युक्त पत्र न० १६

१५२ विजयसिंह का महादजी को पत्र, ज्येष्ठ सुदी ६ वि० स० १८२८। ■ जून १७२२ (म० ब० न० ४, पृ० ३२ जोध०)

१५३ महादजी का विजयसिंह को पत्र, चैत्र वदी ५, वि० सं० १८२६। २३ मार्च १७७२ (पो० फो० न० ६, पत्र न० १६ जोध०)

१५४–६ उपर्युक्त, पत्र स २०

१५७. महादजी का विजयसिंह को पत्र, पौष सुदी ३ वि० सं० १८२६। २७ दिसम्बर १७७२ (पो० फो० न० ६ पत्र न० १७ जोध०)

१५८ मुंडियाड़ ख्यात (विजयसिंह) पृ० १३६ (बस्ता न० २० जोध०)

१५९ विजयसिंह का सन्तोजी बावले को पत्र, फाल्गुन वदी १२ वि० सं० १८२६। १८ फरवरी १७७२ (म० ब० न० ४, पृ० ८१ जोध०)

१६० महादजी का विजयसिंह को पत्र, आषाढ़ सुदी वि० स० १८३०। जून १७७३ (पो० फो० न० ६ पत्र २५ जोध०)

१६१ उपर्युक्त पत्र न० २६

१६२ विजयसिंह का महादजी को पत्र, फाल्गुन सुदी ६ वि० स० १८२६। २७ फरवरी १७७३ (म० ब० ४ पृ० ३२ जोध०)

१६३ महादजी का विजयसिंह को पत्र, वैशाख वदी ५ वि० स १८३०। ३० अप्रैल १७७४ पो० फो० न० ६, पत्र न० २६ जोध०), हथबही न० २, पृ० १२५-१२६ जोध०

१६४. महादजी का विजयसिंह को पत्र, श्रावण वदी २, वि० सं० १८३२। १४ जुलाई १७७५ (पो० फो० न० ६ पत्र न० ३० जोध०)

१६५ सूरतराम का महादजी को पत्र, कार्तिक सुदी ५, वि० सं० १८८३। १६ नवम्बर १७७६ (म० ब० न० ४, पृ० २६४)

१६६ हथबही न० २, पृ० १२७, १३१–१३२ जोध०

अध्याय : ५

विजयसिंह और मराठे (उत्तरार्द्ध)

(१७८०–१७९३)

(क) राठौड़–सिंधिया संघर्ष (१७८२–१७९०)

(१) मतभेद और तनाव की परिस्थितियाँ

पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं कि महादजी सिंधिया और महाराजा विजयसिंह के राजनैतिक सम्बन्धों में घनिष्टता कभी भी नहीं रह सकी। न तो मराठों की कोई निश्चित राजनैतिक मान्यताएँ थी, जिससे वे राठौड़ राज्य पर स्थायी प्रभाव स्थापित कर सकें और न राठौड़ शासक १७५६ की संधि के प्रति ईमानदार था। वह हमेशा ही वार्षिक कर देने में उदासीनता की नीति अपनाता रहा। अतः राठौड़ों का बकाया कर को अदा न करने का दृष्टिकोण,[1] और सिंधिया की सिद्धान्तहीन राजनीति के कारण विजयसिंह और महादजी के आपसी सम्बन्ध १७८० के बाद इतने बिगड़ने लगे कि उन दोनों के बीच युद्ध अवश्यम्भावी हो गया।

१७५६ की संधि के अनुसार अजमेर पर मराठों का शासन स्थापित हो गया था। राठौड़ों ने इसे मान्यता भी दी थी। परन्तु इसके आसपास के क्षेत्र पर राठौड़ों का अधिकार बना रहा। जुलाई १७८० में भिनाय के मामले में जब विजयसिंह ने हस्तक्षेप किया तो सिंधिया को बुरा लगा। राठौड़ शासक को वहाँ से अपने पदाधिकारी हटाने के लिए बाध्य किया गया।[2] इसके अलावा १७८१ में विजयसिंह की अंग्रेजों के साथ वार्ता सिंधिया को पसन्द नहीं थी।[3] १७८४ में मेवाड़ में चूंडावत-शक्तावत संघर्ष में सिंधिया ने चूंडावत का और राठौड़ों ने शक्तावतों का साथ दिया।[4] १७८६ में महादजी ने जयपुर के शासक को सैनिक आक्रमण की धमकी देकर उससे बकाया राशि के २१ लाख रुपये वसूल किये,[5] तो विजयसिंह ने जयपुर के शासक का समर्थन किया।

सन् १७७२ में रामसिंह की मृत्यु के बाद जयपुर जोधपुर के सम्बन्ध सुधरने लगे। १७७४ में माचेड़ी के राजा प्रतापसिंह नरूका ने जयपुर शासक पृथ्वीसिंह के विरुद्ध आक्रमण किया तो विजयसिंह ने नरूका के विरुद्ध राठौड़-मुगल कछवाहा संयुक्त कार्यवाही की योजना बनायी। उसने बादशाह को विश्वास दिलाया कि इससे मराठों की शक्ति को नियंत्रित किया जा सकेगा।[6] इसका यह परिणाम हुआ कि माचेड़ी के

राजा की महत्वाकांक्षाएँ सफल न हो सकी। जब सवाई प्रतापसिंह १६ अप्रैल १७७८ को जयपुर का नया शासक बना तो नरूका ने पुन विद्रोही हरकतें करनी प्रारंभ कीं। १७८२ में उसने जयपुर राज्य के एक भूभाग पर अधिकार कर लिया।[७] जब जयपुर के राजनीतिज्ञों ने मराठों से सहायता के लिए वार्ता प्रारम्भ की तो विजयसिंह ने प्रतापसिंह को इसके लिए आग्रह किया[८] और आश्वासन दिया कि वह उसकी सहायता के लिए सेना भेजने को तैयार है।[९] मई १७८५ तक जोधपुर-जयपुर सबंध घनिष्ट होने लगे।[१०] अगस्त में विजयसिंह ने अपनी पौत्री की शादी सवाई प्रतापसिंह से कर इन सम्बन्धों को और घनिष्ठ बना लिया।[११]

जून १७८६ में महादजी रकम-वसूल कर जयपुर से चला गया।[१२] विजयसिंह ने जयपुर-शासक से सैनिक समझौता करने के लिए लिखा, जिससे मराठों के विरुद्ध राठौड़-कछवाह संयुक्त सैनिक कार्यवाही की जा सके।[१३] यद्यपि अगस्त १७८६ तक ऐसा विदित होने लगा था कि दोनों शासकों का सैनिक समझौता होने ही वाला है, तथापि निश्चित रूप से कुछ नहीं हो सका।[१४] विजयसिंह ने यह प्रस्ताव रखा था कि दोनों सेनाओं के खर्चे हेतु जयपुर के कुछ क्षेत्र उसके अधीन कर दिये जाएँ।[१५] यह प्रस्ताव जयपुर के राजनैतिक क्षेत्रों में मान्य नहीं था। अतः कुछ समय तक समझौते की वार्ता गौण हो गयी। जयपुर में खुशीराम बोहरा के दल ने मराठों से मित्रता की नीति अपना कर उनसे वार्ता प्रारम्भ की।[१६] इसके पूर्व कि खुशीराम अपनी कूटनीति में सफल हो सके जनवरी १७८७ में जयपुर के मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन हो गये। दौलतराम हल्दिया, जो कि मराठा-विरोधी राजनीतिज्ञ था, दीवान नियुक्त किया गया। उसने विजयसिंह की राजपूत संघ वाली योजना को क्रियान्वित करने का दृढ निश्चय किया।[१७] विजयसिंह ने अपनी योजना पर कार्य करने के लिए शेखावतों में वार्ता प्रारम्भ कर रखी थी। उसकी मध्यस्थता के फलस्वरूप कछवाह-शेखावत वैमनस्य दूर हो गया।[१८] शेखावतों ने प्रतापसिंह का नेतृत्व स्वीकार किया। फरवरी १७८७ में जयपुर के शासक ने विजयसिंह को लिखा कि वह राठौड-कछवाह सेना का खर्चा देने को तैयार है अतः शीघ्र ही राठौड सेना जयपुर भेजी जाए।[१९]

उस समय तक राठौड शासक ने अपनी आन्तरिक और बाह्य स्थिति को शक्तिशाली बना लिया था। आन्तरिक क्षेत्र में उसकी वित्तीय स्थिति समलने लगी। गौडवाड पर अधिकार हो जाने से उसे समृद्ध उपजाऊ क्षेत्र प्राप्त हो गया। १७८१ में उसने नयी मुद्रा 'विजयशाही सिक्के' प्रचलित कर व्यापार को स्थायित्व दिया।[२०] उसने भीमराज के नेतृत्व में एक स्थायी सेना का संगठन किया जिसमें सिंध और रुहेलखण्ड के सैनिकों को भी भर्ती किया गया।[२१] बाद में इस सेना ने नागा और दादूपंथी साधुओं को भी लेना शुरू किया।[२२] १७८२ में उसने सिंध के अमरकोट पर अधिकार कर लिया, जिससे वहाँ के क्षेत्रों से सैनिक प्राप्त किये जा सकें।[२३] अगस्त १७८५ में नजफकुली खां और विजयसिंह के बीच आपसी सहायता का

समझौता हो गया।[२४] फरवरी १७८६ में उसने होल्कर को सिंधिया के विरुद्ध सहायता के लिए लिखा।[२५] जून में अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करने की वार्ता प्रारंभ हुई।[२६] उसने मराठों के विरुद्ध राजपूत संघ का संगठन करना प्रारम्भ किया।[२७] फरवरी १७८७ तक उसकी स्थिति इतनी मजबूत हो गयी कि उसने जयपुर के दीवान हल्दिया को जयपुर जोधपुर संयुक्त मोर्चा बनाने के लिए ठोस कदम उठाने की बात लिखी।[२८] नवाब शुजाउद्दौला तथा सिख और अफगान शासकों के पास भी उसने अपने दूतों को भेजकर सहायता के लिए प्रार्थनाएँ कीं।[२९] महेशदास कूंपावत ने जब यह राय दी कि मराठों से समझौता कर लेना ही उचित है तो राठौड शासक ने उसे अस्वीकार किया।[३०] उसे सन्देह हुआ कि जोधपुर स्थित मराठों के प्रतिनिधि रामाराव सदाशिव (सिंधिया का प्रतिनिधि) और कृष्णाजी जगन्नाथ (पेशवा का प्रतिनिधि) राठौडी सामन्तों में फूट डाल रहे हैं, अतः उन पर कड़ी नजर रखी जाने लगी।[३१] मारवाड में तत्काल अनिवार्य सैनिक भर्ती के आदेश दिये गये।[३२]

'२) तूंगा का युद्ध (जुलाई २८, १७८७)

विजयसिंह और प्रतापसिंह की युद्ध की तैयारियों से महादजी क्रुद्ध हो उठा। उसने फरवरी १७८७ के अन्त में अपने बख्शी जीवाजी बल्लाल केरकर (जीवदादा) को रायाजी पटेल की स्थिति को मजबूत करने भेजा जो कि जयपुर स्थित सिंधिया की टुकडी का सेनापति था। परन्तु इससे राठौड कछवाहा शक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। इस पर कहीं स्थिति बिगड नहीं जाए, यह सोचकर महादजी स्वयं एक बड़ी सेना लेकर चला। उसने दौसा के पास २४ मार्च को डेरा डाला।[३३] जयपुर के शासक से बकाया धनराशि देने को कहा गया। परन्तु शासक का दृष्टिकोण मराठा-विरोधी बना रहा। समझौता असम्भव था।[३४] सिंधिया ने राजपूतों के विरुद्ध अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए होल्कर को लिखा कि वह अम्बाजी इंगले व खांडेराव को सेना सहित भेजे। चार माह तक वह उनकी प्रतीक्षा करता रहा।[३५] इतने लम्बे समय तक उसने कोई सैनिक कार्यवाही नहीं की। संभवतः वह वर्षा के बाद ही सैनिक कार्यवाही करना चाहता था। उसे विश्वास होने लगा था कि तब तक राजपूतों की सेना, जिसमें कृषक वर्ग के सैनिक अधिक थे, पहली वर्षा के बाद खेतों में काम करने के लिए बिखर जाएगी।[३६] उसने यह भी सोचा था कि इसी बीच राजपूत शासक अपने स्वार्थों एवं उसकी उपस्थिति के कारण लड़ झगड़ कर अलग हो जाएँगे।[३७] पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। २६ जून को खांडेराव उससे आ मिला।[३८] जुलाई में अम्बाजी सेना सहित दौसा पहुँच गया।[३९]

विजयसिंह के नेतृत्व में "राजपूत संघ" भी शक्तिशाली बन चुका था। जयपुर-सिंधिया वार्ता की असफलता के बाद विजयसिंह ने रण यात्रा के लिए गढ से प्रस्थान कर मेड़तिया द्वार के बाहर डेरा डाल दिया।[४०] पर शीघ्र ही जोधपुर में घटित कुछ समस्याओं के निपटाने हेतु आगे प्रस्थान नहीं किया।[४१] मई १७८७ के प्रारम्भ में

जयपुर शासक ने युद्ध क्षेत्र के लिए जयपुर से प्रस्थान कर दिया ।[४२] विजयसिंह ने अपने पुत्र जालमसिंह को १५ हजार सैनिक देकर जयपुर की ओर भेजा ।[४३] इसके साथ ही उसने कछवाह शासक को सूचित किया कि जब तक उसका वकील भीमराज उससे न मिल जाए युद्ध प्रारम्भ न करे ।[४४] अतः मराठों पर शीघ्र आक्रमण न हो सका । राठौड़ कछवाहों ने सिंधिया की फौज में स्थित मोहम्मद बेग हमदानी को अपनी ओर करने के लिए उसके साथ वार्ता की ।[४५] सिंधिया से छीनकर आगरा तथा जयपुर में जागीर देने का वायदा उससे किया गया ।[४६] हमदानी ने इसे स्वीकार किया । वह और भीमराज सिंघवी दोनों ही जयपुर की सेना में २४ मई को पहुँचे ।[४७]

भीमराज की राठौड़ सेना में १५ हजार राठौड़ अश्वारोही, ४ हजार मीणा सैनिक, एवं ५ हजार नागा साधु थे ।[४८] राजपूत संघ की पूरी फौज ४१ हजार तक पहुँच गयी थी ।[४९] जुलाई में सिंधिया के विरुद्ध युद्ध के उद्देश्यों की (राठौड़ कछवाह हमदानी के बीच) नये स्तर पर व्याख्या की गयी । इसके अनुसार[५०] विजयी होने के बाद जयपुर को वह सम्पूर्ण क्षेत्र दिया जाएगा जो किसी समय माधोसिंह के पास था । माचेड़ी के शासक के क्षेत्र पर अधिकार कर उसे दो भागों में विभाजित कर एक भाग राठौड़ शासक को दिया जाएगा । नजफखां के क्षेत्रों पर हमदानी का अधिकार माना जाएगा । परन्तु उन क्षेत्रों में जयपुर के परिवार के पुराने भाग प्रतापसिंह को दे दिये जाएँगे । इसके अलावा अन्य कोई क्षेत्र जीता गया तो आधा हमदानी को दिया जाएगा और बाकी के आधे भाग को दोनों शासकों में समान रूप से विभाजित किया जाएगा ।

राजस्थान के कोने कोने में स्थित मराठों के विरुद्ध एक रणनीति तैयार की गयी । उदयपुर के महाराणा से कहा गया कि वह अपने राज्य के पश्चिमहम क्षेत्र पर जिस पर सिंधिया ने अधिकार कर रखा था, पुनः अधिकार करे और उज्जैन पर आक्रमण करे ।[५१] कोटा के जालमसिंह को सूचित किया कि कोटा राज्य के जो क्षेत्र मराठों के अधिकार में हैं वे छीन लिये जाएँ ।[५२] जयपुर के शासक ने कर्नल हार्पर से प्रार्थना की कि वह गवर्नर जनरल के द्वारा राजा हिम्मत बहादुर को आदेश दिलाए कि यमुना के दूसरी ओर से सिंधिया पर आक्रमण करे ।[५३] राजपूतों ने सिंधिया के किराये के सैनिकों को अपनी ओर मिलाने का लालच देना प्रारम्भ किया ।[५४] यद्यपि अम्बाजी इगले के आने के पहले ही युद्ध प्रारम्भ करने का निश्चय राजपूतों ने किया था, परन्तु जब तक बूँदी, खीचीवाड़ा तथा अन्य स्थानों के राजपूत शासकों की फौजें, विशेषतः सिंधी तोपची सम्मिलित नहीं हुए, युद्ध नहीं किया गया ।[५५] जब अम्बाजी इगले और खाण्डेराव, सिंधिया से आ मिले तो "राजपूत संघ" ने शीघ्र ही आक्रमण कर दिया । भीमराज, हमदानी, दौलतराव और मलिक मोहम्मदखां ने मराठों को पहुँचने वाली रसद लूटनी शुरू की ।[५६] प्रति दिन झड़पें होने लगीं जिसमें राठौड़ों की

ारता और साहस के कारण "सघ का मनोबल" अत्यन्त दृढ बना रहा।[५७] सिंधिया कई सैनिक राजपूतो से मिलने लगे।[५८]

राजपूतो का मनोबल ऊँचा होने पर भी उनके "सघ" मे कुछ कमजोरियाँ थी। घ का नेतृत्व जयपुर-शासक प्रतापसिंह कर रहा था। उसका आचरण सैनिको के नए प्रेरणात्मक नही था। ज्यों-ज्यों उसकी सैनिक टुकडियों ने प्रतापसिंह नरूका से छवाही प्रदेशो को पुन. प्राप्त करना शुरू किया, त्यों-त्यो वह सिंधिया से प्रत्यक्ष युद्ध करने मे ढिलाई करने लगा।[५९] प्रारम्भ से ही वह अम्बाजी इगलिया, शिवाजी एटलराव और रायेखान के मार्फत महादजी से समझौते की बातें कर रहा था।[६०] राठौड सेनापति को यह आचरण उचित नही लगा। युद्ध के पूर्व २५ जुलाई १७८७[६१] को उसने राजा से स्पष्ट कह दिया कि युद्ध अवश्यम्भावी है अतः उन्होंने यह प्राण (प्रतिज्ञा) की कि वे "कल युद्ध मे जूझ जाएंगे और पराजित रूप मे जीवित नही लौटेंगे।[६२] यह धमकी काम कर गयी। सिंधिया से वार्ता बन्द कर दी गयी और कछवाहा शासक को युद्ध मे शामिल होना पडा।[६३]

तूंगा का युद्ध २८ जुलाई १७८७ को लडा गया।[६४] सघ की सेना का व्यूह इस प्रकार था कि सिंधिया की सेना मे फ्रांसीसी लेस्टेन्यू व डा बसोल्ट की ६ बटालियनो का सामना करने के लिए दाई ओर राठौड पंक्ति थी, हमदानी बाई ओर व मध्य मे कछवाहा सैनिक थे। युद्ध का पूर्ण भार राठौडो पर था, जिन्होने अपनी तोपें दाग कर युद्ध का श्रीगणेश किया।[६५] प्रात. ६ बजे तोपो का युद्ध प्रारम्भ हुआ। यह दो घंटे तक चलता रहा। यद्यपि राठौडो को भयकर नुकसान हो रहा था, फिर भी वे आगे बढ़े।[६६] अब महाराजा जयपुर, जो कि पीछे की पंक्ति में था, हरावल (प्रथम पंक्ति) की ओर बढने लगा परन्तु शीघ्र ही यह जानकर कि हरावल में राठौड लड रहे हैं, वह वही रुक गया।[६७] करीब ग्यारह बजे राठौडो की तोपें बन्द हो गयी। तब तलवारो, तीरों, राकेटो से युद्ध हुआ। चार बजे सिंधिया के आसपास चार हजार राठौड सैनिकों ने अम्बाजी पर आक्रमण किया। मराठो की भरी भीड मे उनके राकेटों व आग उगलते तोपखाने की परवाह न कर वे प्रवेश कर गये। मराठी तोपो को उखाडते, तोपचियो को मारते हुए वे मराठा पैदल टुकडी पर टूट पडे। कई सौ सिपाही मारे गये, *यहाँ तक कि डीबोइन के सिपाही, जिन्होने तोपें दागी थी,* इधर-उधर भागने लगे।[६८] परन्तु रानेखा के तोपखाने के सम्मुख उन्हें पीछे हटना पडा। इस आक्रमण मे उनके बीस सरदार एव चार सौ से पाच सौ राठौड़ सैनिक मारे गये या घायल हुए। उनका नेता ओमाराम भण्डारी और उसका पुत्र युद्ध क्षेत्र मे मारे गये।[६९] साँझ को मराठो के एक गोले से हमदानी की मृत्यु हो गया। राठौडो ने चार-पाँच बार मराठों की पंक्ति पर आक्रमण करना चाहा परन्तु उनके तोपखाने के कारण वे रास्ता नहीं बना सके।[७०] रात्रि को ८ बजे युद्ध बन्द हुआ।[७१]

यद्यपि राजपूतो के मृतकों की सख्या अधिक रही फिर भी उन्होंने एक अगस्त को सिंधिया को तूंगा से अलवर और हिण्डौन की ओर जाने को मजबूर किया।[७२] यह

सिंधिया की स्पष्ट हार थी। ज्यो ही सिंधिया राजस्थान से चला गया, विजयसिंह ने मेड़ता स्थित अपने सेनापति सिंघवी धनराज को अजमेर हस्तगत करने के लिए भेजा।[७३] अजमेर पर राठोड़ो का अधिकार २७ अगस्त को हो गया।[७४] फिर उसने तारागढ (गढ बीटली) का घेरा डाल दिया। जयपुर से राठौड़ो की सहायतार्थ रोडोजी खवास भेजे गये।[७५] विजयसिंह ने नागौर और जालोर स्थित राठौड़ी टुकड़ियों को सिंघवी की सहायतार्थ भेजा, जिससे कि गढ पर शीघ्र अधिकार हो सके।[७६] परन्तु मराठा किलेदार, शेरखा जमादार ने, जो मिर्जा रहीम बेग का भाई था, किले की दृढतापूर्वक सुरक्षा की।[७७] महादजी ने उसकी सहायता के लिए यद्यपि कोई मदद नहीं भेजी,[७८] फिर भी उसने बड़ौदा के गायकवाड को मारवाड़ पर आक्रमण करने को लिखा, जिससे गढ का पतन रोका जा सके।[७९] अक्टूबर मे अम्बाजी इगले ने किशनगढ के शासक को अपनी ओर मिलाकर अजमेर पर पुनः अधिकार करना चाहा और किलेदार को रसद पहुँचाने की कोशिश की, परन्तु रोडोजी खवास ने उसे वापिस लौटने को मजबूर किया। शेरखा अधिक दिनो तक घेरे का सामना नही कर सका अपनी इज्जत बचाने हेतु उसने जहर खाकर आत्म-हत्या कर ली। इस प्रकार २१ दिसम्बर को गढ पर राठौड़ो का अधिकार हो गया।[८०] विजयसिंह ने धनराज सिंघवी को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया।[८१]

अजमेर के पतन के बाद राजस्थान मे सिंधिया का प्रभाव घटने लगा। विजयसिंह ने तुकोजी होल्कर को ७ जनवरी १७८८ को पत्र लिखते हुए कहा कि राजस्थान की भूमि राजस्थानियो की है और उनकी मित्रता मे ही मराठो का भला है।[८२]

(३) सिंधिया-विरोधी राठौड कूटनीति (१७८८ से १७९०)

तूंगा युद्ध की सफलता ने राठौड़ो की महत्वाकांक्षा को पुनः जाग्रत कर दिया। विजयसिंह अपने पिता की तरह न सिर्फ राजस्थान मे बल्कि उत्तरी भारत से भी सिंधिया के प्रभाव को समाप्त करने के लिए प्रयास करने लगा। उन सभी व्यक्तियों से पत्र-व्यवहार एव राजनैतिक वार्ताएं प्रारम्भ की गयी, जो कि सिंधिया के विरुद्ध थे। जनवरी १७८८ मे उसने तुकोजी होल्कर के द्वारा पेशवा को एक पत्र लिखा कि उत्तर भारत मे मराठा हितो के उत्तरदायित्व से सिंधिया को मुक्त कर दिया जाए।[८३] फरवरी-मार्च म भीमराज सिंघवी को बादशाह के पास भेजकर शाही सहायता की कोशिश की गयी।[८४] तुकोजी होल्कर और महादजी के मतभेद का लाभ उठाकर[८५] उसने तुकोजी को लिखा कि यदि वे उत्तरी भारत मे अपना प्रभाव बनाये रखना चाहते हैं तो महादजी की कोई सहायता न करें।[८६] सिंधिया ने कई बार प्रयास किया कि राठौड शासक के साथ अच्छे सम्बन्ध पुन. स्थापित हो जाएँ परन्तु विजयसिंह ने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया।[८७] दूसरी ओर जब दिल्ली मे सिंधिया-विरोधी गुलाम कादिर ने बादशाह को कैद कर राज्य-शक्ति जबर्दस्ती ले ली

तो राठोड़ शासक ने गुलाम कादिर का समर्थन किया।[८८] पंजाब के सिक्ख नेताओं से उसका पत्र व्यवहार चल रहा था। जुलाई में सिक्खों ने विजयसिंह से आपसी सहयोग का समझौता करने के लिए वार्ता प्रारम्भ की।[८९] अक्टूबर में इस हेतु राठोड़ प्रतिनिधि पंजाब भेजा गया।[९०] अफगानिस्तान के तैमूर शाह से प्रार्थना की गयी कि वह सहायता को आए। तैमूर दिसम्बर १७८८ में भारत में आ गया।[९१] अप्रेल, १७८९ में जब सिंधिया की कुछ प्लैटूनों ने विद्रोह किया तो विजयसिंह ने दिल्ली-स्थित अपने प्रतिनिधियों को आदेश दिया कि उन सैनिकों को राठोड़ सेना में भर्ती कर लें।[९२] १७९० के प्रारम्भ में अंग्रेजों से सैनिक सहायता एवं सिंधिया को उत्तरी भारत से निकालने हेतु वार्ता की गयी।[९३]

तीन वर्ष तक विजयसिंह प्रयास करता रहा कि उसके सिंधिया-विरोधी मोर्चे में उत्तरी भारत की सभी शक्तियाँ सम्मिलित हो जाएँ परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। तुकोजी और महादजी के मतभेद अवश्य थे, परन्तु जिस प्रकार के पथ राठोड़ शासक लिए रहा था और जिन शक्तियों से वह सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था उसे देखते हुए तुकोजी चकित था। अजमेर पर राठौड़ी अधिकार से भी वह प्रसन्न नहीं था।[९४] उसने विजयसिंह को सूचित किया कि उत्तरी भारत में वह पेशवा का प्रतिनिधि पहले है अतः विजयसिंह जो कार्यवाही कर रहा है वह उसे पसन्द नहीं है।[९५] दिसम्बर १७८८ से मार्च १७८९ तक तैमूर शाह भारत में रहा पर विजयसिंह ने उसकी उपस्थिति का कोई लाभ नहीं उठाया। अप्रेल १७८९ में अफगानिस्तान में स्वयं भाई के विद्रोही हो जाने पर तैमूर काबुल की ओर चला गया।[९६] विजयसिंह द्वारा तैमूर को आमन्त्रण देने से बादशाह और सिक्ख नेता अप्रसन्न हो गये क्योंकि इससे पंजाब और उत्तरी भारत में उनकी स्थिति को खतरा था।[९७] उन्होंने विजयसिंह को लिखा कि वह तैमूर शाह को पुनः आमन्त्रित न करे तो वे उसकी भरपूर सहायता करेंगे।[९८] पर विजयसिंह ने पुनः आमन्त्रण दे दिया।[९९] परन्तु न तो तैमूर से कोई उत्तर आया न सिंध में उसके प्रतिनिधि शाहनवाजखां ने कोई सूचना भेजी।[१००] १७८९ के प्रारम्भ में सिंधिया की स्थिति में सुधार हो गया।[१०१] पेशवा ने उसे उत्तरी भारत में मराठों का नेतृत्व पुनः दे दिया।[१०२] अब सिंधिया राठोड़ शक्ति को कुचलने की तैयारी करने लगा।[१०३] जुलाई १७८९ में विजयसिंह ने होल्कर के मार्फत जब समझौता करना चाहा तो सिंधिया ने कोई सुनवाई नहीं की।[१०४] मार्च १७९० में अंग्रेजों ने राठोड़ों की सहायता के लिए अपनी अनिच्छा प्रकट की क्योंकि वे उस समय टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध में लगे हुए थे।[१०५]

ज्योंही सिंधिया की स्थिति सुधरी उसने घोषणा की कि वर्षा के बाद वह मारवाड़ पर आक्रमण करेगा।[१०६] परन्तु यह आक्रमण नहीं हुआ। अगस्त १७८९ तक वह बीमार रहा।[१०७] फिर अचानक तुकोजी होल्कर व अली बहादुर से उसके मतभेद इतने उग्र हो गये कि गृह युद्ध की सम्भावना आने लगी। परन्तु शीघ्र ही उनमें

सिंधिया की स्पष्ट हार थी। ज्यो ही सिंधिया राजस्थान से चला गया, विजयसिंह ने मेड़ता-स्थित अपने सेनापति सिंघवी धनराज को अजमेर हस्तगत करने के लिए भेजा।[७३] अजमेर पर राठौड़ो का अधिकार २७ अगस्त को हो गया।[७४] फिर उसने तारागढ (गढ बीटली) का घेरा डाल दिया। जयपुर से राठौडो की सहायतार्थ रोडोजी खवास भेजे गये।[७५] विजयसिंह ने नागौर और जालोर स्थित राठौड़ी टुकडियो को सिंघवी की सहायतार्थ भेजा, जिससे कि गढ पर शीघ्र अधिकार हो सके।[७६] परन्तु मराठा किलेदार, शेरखा जमादार ने, जो मिर्जा रहीम बेग का भाई था, किले की दृढतापूर्वक सुरक्षा की।[७७] महादजी ने उसकी सहायता के लिए यद्यपि कोई मदद नही भेजी,[७८] फिर भी उसने बडोदा के गायकवाड को मारवाड पर आक्रमण करने को लिखा, जिससे गढ का पतन रोका जा सके।[७९] अक्टूबर मे अम्बाजी इगले ने किशनगढ के शासक को अपनी ओर मिलाकर अजमेर पर पुनः अधिकार करना चाहा और किलेदार को रसद पहुँचाने की कोशिश की, परन्तु रोडोजी खवास ने उसे वापिस लौटने को मजबूर किया। शेरखा अधिक दिनो तक घेरे का सामना नही कर सका। अपनी इज्जत बचाने हेतु उसने जहर खाकर आत्म-हत्या कर ली। इस प्रकार २४ दिसम्बर को गढ़ पर राठौडो का अधिकार हो गया।[८०] विजयसिंह ने धनराज सिंघवी को अजमेर का सूबेदार नियुक्त किया।[८१]

अजमेर के पतन के बाद राजस्थान मे सिंधिया का प्रभाव घटने लगा। विजयसिंह ने तुकोजी होल्कर को ७ जनवरी १७८८ को पत्र लिखते हुए कहा कि राजस्थान की भूमि राजस्थानियो की है और उनकी मित्रता मे ही मराठो का भला है।[८२]

(३) सिंधिया-विरोधी राठौड कूटनीति (१७८८ से १७९०)

तूंगा युद्ध की सफलता न राठोडो की महत्वाकाक्षा को पुनः जाग्रत कर दिया। विजयसिंह अपने पिता की तरह न सिर्फ राजस्थान से बल्कि उत्तरी भारत से भी सिंधिया के प्रभाव को समाप्त करने के लिए प्रयास करने लगा। उन सभी व्यक्तियो से पत्र-व्यवहार एव राजनैतिक वार्ताए प्रारम्भ की गयी, जो कि सिंधिया के विरुद्ध थे। जनवरी १७८८ मे उसने तुकोजी होल्कर के द्वारा पेशवा को एक पत्र लिखा कि उत्तर भारत मे मराठा हितो के उत्तरदायित्व से सिंधिया को मुक्त कर दिया जाए।[८३] फरवरी-मार्च म भीमराज सिंघवी को बादशाह के पास भेजकर शाही सहायता की कोशिश की गयी।[८४] तुकोजी होल्कर और महादजी के मतभेद का लाभ उठाकर[८५] उसने तुकोजी को लिखा कि यदि वे उत्तरी भारत मे अपना प्रभाव बनाये रखना चाहते हैं तो महादजी की कोई सहायता न करें।[८६] सिंधिया ने कई बार प्रयास किया कि राठौड़ शासक के साथ अच्छे सम्बन्ध पुन. स्थापित हो जाएँ परन्तु विजयसिंह ने इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया।[८७] दूसरी ओर जब दिल्ली में सिंधिया-विरोधी गुलाम कादिर ने बादशाह को कैद कर राज्य-शक्ति जबर्दस्ती ले ली

राठौड़ शासक ने गुलाम कादिर का समर्थन किया।[८८] पंजाब के सिक्ख नेताओं से उसका पत्र व्यवहार चल रहा था। जुलाई में सिक्खों ने विजयसिंह से आपसी सहयोग का समझौता करने के लिए वार्ता प्रारम्भ की।[८९] अक्टूबर में इस हेतु राठौड़ प्रतिनिधि पंजाब भेजा गया।[९०] अफगानिस्तान के तैमूर शाह से प्रार्थना की गयी कि वह सहायता को आए। तैमूर दिसम्बर १७८८ में भारत में आ गया।[९१] अप्रेल, १७८९ में जब सिंधिया की कुछ प्लॅटूनों ने विद्रोह किया तो विजयसिंह ने दिल्ली-स्थित अपने प्रतिनिधियों को आदेश दिया कि उन सैनिकों को राठौड़ सेना में भर्ती कर ले।[९२] १७९० के प्रारम्भ में अंग्रेजों से सैनिक सहायता एवं सिंधिया को उत्तरी भारत से निकालने हेतु वार्ता की गयी।[९३]

तीन वर्ष तक विजयसिंह प्रयास करता रहा कि उसके सिंधिया-विरोधी मोर्चे में उत्तरी भारत की सभी शक्तियाँ सम्मिलित हो जाएँ परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगी। तुकोजी और महादजी में मतभेद अवश्य थे, परन्तु जिस प्रकार के पत्र राठौड़ शासक लिख रहा था और जिन शक्तियों से वह सम्बन्ध स्थापित करना चाहता था उसे देखते हुए तुकोजी शंकित था। अजमेर पर राठौड़ी अधिकार से भी वह प्रसन्न नहीं था।[९४] उसने विजयसिंह को सूचित किया कि उत्तरी भारत में वह पेशवा का प्रतिनिधि रहे है अत विजयसिंह जो कार्यवाही कर रहा है वह उसे पसन्द नहीं है।[९५] दिसम्बर १७८८ से मार्च १७८९ तक तैमूर शाह भारत में रहा पर विजयसिंह ने उसकी उपस्थिति का कोई लाभ नहीं उठाया। अप्रेल १७८९ में अफगानिस्तान में उसके भाई के विद्रोही हो जाने पर तैमूर काबुल की ओर चला गया।[९६] विजयसिंह द्वारा तैमूर को आमन्त्रण देने से बादशाह और सिक्ख नेता अप्रसन्न हो गये क्योंकि इससे पंजाब और उत्तरी भारत में उनकी स्थिति को खतरा था।[९७] उन्होंने विजयसिंह को लिखा कि वह तैमूर शाह को पुनः आमन्त्रित न करे तो वे उसकी भरपूर सहायता करेंगे।[९८] पर विजयसिंह ने पुनः आमन्त्रण दे दिया।[९९] परन्तु न तो तैमूर से कोई उत्तर आया न सिंध में उसके प्रतिनिधि शाहनवाजखां ने कोई सूचना भेजी।[१००] १७८९ के प्रारम्भ में सिंधिया की स्थिति में सुधार हो गया।[१०१] पेशवा ने उसे उत्तरी भारत में मराठों का नेतृत्व पुनः दे दिया।[१०२] अब सिंधिया राठौड़ शक्ति को कुचलने की तैयारी करने लगा।[१०३] जुलाई १७८९ में विजयसिंह ने होलकर के मार्फत जब समझौता करना चाहा तो सिंधिया ने कोई सुनवाई नहीं की।[१०४] मार्च १७९० में अंग्रेजों ने राठौड़ों की सहायता के लिए अपनी अनिच्छा प्रकट की क्योंकि वे उस समय टीपू सुल्तान के विरुद्ध युद्ध में लगे हुए थे।[१०५]

ज्योंही सिंधिया की स्थिति सुधरी उसने घोषणा की कि वर्षा के बाद वह मारवाड़ पर आक्रमण करेगा।[१०६] परन्तु यह आक्रमण नहीं हुआ। अगस्त १७८९ तक वह बीमार रहा।[१०७] फिर अचानक तुकोजी होल्कर व अली बहादुर से उसके मतभेद इतने उग्र हो गये कि गृह युद्ध की संभावना दीखने लगी। परन्तु शीघ्र ही उनमें

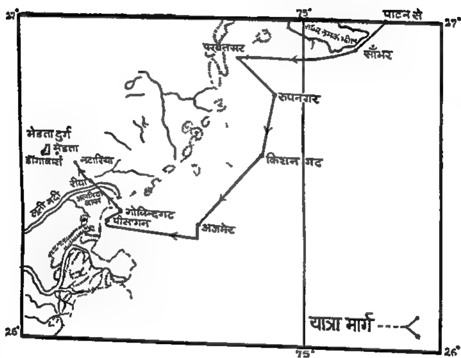
समझौता हो गया। राणोजा को उसने पुनः अपने पद पर नियुक्त किया। इसी बीच उसके फ्रांसीसी सेनापति डी बोईन ने अपने तोपखाने को सुसंगठित कर दिया।[१०८] मई १७९० में उसने विजयसिंह से अजमेर पुन. प्राप्त करने का सैनिक अभियान किया।[१०९] जोधपुर-शासक १७८९ से ही इस आक्रमण को रोकने के लिए पूर्ण तैयारी कर रहा था। राठौड़-कछवाह आपसी समझौते की पुनरावृत्ति की गयी।[११०] १७९० के प्रारम्भ में जब इस्माइल बेग ने महादजी के विरुद्ध विद्रोह किया तो उसे अपनी ओर मिला लिया।[१११] जीवाजी बल्लाल और कर्नल डी-बोईन की फौज को जो कि रेवाड़ी होकर जयपुर और मारवाड की ओर प्रस्थान कर रही थी, पाटन[११२] के पास राठौड-कछवाह-मुगलों की संयुक्त सेना ने रोक दिया जिसका नेतृत्व गंगाराम भंडारी और इस्माइल बेग कर रहे थे।[११३] २० जून १७९० को एक भयंकर युद्ध हुआ। यद्यपि राठौड बड़ी वीरता से लडे परन्तु कछवाहों की निष्क्रियता और बोईन के तोपखाने की पहली मार से इस्माइल बेग के भाग जाने के कारण वे हार गये। इस युद्ध में ३,००० राठौड सैनिक मारे गये या घायल हुए।[११४]

(४) सिंधिया का मारवाड़ पर आक्रमण (जून-सितम्बर १७९०)

इस युद्ध के बाद विजयसिंह ने एक बार पुनः सिंधिया से रानजी और आबा चिटनिस की मध्यस्थता से शांति-वार्ता करने का प्रयास किया।[११५] परन्तु महादजी ने इस वार्ता की तरफ ध्यान नहीं दिया। वह न सिर्फ अजमेर का किला ही लेना चाहता था बल्कि जोधपुर पर अधिकार कर विजयसिंह को राजगद्दी से हटाना चाहता था।[११६] पाटन में कुछ दिन ठहर कर जीवाजी और बोईन के नेतृत्व में मराठी सेना ने मारवाड की ओर कूच किया। मार्ग में साभर, परबतसर, रूपनगर पर अधिकार करती हुई यह सेना अजमेर पहुँची, जहाँ उसने २१ अगस्त १७९० को घेरा डाल दिया।[११७]

इन दिनों विजयसिंह बीमार था।[११८] फिर भी उसने युद्ध के लिए सेना संगठित की। जालोर, देसूरी और सिरोही से सेनाओं को शीघ्र आने को लिखा।[११९] भारी तोपें ठीक करायी गयीं जिससे वे युद्ध में काम में लायी जा सकें।[१२०] मारवाड में अनिवार्य सैनिक भर्ती लागू कर दी गयी।[१२१] बीकानेर की सेनाएँ राठौडों से डीडवाना में आ मिलीं।[१२२] जयपुर-शासक ने पूर्ण सहायता का वचन दिया।[१२३] इस्माइल बेग सहायता हेतु सेना एकत्र करने लगा।[१२४] राजधानी की सुरक्षा के लिए फौज रखी गयी।[१२५] ३७ हजार सैनिक भीमराज बख्शी के नेतृत्व में मेडता भेजे गये,[१२६] जिससे कि अजमेर में घिरे हुए राठौड सैनिकों को सहायता दी जा सके।[१२७]

सिंधिया ने होल्कर और अलीबहादुर से एक-एक हजार अश्वारोही प्राप्त किये।[१२८] होल्कर ने इस शर्त पर सैनिक दिये कि विजयसिंह पर विजय के बाद



चित्र 6, डी० बोइन का यात्रा मार्ग ।

लाभ का समान बटवारा किया जाएगा ।[129] सिंधिया ने जयपुर की ओर से आने वाली कछवाहा फौज को राठौड़ो से न मिलने देने के लिए एक फौज जयपुर की ओर रवाना की।[130] इसके उपरान्त जयपुर की सेना राठौड़ों से मेड़ता में जा मिली। इस्माइल बेग भी इस सेना में आ मिला। इस पर मराठी सेना अजमेर से मेड़ता की ओर चली। गोपाल भाऊ के नेतृत्व में मुख्य मराठी सेना ने ४ सितम्बर को अजमेर से प्रस्थान कर ७ सितम्बर को मेड़ता से ४ मील पूर्व की ओर नटारिया गाव में डेरा डाल दिया। अजमेर के किले पर अधिकार करने हेतु २,००० मराठे रखे गये। डी बोईन ने दूसरा मार्ग अपनाया। वह अजमेर के दक्षिण की ओर चला, फिर पश्चिम की ओर; फिर उत्तर की ओर पिसनगाव, गोविन्दगढ, आलनियावास, जहाँ लूनी नदी के रेतीले भाग से अपने तोपखाने को धीरे-धीरे पार करके रीया होता हुआ ६ सितम्बर को नटारिया पहुँचा। डी बोईन के आते ही गोपाल भाऊ राठौड़ो पर, जो ३ मील दूर डांगावास में ठहरे थे, आक्रमण करना चाहता था परन्तु फ्रांसीसी सेनापति ने एक दिन का अवकाश चाहा, जिससे कि वह तोपखाने का पर्याप्त लाभ उठा सके।[131]

(५) मेड़ता का युद्ध (द्वितीय) (१० सितम्बर १७९०)

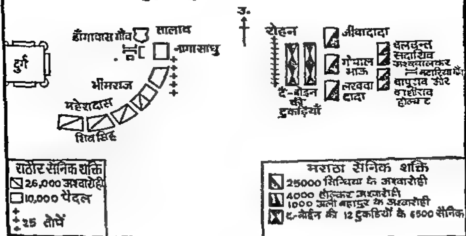
मेड़ता के पास डांगावास पर राठौड़ सेना की रण-व्यवस्था बनी हुई थी। उससे ३ मील दूर नटारिया में मराठी सेना का पड़ाव था। राठौड़ सेना में २६ हजार अश्वारोही, १० हजार पैदल और पुरानी २५ तोपें थी। मेड़ता के दक्षिण की ओर डांगावास के पश्चिमी भाग में अर्ध चन्द्राकार में सैनिक पंक्तियाँ बन गयी थीं। डांगावास के तालाब के पास पश्चिम की ओर नागा पंक्ति थी, चन्द्राकार के दाहिनी ओर मेड़ता के दक्षिण में महेशदास कूंपावत और शिवसिंह चम्पावत के नेतृत्व में राठौड़ अश्वारोही थे। इन दोनो के बीच में बख्शी भीमराज अपनी पैदल और अश्वारोही पंक्ति का नेतृत्व कर रहा था। सेना के सामने कुछ पश्चिम की ओर, मराठी सेना के समक्ष, तोपखाना लगा दिया गया था। सिंधिया की सेना में स्वयं उसके २५ हजार अश्वारोही, ४ हजार होल्कर के और एक हजार अली बहादुर के अश्वारोही थे। इसके अलावा डी बोईन की सेना के १२ बटालियन और ५० तोपें थीं। तोपो के पीछे, कुछ दूरी पर मराठा अश्वारोहियो की पंक्ति इस प्रकार बना दी गयी कि बाईं बाजू में लखमण अनंतलाड (लखबादादा), मध्य में गोपाल भाऊ और दाईं ओर जीवाजी बल्लाल थे ... पंक्ति के एक मील पीछे की ओर होल्कर के अश्वारोही थे जिनका नेतृत्व बापूराव और काशीराव कर रहे थे, इसके साथ ही अली बहादुर के दीवान बलवन्त सदाशिव आसवलकर के नेतृत्व में अश्वारोही पंक्ति लगी हुई थी।[132]

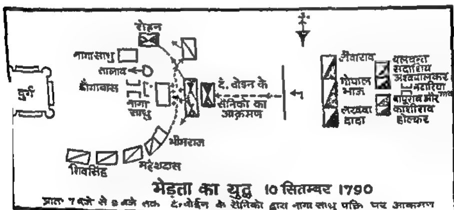
कुछ राठौड़ सामंत तत्काल युद्ध चाहते थे परन्तु भीमराज ने सरकारी आदेशो के ...र उस समय तक युद्ध का आह्वान नहीं किया जब तक मिर्जा इस्माइल उनसे

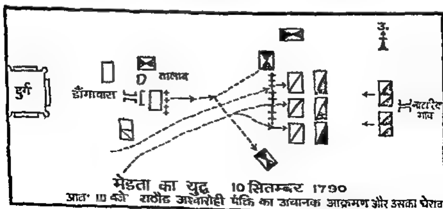
आकर नहीं मिल गया। मराठो ने राठोडो को पहल करने का अवसर नहीं दिया। १० सितम्बर को प्रात: जब सूर्य उदय ही नहीं हुआ था, डी-बोईन के तोपखाने ने आगे बढ़कर राठोड पंक्ति की बाई ओर नागा साधुओ पर गोलो की वर्षा कर दी। इस पंक्ति मे हड़बड़ मच गयी। एक घटे के भीतर-भीतर नागा सैनिक भाग गये।

राठोडी तोपखाने पर मराठो का अधिकार हो गया। मध्य मे भीमराज की पंक्ति मे अनुशासन बिगड़ गया। सैनिक भागने लगे। भीमराज भी भाग गया पर राठौड सामन्त घबराये नही। उन्होने डटकर मुकाबला करने का दृढ निश्चय किया। इसी बीच डी-बोईन की सेना की दाईं पंक्ति का सेनापति कॅप्टन रोहन, बिना बोईन के आदेशो से, डॉगावास के तालाब की ओर बढा। उसके और मुख्य सेना के बीच काफी दुराव हो गया। इसका लाभ उठाकर राठौड सेनापति ने उसे घेर लिया। बडी मुश्किल से रोहन बचकर निकला यद्यपि वह घायल हो गया था। ज्योही सूर्य का प्रकाश बढा, महेशदास और शिवसिंह ने अपने ४ हजार अश्वारोहियो सहित मराठो पर आक्रमण कर दिया। डी-बोईन की तोपो की मार की परवाह न करते हुए वे गोपाल भाऊ और जीवादादा की पंक्तियो पर टूट पड़े तथा उन्हे पीछे हटने के लिए बाध्य किया। डी-बोईन ने परिस्थितियो मे परिवर्तन पाकर अपनी तोपो का मुँह दूसरी ओर बदल दिया और राठौड अश्वारोहियो को चतुर्भुजी घेरे मे लेकर आग उगलने लगा। होलकर और अलीबहादुर के अश्वारोही भी गोपाल भाऊ और जीवादादा की रक्षा के लिए आ गये। दो घटो तक युद्ध होता रहा। शीघ्र ही राठोडी जोश समाप्त हो गया। यद्यपि प्रातः १० बजे युद्ध समाप्त हुआ पर मराठो को नगर पर अधिकार करने मे पांच घटे लग गये। इसके बाद किले का घेरा डाला गया। मारवाडी सेनापति गगाराम भडारी ४ दिन तक दो हजार सैनिको सहित किले की रक्षा करता रहा, परन्तु मराठी आक्रमण के समक्ष वह टिक न सका। किले पर भी मराठो का अधिकार हो गया। इस युद्ध मे मराठो की सेना, व डी बोईन के ६०० पैदल सैनिक व सिंधिया के ५० सैनिक मारे गये तथा २५० घायल हुए। राठोडी सेना के २००० मरे एव ३००० सैनिक हताहत हुए। भीमराज अपने दो हजार अश्वारोहियो के साथ नागोर भाग गया था।[133]

मेडता के युद्ध मे राठोड शक्ति की हार के कई कारण थे। राठोड सेना एक समुक्त सेना के रूप में नही लड रही थी, न इनका कोई एक सेनापति ही था। पृथक्-पृथक् सेनापतियो के नेतृत्व मे एकत्र सेना मे सगठन नही बन सका। उनका तोपखाना अत्यन्त कमजोर था। नागा पंक्ति न सिर्फ अप्रशिक्षित थी बल्कि अनुशासनहीन भी थी। सम्पूर्ण सेना मे पलायन भावना थी और फुर्ती की कमी थी। यद्यपि उनका मनोबल ऊँचा था और सामन्ती पंक्ति शूरवीर थी, फिर भी वे मराठो से जमकर लड़े जाने वाले युद्ध में कमजोर साबित हुए। दूसरी ओर मराठी सेना का सचालन एव व्यवस्था, उच्च कोटि की थी। डी-बोईन भीमराज की अपेक्षा योग्य सेनापति था।







चित्र 7–8 व 9 मेड़ता का द्वितीय युद्ध विभिन्न चरण

सिंधिया के सेनापति एक दूसरे से पूर्ण सहयोग कर रहे थे। होल्कर की सेना आवश्यकता पड़ने पर काम में लाने हेतु सुरक्षित थी। इस प्रकार डी-बोईन की पैदल सेना, तोपखाना और मराठा अश्वारोहियों के बुद्धिमत्तापूर्ण संगठन ने उन्हें युद्ध में सफल बना दिया। राठोडों की प्रारम्भिक गलती उस समय हुई जब मराठों के दो योग्य सेनापतियों (जीवाजी और डी-बोईन) को ६ सितम्बर को एक होने दिया गया। यदि डी-बोईन के आने के पहले ही वे मराठी सेना पर टूट पड़ते और इस तरह दोनों भागों से पृथक्-पृथक् लड़ते, तो हार विजय में बदल सकती थी। जब डी-बोईन आलनियावास के पास लूनी नदी पार कर रहा था तो उसकी तोपें नदी के रेतीले भाग में फँस गयी। यदि उस समय राठोडों की घुमक्कड़ पंक्ति उस पर आक्रमण कर देती तो फ्रांसीसी सेनापति का तोपखाना बेकार हो जाता। राठौड़ों से उस समय पुन गलती हो गयी जब वे डी-बोईन की थकान से चूर सेना पर यकायक आक्रमण नही कर सके। इसका लाभ मराठों ने उठाया और आक्रमण में पहल की। बोईन ने तोपखाने का लाभदायक प्रयोग कर चार घंटे के भीतर-भीतर राठोडों पर विजय प्राप्त की।

(ख) साँभर की संधि (५ जनवरी १७९१) और उसके परिणाम

(१) शान्ति के लिए प्रयास (सितम्बर १७९० जनवरी १७९१)

मेड़ता में राठोडों की हार से जोधपुर के लोगों का मनोबल गिर गया। उन्हें यह सम्भावना प्रतीत होने लगी कि मराठी सेना जोधपुर पर आक्रमण करेगी अत वे भागने लगे।[134] विजयसिंह भी जैसलमेर या जालौर जाने की तैयारियाँ करने लगा।[135] युद्ध के बाद जीवाजी के नेतृत्व में एक मराठी सेना जोधपुर की ओर बढ़ी पर वह खवासपुर आकर रुक गयी।[136] इस पर विजयसिंह ने ठाकुर सवाईसिंह, फतेहसिंह और पासवान गुलाबराय की सलाह पर समझौता करने का निश्चय किया।[137]

महादजी के पास शांति प्रस्ताव लेकर व्यास नवलराम को भेजने का निश्चय किया गया। १४ सितम्बर १७९० को महाराजा के प्रस्ताव को लेकर व्यास ने जोधपुर से प्रस्थान किया।[138] दूसरे दिन १५ सितम्बर को मुंहणोत गोपालदास, वल्ला सुखराम, पण्डित मथुरानाथ और जोधपुर-स्थित पेशवा प्रतिनिधि सहित कृष्णाजी जगन्नाथ का एक प्रतिनिधि मण्डल जीवाजी और गोपाल भाऊ के पास मेड़ता भेजा गया।[139] महादजी ने नवलराय से मिलने से इन्कार कर दिया।[140] विजयसिंह ने इस पर त्र्यम्बकराव और रानेया को १ अक्टूबर १७९० को पत्र लिखे कि वे मध्यस्थता कर नवलराय के साथ भेजे गये प्रस्तावों पर सिंधिया से विचार करने की प्रार्थना करें।[141] पेशवा की ओर से भी महादजी पर दबाव पड़ने लगा कि वह राठौड़ शासक के साथ इन शर्तों पर कि बकाया राशि का भुगतान किया जाए, अजमेर का किला लौटाया जाए और युद्ध की क्षतिपूर्ति की जाए, समझौता कर

ले।[142] इस पर महादजी ने राठौड शासक को अपनी शर्तें प्रेषित की। इसके अनुसार—[143]

१. राठौड शासक युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप मे दो करोड पैंतीस लाख रुपये देगा जिसमे से एक करोड नकद दिये जाएँगे।
२. मारवाड-गोडवाड का गत वर्षों का बकाया वार्षिक कर का भुगतान नकद किया जाएगा।
३. अजमेर लौटाया जाए तथा पिछले तीन वर्षों का जबकि अजमेर राठौडो के अधीन था, कर चुकाया जाए।
४. रामसिंह के अधीन मारवाड के उस क्षेत्र का, जिस पर विजयसिंह ने अधिकार कर रखा है, मराठो को जो वार्षिक कर देय है, उसका आधा हिस्सा दिया जाए।
५. मारवाड के कुछ जिले, लगातार धन-राशि की अदायगी के जमानत के रूप मे सिंधिया को दिये जाएँ। राठौड शासक के लिए ये शर्तें अत्यन्त कठोर थी। व्यास नवलराय ने अपने शासक की ओर से निम्न शर्तों को ही मान्य समझा।[144]
   (अ) अजमेर लौटा दिया जाएगा तथा पिछले तीन वर्षों का कर तीन लाख प्रति वर्ष के हिसाब से नौ लाख रुपया चुका दिया जाएगा।
   (ब) मारवाड एव गोडवाड के बकाया कर के रुपये १५ लाख ६० हजार नकद चुका दिये जाएँगे।
   (स) साभर व नावाँ तथा एक अन्य जिले की आय युद्ध की क्षति पूर्ति के लिए सिंधिया को दे दी जाएगी।

राठौड प्रतिनिधियो ने रामसिंह की बकाया धनराशि और एक करोड रुपया नकद देने की शर्त को अति कठोर बतलाया।[145] सिंधिया अडिग रहा। समझौते की वार्ता मे रुकावटें आने लगी। विजयसिंह को शका हुई कि सिंधिया जोधपुर पर आक्रमण करेगा।[146] अत वह अपनी तैयारियाँ भी साथ-साथ करने लगा। मेडता-युद्ध के दूसरे दिन इस्माइलखाँ, राठौड सेनापति भीमराज से नागौर मे मिला।[147] विजयसिंह ने उसे और भीमराज को सेना सहित बुला भेजा।[148] मिर्जा इस्माइल १६ दिसम्बर और भीमराज १८ दिसम्बर को जोधपुर पहुँचे।[149]

राठौड युद्ध की तैयारियाँ कर रहे है, यह जानकर सिंधिया ने मारवाड की ओर स्वय प्रस्थान किया।[150] दिसम्बर के तृतीय सप्ताह मे वह सांभर पहुँचा,[151] जहा उसे विजयसिंह की ओर से दूसरा प्रतिनिधि मण्डल मिला जिसमे बुद्धसिंह, कल्याणदास और भवानीदास थे।[152] इन प्रतिनिधियो ने सिंधिया के दीवान आबा चिटणीस की भी सहायता ली।[153] परिणामस्वरूप ५ जनवरी १७९१ को महादजी ने सधि पर

स्ताक्षर किये।[१४४] राठौड़ प्रतिनिधि, सिंधिया के प्रतिनिधि गडवा फकीर जी के ाथ १९ जनवरी को जोधपुर लौट आये।[१४५] विजयसिंह ने इस समझौते को वीकार किया। इसकी स्वीकृति की सूचना २४ जनवरी को महादजी के पास भजवा दी गयी।[१४६]

(२) संधि की शर्तें[१४७]

(अ) क्षतिपूर्ति

१. युद्ध की क्षतिपूर्ति, नजराना, दरबार-खर्च और खाला सवारी के लिए सिंधिया को साठ लाख रुपये दिये जाएंगे।
२. इसमें से १५,००,००० नकद दिये जाएँगे; आठ लाख ४ फरवरी १७९१ को और बाकी ४ अप्रेल १७९१ तक, इसके अलावा ३ लाख रुपयों का भरना (मिश्रित वस्तुएँ पशु-जवाहरात आदि) दिया जाएगा।
३. १५,००,००० रुपये गोपालराव रघुनाथराव को सेना में वितरित करने के लिए दिये जाएँगे। इसके अलावा उसमें तीन लाख का भरना दिया जाएगा।
४. दो साल के भीतर समान किश्तों म चार लाख के मूल्य का भरना दिया जाएगा।
५ नावा, मारोठ और परवतसर का वार्षिक कर बीस लाख रुपया चार साल में दिया जाएगा। इसकी पहली किश्त दो लाख रुपयों की होगी और उसका भुगतान १६ जून १७९१ तक किया जाएगा।
६. यदि कर की बकाया राशि एव युद्ध-क्षतिपूर्ति की रकम का भुगतान लगातार किया गया तो महादजी की ओर से दो लाख रुपयों की छूट दी जाएगी।

(आ) प्रादेशिक विभाजन और वार्षिक कर

१ विजयसिंह, मारवाड व गोडवाड का वार्षिक कर १,५०,००० रुपये और ३०,००० रु० प्रति वर्ष लगातार देता रहेगा।
२. अजमेर सिन्धिया को लौटा दिया जाएगा।
३ साभर (झील सहित), मेरवा, मसूदा और भिनाय के २९ गाँव सिन्धिया को दिये जाएंगे।

(इ) अन्य

१. उपर्युक्त क्षेत्रों में विजयसिंह हस्तक्षेप नही करेगा तथा कर एकत्रित करने वाले मराठा अधिकारियों के लिए अड़चन पैदा नहीं की जाएगी।
२ राठौड़ शासक किशनगढ़ के शासक से युद्ध नही करेगा।
३ यदि मराठा सेना मारवाड में प्रवेश करे और इससे खेती को हानि हो तो उसकी क्षतिपूर्ति की जाएगी।

४ सन्धि की शर्तों की पूर्ति के लिए यदि मराठा सेना मारवाड मे प्रवेश करे और इससे खेती को हानि हो तो उसकी क्षतिपूर्ति नही दी जाएगी।
५. यदि मराठा प्रतिनिधि वार्षिक कर से अधिक धनराशि उपर्युक्त क्षेत्रो से एकत्र करेंगे तो वह लौटा दी जाएगी।
६. सिन्धिया विजयसिंह के विरुद्ध उसके पुत्र जालमसिंह की सहायता नही करेगा।
७ राठौड व सिन्धिया एक दूसरे के शत्रु को अपने-अपने राज्य मे शरण नही देंगे।

दिनांक २० अगस्त १७९२ के एक पत्र के अनुसार उपर्युक्त सधि की शर्तों का पालन करने हेतु विजयसिंह को जोधपुर के विशिष्ट व्यक्तियो को जामिन के रूप मे सिन्धिया के पास भेजना पडा।[१५८]

(३) सधि का परिणाम

सधि की शर्तों को शीघ्रातिशीघ्र क्रियान्वित किया गया। एक माह के भीतर ही ४ लाख रुपयो की प्रथम किश्त सिन्धिया को भेज दी गयी।[१५९] अजमेर के राठौड राज्यपाल धनराज को आदेश दिये गये कि वह किला सिन्धिया को सौप दे। सिन्धिया ने मार्च १७९१ को उस पर अधिकार कर लिया।[१६०] जामिन के रूप मे शासन के उच्च अधिकारी सिन्धिया के आगरा कैम्प मे भेजे गये।[१६१] साभर और अन्य स्थान शीघ्र मराठो को दे दिये गये।[१६२] महादजी ने मारवाड से इस्माइल बेग को निकालने के लिए विजयसिंह को लिखा। अत मिर्जा को शीघ्र ही मारवाड छोडने के आदेश दे दिये गये।[१६३] जब जालमसिंह ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया, तो महादजी ने राठौड शासक को सहायता दी।[१६४] मई १७९२ मे होल्कर और जयपुर-शासक ने महादजी के विरुद्ध विजयसिंह से सहायता मांगी तो उसने इन्कार कर दिया।[१६५] राठौड सिन्धिया मैत्री बनी रही। जनवरी १७९३ के एक पत्र के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि उसने (महाराजा ने) मराठों को लगातार वार्षिक कर दिया था।[१६६] छ माह बाद ७ जुलाई, १७९३ को उसकी मृत्यु हो गयी।[१६७]

मेडता की हार और उसके परिणामस्वरूप साभर की सधि विजयसिंह के लिए अत्यन्त अपमानजनक थी। राजस्थान के शासको मे उसकी प्रतिष्ठा घट गयी एव उसके परिवार का प्रभाव लुप्त हो गया। मारवाड के कई उपजाऊ क्षेत्र मराठो ने ले लिये जिससे राज्य की आर्थिक स्थिति मे अव्यवस्था पैदा हुई। परिणामस्वरूप राजधानी मे राजनीति व अराजकता फैलने लगी और सामन्ती विद्रोह होने लगे। जब से विजयसिंह गद्दी पर बैठा (१७५२) तब से ही सिन्धिया से सघर्ष चलता रहा परन्तु न तो उसके राज्य का विस्तार हुआ और न ही सिन्धिया का प्रभाव कम हुआ। उसकी हार के बाद तो सिन्धिया की शक्ति इतनी बढ गयी कि, फरवरी १७९१ मे जयपुर-शासक[१६८] ने तथा एक माह बाद उदयपुर के शासक ने महादजी के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।[१६९]

● ● ●

संदर्भ

महादजी का विजयसिंह को पत्र, माघ वदी ५, वि० स० १८३८/४ जनवरी १७८२ (पो० फो० ६ पत्र न० ४१ जोध०), वि०स० १८२९-१८३४/१७७२-१७७७ के रु० ३,६०,००० भेजे गये (हथवही न० २, पृ० १२४-१२५ जोध०), वि० स० १८३५-१८३६/१७७८-१७८२ के रुपये ४,३६,००० भेजे गये। (महादजी का विजयसिंह को पत्र, चैत्र वदी ४, वि०स० १८४२/२८ फरवरी १७८५), उपर्युक्त, चैत्र सुदी ७, वि०स० १८४२/१७ मार्च १७८५, उपर्युक्त वैशाख सुदी ८, वि० स० १८४२/१६ मई १७८५ (पो० फो० न० ६, पत्र न० ५०, ५१, ५२ क्रमानुसार जोध०)

२. महादजी का विजयसिंह को पत्र, श्रावण सुदी ६, वि०स० १८३७/७ जुलाई १७८० (पो० फो० न० ६, पत्र न० ३८ जोध०)
   विजयसिंह का महादजी का पत्र, भाद्रपद वदी ३, वि०स० १८४७/१८ अगस्त १७८० (अ० व० न० ४, पृ० ३९-जोध०)

३ नवम्बर १७८१ म गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज न विजयसिंह को सूचित किया कि वह अपने एजेण्ट एण्डरसन को दोनो क सामान्य शत्रुओं के विरुद्ध आपसी समझौते हेतु जोधपुर भेज रहा है। गवर्नर जनरल न एण्डरसन को स्पष्ट निर्देश दिय कि जोधपुर राजा की मांगो और इच्छाओं के प्रति ध्यान देकर उन्ह पूरा करे। उसन आशा प्रकट की कि विजयसिंह अंग्रेजी सरकार को मदद भेजगा। (सी० पी० सी० ग्रन्थ (६) २७५, २८०),
   सिन्धिया इन दिनों अंग्रेजो से युद्ध म लिप्त था।

४. विजयसिंह का महादजी को पत्र, चैत्र वदी ७ वि० स० १८४०/२८ मार्च १७८४ व पत्र ज्येष्ठ सुदी १० वि० स० १८४०, २९ मई १७८४ (अ०व०न० ४, पृ० ४१ व ४२ क्रमानुसार जोध०)

५ एच० पी० ४०६, दिरनी यथोन ग्रन्थ (१), १३३

६ सी० पी० सी० (४), १२७७, विजयसिंह का महादजी को पत्र, कार्तिक सुदी ११, वि० स० १८३१। १४ नवम्बर १७७४, विजयसिंह का तुकोजी होल्कर को पत्र, मार्गशीर्ष वदी ६, वि० स० १८३१/२४ नवम्बर १७७४ (अ० व० न० ४, पृ० ४ व ५ जोध०)

७. सवाईराम का जयपुर के भाट जगनदत्त को पत्र, चैत्र सुदी ८, वि० स० १८३८/२२ मार्च १७८२ (अ० व० न० ४ पृ० १६२, जोध०)

८-९. उपर्युक्त

१०. जोधपुर येथील २; सी० पी० सी० (७), १५५

११. जोधपुर-येथील २; एच० पी०, ४११

१२. महेश दरबार (२), १४४, १७८५ मे सवाई राजा ने सिंधिया के यहाँ से अपने वकील को बुला लिया था । विजयसिंह ने भी ऐसा ही किया । जब जनवरी १७८६ मे सिंधिया ने जयपुर पर आक्रमण किया तो राठौड़-कछवाहा उनका सामना करने की तैयारी मे नही थे, अतः प्रतापसिंह ने ६० लाख रुपये देन का वादा कर उसे जयपुर से प्रस्थान करा दिया । ज्योंही प्रथम किश्त के रुपये ग्यारह लाख महादजी को प्राप्त हुए, उसने ४ जून १७८६ को जयपुर से प्रस्थान कर दिया ।

१३ पी० आर० सी० (१) ४६

१४. *पी० आर० सी० (१) ५१*

१५. उपर्युक्त ११६

१६. उपर्युक्त ७१, ८२

१७ दिल्ली येथील (१) १७५; पी० आर सी० (१) ८६, १७५

१८. प्रतापसिंह से विजयसिंह को खरीता, पौष सुदी १२, वि० स० १८४३/१ जनवरी १७८७ *(पो = फो० न० ६, खरीता न० २६, जोध०)*; जोधपुर येथील (पूरक) (१)

१९. प्रतापसिंह से विजयसिंह को खरीता, फाल्गुन बदी ३०, वि० स० १८४३/ १८ फरवरी १७८७ (पो० फो० न० ६ खरीता न० ३० जोध०)

२०. मुगल बादशाह शाहआलम (२) से स्वीकृति प्राप्त कर विजयसिंह ने नये सिक्के १७८१ मे प्रचलित किये । इन सिक्को को 'बाई सुन्दा' भी कहते हैं । ये चाँदी के सिक्के थे । (डब्ल्यु-डब्ल्यु वेब-द करेन्सीज ऑफ हिन्दू स्टेट्स आफ राजपूताना, पृ० ४३)

२१ मारवाड री ख्यात (३) पृ० ५३

२२ ज्ञानमल का निर्भयराम को पत्र, फाल्गुन सुदी ४, वि० स० १८४२ / ४ मार्च १७८६ (अ० ब० न० ४ पृ० २७४ जोध०)

२३. *मारवाड री ख्यात (३), पृ० ११२-११६*

२४. एच० पी० ४११

२५ अम्बाजी इंग्ले का विजयसिंह को पत्र, फाल्गुन बदी ६, वि० स० १८४२ / २२ फरवरी १७८६ (पो० फो० न० २ ब, फाइल न० १, पत्र ६ जोध०)

२६. सी० पी० सी० (७) ५६४, ५६५

२७ पी० आर० सी० (१) ४६
२८ प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, फाल्गुन बदी ३०, वि० स० १८४३/ १८ फरवरी १७८७ (पा० फो० न० ६, खरीता न ३० जोध०)
२६. जोधपुर येथील (पूरक) (१)
३०-३१-३२ उपर्युक्त
३३ दिल्ली येथील (१), १६६; पी० आर० सी० (१) ५८, ७१, ८०, ८२
३४ दिल्ली येथील (१), २१० २११, २२०
३५. पी० आर० सी० (१) १०२, १०३, १०४; जयपुर का प्रतिनिधि बातचीत व समझौता करने सिंधिया के कैम्प मे भेजा गया। कई दिनों तक वार्ताएँ चली। अन्तिम वार्ता १४ अप्रैल को हुई। वार्ता इस बात पर टूट गयी कि कछवाहा शासक १४ लाख रुपये देने को तो तैयार था पर उसने सिंधिया से कहा कि वह जयपुर के खुशाली राम बोहरा को, जो उसके कब्जे मे है, वापस जयपुर राज्य को सौंप दे। सिंधिया ने इसे अस्वीकार किया।
३६ विलियम कर्क पेट्रिक का गवर्नर जनरल को पत्र, ३ मई १७८७, एफ० एस० १७, १७८७, न० ३, प्रोसिडिंग्ज पृ० २८८८, २८८६
३७ पी० आर० सी० (१) ११८-११६
३८ विलियम कर्क पेट्रिक का गवर्नर जनरल को पत्र, ४ जुलाई १७८७, एफ० एस० १७ जुलाई १७८७, न० २, प्रोसिडिंग्ज, पृ० ३८३६; पी० आर० सी० (१) १२४
३६ पी० आर० सी० (१) १२७
४० पी० आर० सी० (१) ११४
४१ प्रतापसिंह का विजयसिंह को खराता, वैसाख सुदी १०, वि० स० १८४४। २७ अप्रैल १७८७ (पो० फो० ६ खरीता न० ३८ जोध०)
४२ प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, ज्येष्ठ वदी ३ वि० स० १८४४ / ५ मई १७८७ (पो० फो० ६, खरीता न० ४० जोध०)
४३ महेश दरबार (२), १४६
४४ प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, ज्येष्ठ वदी ६, वि स० १८४४ / ११ मई १७८७ (पो० फो० ६, खरीता न० ४१ जोध०)
४५ पी० आर० सी० (१) ११४
४६ विलियम कर्क पेट्रिक का गवर्नर जनरल को पत्र, १ जून १७८७, एफ० एस० ११ जून १७८७ न० ५, मारवाड री ख्यात (३), पृ० ५७ ६०
४७ उपर्युक्त पत्र, २८ मई १७८७, एफ० एस० ११ जून १७८७ न० ३; पी० आर० सी० (१) ११५; सी० पी० सी० (७); १४४२

४८. जोधपुर येथील (पूरक) (१), दिल्ली येथील (१), २२०-२२१

४९. विजयसिंह का तुकोजी होलकर को पत्र, पौष वदी १४, वि० स० १८४४ / ७ जनवरी १७८८ (ग्र० ब० ४, पृ० ६ जोध०)

५० एच० पी ५०० (इसके अनुसार संख्या ५०,००० थी), विलियम कर्क पेट्रिक का गवर्नर जनरल को पत्र, ७ जुलाई १७८७, एफ० एस० २० जुलाई १७८७ न० ८, पी० आर० सी० (१) १२५

५१. एच० पी० ५०२

५२. ज्ञानमल मुंहणोत से जालिमसिंह को पत्र, भाद्रपद वदी १२, वि० स० १८४४ / ८ सितम्बर १७८७ (ग्र० ब० न० ४, पृ० २२१ जोध०)

५३. सी० पी० सी० (ग्रन्थ) (७) १४४२, १५५६

५४. विलियम कर्क पेट्रिक का गवर्नर जनरल को पत्र, ७ मई १७८७, एफ० एस० १७ मई १७८७, स० ४

५५. उपर्युक्त को पत्र, ३ मई / ७ मई १७८७, एफ० एस० १७ मई १७८७ संख्या ३ व ४, पी० आर० सी० (१) १२२, १२४

५६ उपर्युक्त पत्र, ४ जुलाई १७८७, एफ० एस० १६ जुलाई १७८७ संख्या २. पी० आर० सी० (१), १२७

५७ पी० आर० सी० (१) १२७

५८. हार्पर का गवर्नर जनरल को पत्र, २ अगस्त १७८७, एफ० एस० २८ अगस्त १७८७, स० १४, प्रोसीडिंग्ज पृ० ४२३९, युद्ध के ठीक पूर्व सिंधिया की सेना के १०० रुहेल और २०० नजीब सैनिक राजपूतों से मिल गये।

५९. प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, श्रावण सुदी २, १८४४ / १६ जुलाई १७८७ (पो० फो० न० ६, खरीता न० ४५ जोध०)

६० पी० आर० सी० (१), १३३, १३५, सी० पी० सी० (७), १५४४

६१. पी० आर० सी० (१), १३१

६२. उपर्युक्त, हार्पर का गवर्नर जनरल को पत्र, २ अगस्त १७८७, एफ० एस० २८ अगस्त १७८७, संख्या १४, प्रोसीडिंग्ज ४२४४

६३. उपर्युक्त, सी० पी० सी० (७) १५४४

६४. पी० आर० सी० ग्रन्थ (१) १३५, १३६, १३७, एच० पी० ५०३; ऐतिहासिक पत्रें २६१, दिल्ली येथील ग्रन्थ (१) २२४, एस० सी० सी० आर० ग्रन्थ (२) ७१, १६५, सी० पी० सी० (७) १५४४, १५४५, १५५१, १५५३

६५. पी० आर० सी० (१) १३७

६६ पी० आर० सी० (१) १३५, हार्पर का गवर्नर जनरल को पत्र २ अगस्त १७८७, एफ० एस० २८, अगस्त १७८७ स० १४, प्रोसीडिंग्ज पृ० ४२३६-४२४४

६७ पी० आर० सी० (१) १३७

६८ पी० आर० सी० (१) १३५, १३७, एच० पी०, ५००; सी० पी० सी० (७) १५४४

६९ पी० आर० सी० (१) १३५, १३६, १३७, एच० पी० ५०० (इसके अनुसार मृतकों की संख्या १००० थी), सी० पी० सी० (७) १५५१, प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष वदी ५, वि० स ० १८४४। २९ नवम्बर १७८७ (पो० फो० ६ खरीता, न० ४९ जोध०), इसके अनुसार दोनों दलों के मृतकों की सख्या बराबर थी।

७० पी० आर० सी० (१), १३७, एच० पी० ५०३

७१ पी० आर० सी० (१), १३५, पी० आर० सी० (१) १३७, १५५, एच० पी० ५०३, सी० पी० सी० (७) १५७२,

७२ प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष वदी ५, वि० स० १८४४। २९ नवम्बर १७८७ (पो० फो० न० ६ खरीता न० ४९ जोध०), विजयसिंह ने युद्ध म विजय प्राप्त करने पर गुमानसिंह शेरसिंघोत (टाटोटी ख्यात न० २५, पृ० ८, बस्ता न० ४०) व रिडमलसिंह प्रसेनसिंघोत (खास रुक्का परवाना फाइल न० १०७ ठीलिया का ठाकर जोध०) को बधाइयां भेजीं।

७३ पी० आर० सी० (१), १७५, मारवाड री ख्यात (३) पृ० ६६ ७०

७४ पी० आर० सी० (१) १७५, सी० पी० सी० (७) १६४५

७५ पी० आर० सी० (१) १७५, महेश दरबार (२) १५४

७६ मारवाड री ख्यात (३) पृ० ६६-७०

७७ पी० आर० सी० (१) १७५

७८-७९ उपर्युक्त

८० पी० आर० सी० (१) १९२, महेश दरबार (२) १५४, प्रतापसिंह का विजयसिंह को खरीता, मार्गशीर्ष सुदी १०, वि० स० १८४४। २० दिसम्बर १७८७ (पो० फो० न० ६ खरीता न० ५० जोध०),

८१ अजमेर और जोधपुर का हस्तलिखित इतिहास पृ० १४६

८२ विजयसिंह का तुकोजी होल्कर को पत्र, पौष वदी १४, वि० स० १८४४/७, जनवरी १७८८ (अ० व० न० ४ पृ० ६ जोध०)

८३ उपर्युक्त

१२४ इस्माइल बेग को इस सहायता के लिए १०,००० रुपये मासिक दिये गये।

१२५ एस० सी० सी० आर० (२) ७६

१२६ एच० पी० ५७६, एस० सी० सी० आर० (२) ७६

१२७ सी० पी० सी० (६) ७३७

१२८ एच० पी० ५७४

१२९ एस० सी० सी० आर० (२) ७८, ८०

१३० एच० पी० ५७४

१३१ एच० पी० ५७६, सी पी सी (४) ७३७, एस० सी० सी० आर० (२) ७६ मुडियाड़ ख्यात (विजयसिंह), पृ० २२५ २२६, बस्ता न० २०, जोधपुर, हर्बर्ट कॉम्पटन पृ० ६०, पीसनगाँव अजमेर के द०पू०में १६ मील दूर है। गोविन्दगढ़ पीसनगाव से ६ मील उत्तर म है। आलनियावास मेड़ता से द० पू० मे २० मील २६, ३१,' ७०,' ३०, ई० म है। रीयां जोधपुर के उ० पू० मे २८ मील मेड़ता के द० पू० म १६ मील पर है।

१३२ एच० पी० ५७६, सी० पी० सी० (६), ६१०, ७३७, एस० सी०सी०आर० (२) ७६ ८१ एच० एस० आई० एम० (१) ३०२, महेश दरबार (२) २०६, मुडियाड़ ख्यात (विजयसिंह) पृ० २२८-२३२ बस्ता न० २० (जोधपुर) हर्बर्ट कॉम्पटन पृ० ६० डांगावास मेड़ता के पूर्व मे २ मील दूर है।

१३३ एच० पी० ५७६, सी० पी० सी० (६) ६१०, ७३७, एस० सी० सी० आर (२) ७६, ८१ दिल्ली येथील (पूरक) ३७, एस० एस० आई० एस० (१) २६३, ३०२, महेश दरबार (२) २०६; मारवाड़ री ख्यात ग्रन्थ (३), पृ० ६० ६१; मुडियाड़ ख्यात (विजयसिंह), पृ० २३५-२५३, बस्ता न० २०; हर्बर्ट कॉम्पटन पृ० ६०-६१

१३४ एस० सी० सी० आर० (२) ८२, मुडियाड़ ख्यात (विजयसिंह) पृ० २६४ बस्ता न० २० जोध०

१३५ उपर्युक्त

१३६ मुडियाड़ ख्यात (विजयसिंह) पृ० २६४, बस्ता न० २० (जोध०)

१३७ उपर्युक्त, खीची गोरधन का जीवाजी पंडित को पत्र, भाद्रपद सुदी ६, वि० स० १८४७/१४ सितम्बर १७९० (अ० व० न० ४, पृ० १६१ जोध०)

१३८ उपर्युक्त

१३९ एस० सी०सी० आर (२) ८२, खीची गोरधन के जीवाजी पंडित व गोपाल भाऊ को पत्र, भाद्रपद सुदी ७ वि०स० १८४७, १५ सितम्बर १७९० (अ० व० न० ४ पृ० १६२ जोध०); हकीकत बही न० ५ पृ० १५३

१४० विजयसिंह का त्र्यम्बकराव व रानेखा को पत्र, आश्विन बदी ८, वि० स० १८४७। १ अक्टूबर १७६० (ग्र० ब० न० ४, पृ० ६४ व ६६ जोध०)

१४१ उपर्युक्त

१४२ जोधपुर येथील १६

१४३ उपर्युक्त

१४४ जोधपुर येथील १७

१४५ उपर्युक्त

१४६ उपर्युक्त

१४७ एच० पी० ५६७, एस० सी० सी० आर० (२) ८२, कलकत्ता गजेटियर से सकलन (२) पृ० २८२

१४८ हकीकत बही न ५ पृ० १८१ व १८३ (जोध०)

१४९ उपर्युक्त

१५० जोधपुर येथील १६-१८

१५१ एच० पी० ५८६, दिल्ली येथील (पूरक) १

१५२ जोधपुर येथील १६, दिल्ली येथील (पूरक) ४

१५३ उपर्युक्त

१५४ महादजी सिंधिया का विजयसिंह को पत्र, पौष सुदी १, वि० स० १८४७। ५ जनवरी १७६१ (पो० फो० न ६, पत्र न० ५४ जोध०), 'महादजी सम्बन्धी ऐतिहासिक पत्र' ग्रन्थ मे यह तिथि ६ जनवरी है। (पत्र न० ५८७), महादजी के सधि पत्र मे तिथि ५ जनवरी है। उपर्युक्त ग्रन्थ मे विस्तृत वर्णन नहीं है जैसा कि पत्र मे है। ग्रन्थ का पत्र अजमेर से २४ मील दूर स्थित स्थान से लिखा गया है न कि सांभर मे। वह भी दूसरे दिन लिखा गया।

१५५ हकीम बही न० ५ पृ० १६० (जोध०)

१५६ विजयसिंह से महादजी को पत्र, माघ बदी ५, वि० स० १८४७। २४ जनवरी १७६१ (ग्र०ब०न० ४ पृ० ४५)

१५७ महादजी का विजयसिंह को पत्र, पौष सुदी १, वि० स० १८४७। ५ जनवरी १७६१ (पो० फो० ६ पत्र ५७, ५८ व ५६ जोध०), एच० पी० ५८७, दिल्ली येथील (पूरक) ४, जोध० येथील १६

१५८ पडित लक्ष्मण को पत्र, भाद्रपद सुदी ३, वि० स० १८४६। २० अगस्त १७६२ (ग्र०ब०न० ४ पृ० १०७ जोध०), मारवाड री ख्यात, ग्रन्थ (३) पृ० १४२

१५९ एच० पी० ५६२

१६०. पूना अखबारात (३) पृ० १४२; अजमेर व जोधपुर का हस्तलिखित इतिहास पृ० ७३ व १४७; मारवाड री ख्यात (३) पृ० ६६

१६१. पंडित विश्राम भाऊ का पत्र, भाद्रपद बदी ६ वि० स १८४६ । ८ अगस्त १७६२ (अ०व०न० ४ पृ० १३३ जोध०)

१६२. खास रुक्कावही नं० १, पृ० ७६ (जोध०)

१६३ हकीकत बही न० ५, पृ० २५ (जोध०), एच० पी० ६००

१६४. विजयसिंह का महादजी को पत्र, पौष बदी १०, वि० स० १८४८ । २० दिसम्बर १७६१ (अ० व० न० ४, पृ० ४८ जोध०)

१६५. विजयसिंह का पंडित गोपालराव को पत्र, ज्येष्ठ बदी ५, वि० स० १८४८ । २६ मई १७६२ (अ०ब०न० ४, पृ० १२२ जोध०)

१६६. विजयसिंह का महादजी को पत्र, माघ सुदी २, वि० स० १८४९ । १४ जनवरी १७६३ (अ०व० न० ४, पृ० ४६-५० जोध०) विजयसिंह का बाबा चिटणीस को पत्र, माघ सुदी ५, वि० स० १८४९ । १६ जनवरी १७६३ (अ०व०न० ४, पृ० ६६ जोध०)

१६७ भीमसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी ६, वि० स० १८४९ । १७ जुलाई १७६३ (अ०ब०न० ४, पृ० ५० जोध०), हकीकत बही न० ५, पृ० ३१६, जोध०; जोध०पथील २३

१६८ सी० पी० सी० ग्रन्थ न० (६) १२२७ १३४४

१६९. उपर्युक्त १३४६, एच० पी० ५६६



अध्याय : ६

मराठा प्रभाव का संध्याकाल
(१७९३–१८१८ ई०)

(अ) भीम-मान संघर्ष (१७९३–१८०३) में मराठा हस्तक्षेप

विजयसिंह के शासन के अंतिम वर्षों (१७९१-१७९३) में उत्तराधिकारी के प्रश्न[1] को लेकर राज्य की राजनैतिक गतिविधियों में षड्यन्त्र, विद्रोह व हत्याओं का उग्र वातावरण बन गया था। जालिमसिंह वास्तविक उत्तराधिकारी था। परन्तु उसे इस अधिकार से वंचित कर शेरसिंह (चौथे पुत्र) को गद्दी पर बिठाने की कोशिश होने लगी। विजयसिंह की पासवान गुलाबराय ने पहले तो शेरसिंह का पक्ष लिया पर बाद में गुमानसिंह के पुत्र मानसिंह को, जिसे शेरसिंह ने गोद ले लिया था, शासक बनाने की योजना बनायी। अपने प्रभाव के कारण उसने मानसिंह को उत्तराधिकारी घोषित करवा दिया। उसे जालौर का गढ़ सौंपा गया। गुलाबराय-विरोधी सामन्तों ने महाराजा को धमकी दी कि पासवान संरक्षित शेरसिंह-मानसिंह गुट को मारवाड़ का शासन सौंपा गया तो उसके भयंकर परिणाम होंगे। उन्होंने गद्दी के उत्तराधिकारी के लिए भीमसिंह का समर्थन किया। पासवान सामंत वर्ग में अत्यन्त अप्रिय थी। उसके राजनैतिक उत्थान के कारण राठौड़ कुल के शक्तिशाली सामंत विजयसिंह-विरोधी हो चुके थे। अतः सामन्तों के दबाव में आकर महाराजा ने भीमसिंह को उत्तराधिकारी घोषित करने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु मृत्यु के पूर्व उसने भीमसिंह के स्थान पर शूरसिंह के पक्ष में अपने विचार बदलने शुरू किये। इस प्रकार की स्थिति में राजनैतिक तनाव इतना बढ़ गया कि सामंत वर्ग के एक गुट ने गुलाबराय की हत्या करवा दी। जालिमसिंह मराठों और उदयपुर के महाराणा से सहायता प्राप्त करने हेतु जोधपुर से भाग गया। भीमसिंह ने राजधानी पर हमला कर गद्दी पर जबरदस्ती अधिकार करने की योजना बनायी।[2]

महाराजा की मृत्यु के ठीक पूर्व, उत्तराधिकार का प्रश्न प्रत्यक्ष रूप से भीमसिंह व मानसिंह के बीच का संघर्ष था। ७ जुलाई १७९३ को विजयसिंह की मृत्यु हो गयी। पोकरण ठाकुर सवाईसिंह, राजधानी में स्थित मराठा प्रतिनिधि धनसिंह, रामाराव सदाशिव और कृष्णाजी जगन्नाथ की सहायता से भीमसिंह ने १७ जुलाई

१८०० के प्रारम्भ में वह मारवाड की ओर चल पड़ा । सांभर पर पुनः अधिकार कर उसने भीमसिंह को कर देने को बाध्य किया ।[४२] जिस समय भीमसिंह घेरों के विरुद्ध संघर्ष में पूर्ण व्यस्त था, मानसिंह ने जोधपुर पर आक्रमण करने के लिए दिसम्बर १८०० में कूच किया । मार्ग में उसने पाली को बुरी तरह से लूटा । परन्तु भीमसिंह के सेनापति सिंघवी धनकरण और चम्पावत बहादुरसिंह ने उसे आगे नहीं बढ़ने दिया । १८०१ जनवरी में तालके के युद्ध में हारकर मानसिंह जालौर लौट आया ।[४३] जुलाई १८०१ में जोधपुर की सेना ने जालौर का घेरा डाल दिया । १८०३ के मध्य में मानसिंह की स्थिति शोचनीय होने लगी ।[४४] उसने आत्म-समर्पण के लिए सिंघवी इन्द्रराज से १० सितम्बर १८०३ को वार्ता प्रारम्भ की । इसके पूर्व कि समझौता हो सके, भीमसिंह की अक्तूबर १९, को मृत्यु हो गयी । इन्द्रराज ने बीस अक्टूबर को मानसिंह को इसके बारे में सूचित किया और उसे शासक घोषित कर दिया । मानसिंह ने जोधपुर की ओर प्रस्थान कर ५ नवम्बर १८०३ को उस पर अधिकार कर लिया ।[४५]

(घ) आंग्ल मराठा युद्ध (१८०२-१८०५) और मानसिंह

१७९८ में वेलेजली का अंग्रेज गवर्नर जनरल के रूप में भारत में आगमन आंग्ल साम्राज्य के प्रसार के लिए एक नये युग का प्रारम्भ था । उसकी 'सहायक नीति' का परिणाम वस्तुतः मराठों की शक्ति को समाप्त करना था जो कि १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारत की प्रमुख राजनैतिक शक्ति थे । इसके लिए मारवाड के शासक को वह अपना सम्भावित मित्र मानने लगा । इससे मराठों से संघर्ष में राठौड़ शासक महादजी को दिये गये क्षेत्र पर पुनः अधिकार कर सकेगा ।[४६] १८०२ में सिंधिया-अंग्रेज युद्ध प्रारम्भ हुआ । भीमसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध दौलतराव का समर्थन किया ।[४७] परन्तु अंग्रेजों के समक्ष मराठे टिक न सके और २४ सितम्बर १८०३ को असाई तथा १ नवम्बर १८०३ को लासवाड़ी के स्थान पर सिंधिया की बुरी तरह हार हुई ।

इसी बीच १९ अक्टूबर को भीमसिंह की मृत्यु हो गयी थी । मानसिंह ने ५ नवम्बर १८०३ को जोधपुर पर अधिकार कर लिया था । उसे भय था कि सिंधिया उसके विरोधियों का समर्थन करेगा । अतः एक ओर उसने अंग्रेजों के साथ संधि वार्ताएं प्रारम्भ कीं,[४८] दूसरी ओर होलकर से सहयोग लेने हेतु उसने अपने प्रतिनिधि भंडारी कल्याणदास और गेहलोत जीवनदास को जसवंतराव के पास ६ दिसम्बर को भेजा ।[४९] अंग्रेजों और होलकर दोनों की ओर से उसे सहयोग मिलने की आशा बढ़ी । यशवंतराव ने राठौड प्रतिनिधियों के साथ अपने प्रतिनिधि पंडित बलवंतराव को जोधपुर भेजा ।[५०] मराठा प्रतिनिधि १० जनवरी १८०४ को मानसिंह से मिला ।[५१] अंग्रेजों से संधि की सभी बातें पूरी हो गयीं परन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों

और होल्कर के सम्बन्ध बिगड़ने लगे। मानसिंह को दोनो मे से एक को चुनना था। उसने होल्कर का समर्थन करने का निश्चय किया। होल्कर व राठौड के बीच अंग्रेजो के विरुद्ध सहायता के लिए सात दिन तक बातें होती रही। अन्त मे दोनो के बीच दो कौलनामो पर हस्ताक्षर हुए। १७ जनवरी के कौलनामो के अनुसार[४२]

१. होल्कर दौलतराव सिंधिया से अजमेर और सांभर पर पुन राठौड़ो को अधिकार दिलाएगा।
२. जयपुर के मामलात का अंतिम निर्णय राठौड नरेश की उपस्थिति में होगा।

फरवरी के कौलनामे के अनुसार[४३]

१ मानसिंह होल्कर की सहायता के लिए राठौड सेना भेजेगा।
२ होल्कर के परिवार को जोधपुर मे शरण दी जाएगी।

कौलनामो की शर्तों के अनुसार १८०४ के अप्रेल मे राठौड शासक ने होल्कर के परिवार को मारवाड मे आने का निमत्रण भेजा।[४४] होल्कर का परिवार जून १८०५ में जोधपुर पहुँचा।[४५] इसमे होल्कर की दो रानियां, तुलसीबाई और लदाबाई उसकी पुत्री भीमाबाई,[४६] मल्हार राव का पुत्र खाडेराव व जसवन्तराव का भतीजा हरिराव थे।[४७] इनके साथ गनपतराव, पडित बायाजी फरडनवीस, हरिसिंह, कुमेदार, राजाराम, बक्षिया मायाजी और नीनोमाचन्द्र भी थे।[४८] वे कुछ तोपें भी साथ लाये थे।[४९] मानसिंह ने उन्हे चैनपुरा म ठहराया।[५०] इनका शानदार स्वागत हुआ और मानसिंह होल्कर की रानियों का राखीबन्द भाई हो गया।[५१] इनके खच के लिए गोडवाड में चार हजार रुपयों की आय की जागीर भमूडी गाँव और दो हजार रुपयो की आय का रूगोली गाँव दिया।[५२] करीब चार वर्ष तक होल्कर परिवार जोधपुर म रहा।[५३] जुलाई १८०६ मे उक्त परिवार पुन होल्कर से जा मिला।[५४]

दिसम्बर, १८०४, से अग्रेजो से वार्ता व प्रति दृष्टिकोण शिथिल हो गया। उसने सधि की शर्तों पर पुनः हस्ताक्षर नही किये।[५५] सितम्बर १८०५ म जब होल्कर अजमेर पहुँचा तो राठौड सेना उसकी सहायता के लिए भेजी गयी।[५६] अंग्रेजो न इस पर जोधपुर पर सिंधिया के अधिकारों को मान्यता दे दी।[५७] सिंधिया की शक्ति बढी। दौलतराव ने मानसिंह को वार्षिक कर की बकाया राशि न भेजने पर आक्रमण की धमकी दी।[५८] मानसिंह ने होल्कर को सहायता के लिए लिखा पर होल्कर ने कोई सहायता नहीं भेजी। इस पर दिसम्बर १८०५ म मानसिंह ने सिंधिया के समक्ष समर्पण कर दिया।[५९]

(स) कृष्णाकुमारी काण्ड में मराठा हस्तक्षेप (१८०५-१८१०)

(१) उदयपुर की कृष्णाकुमारी (१८०६ जनवरी जून)

गद्दी पर बैठते ही मानसिंह के समक्ष कई समस्याएँ आयीं। भीमसिंह के तथाकथित पुत्र धौकलसिंह को पोकरण गुट का समर्थन मिल जाने से उसकी स्थिति

संकटास्पद होने लगी। धोकलसिंह के लिए सिंधिया का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया जाने लगा। आंग्ल-मराठा युद्ध के अंत मे, अपनी स्थिति की वास्तविकता को ध्यान में रखकर मानसिंह ने सिंधिया से समझौता कर लिया। कुछ समय तक राठौड मराठा सम्बन्ध अच्छे बने रहे। परन्तु शीघ्र ही कृष्णाकुमारी काण्ड के कारण मराठों के आक्रमण की सभावना होने लगी।

कृष्णाकुमारी मेवाड के शासक भीमसिंह की पुत्री थी। उसकी सगाई जोधपुर के भीमसिंह से १७६६ मे हुई, परन्तु शादी होने के पहले ही १८०३ मे जोधपुर के शासक की मृत्यु हो गयी।[७०] मानसिंह ने गद्दी पर बैठने के बाद कृष्णाकुमारी से विवाह का सन्देश उदयपुर भेजा। परन्तु महाराणा ने इसे अस्वीकार किया।[७१] महाराणा मानसिंह से नाराज था, क्योंकि मानसिंह ने मेवाड की जागीर लालीराव पर अधिकार कर लिया था।[७२] १८०५ के अंत में मेवाड़ के शासक ने कृष्णाकुमारी का विवाह जयपुर के शासक जगतसिंह से करना तय किया।[७३] इस पर कृष्णा को लाने के लिए जयपुर के ३००० सैनिकों की फौज उदयपुर की ओर रवाना हुई।[७४]

मानसिंह को यह बुरा लगा। यह उसकी राठौडी राजपूती शान के लिए एक चुनौती थी। अतः उदयपुर के राणा से बदला लेने का उसने निश्चय किया। इसके लिए उसने सैनिक तैयारियाँ की। जनवरी १८०६ मे मेडता के पास डाँगावास में फौज एकत्रित की गयी।[७५] चैनपुरा स्थित होल्कर का तोपखाना भी इस सेना से मिल गया।[७६] इनके अलावा उसने होल्कर को, जो कि उस समय पजाब में था, सात हजार सैनिक शीघ्र भेजने के लिए लिखा।[७७] २८ जनवरी १८०६ को दौलतराव सिंधिया को लिखे गये पत्र से स्पष्ट होता है कि मानसिंह ने उससे भी सहायता माँगी। उसे विश्वास दिलाया कि जब कभी अंग्रेजो के विरुद्ध वह हथियार उठाएगा, राठौड़ सेना उसकी सहायता को पहुँचेगी। उसके परिवार को जोधपुर में शरण दी जाएगी। वार्षिक कर के अलावा युद्ध का सम्पूर्ण खर्च दिया जाएगा तथा होल्कर और सिंधिया के बीच समझौता कराने मे वह मध्यस्थता करेगा।[७८] उसने अपनी सद्भावना प्रदर्शित करने हेतु वार्षिक कर एक लाख पचास हजार रुपये सिंधिया को भिजवाया।[७९] सिंधिया का समर्थन उसे प्राप्त हो गया। उदयपुर स्थित उसके प्रतिनिधि शिरजीराव घाटका ने मानसिंह को लिखा कि वह शीघ्र सेना भेजे।[८०] इस पर मानसिंह ने इन्द्रराज सिंघवी और मेहता सूरजमल को सेना सहित भेजा[८१] इस सेना ने फरवरी १८०६ मे शाहपुरा के पास जयपुर की सेना को रोका और उसे लौटने को बाध्य किया।[८२]

इसी समय सिंधिया मेवाड़ पहुँचा।[८३] उसने पंडित सुखराम के द्वारा मानसिंह को कहला भेजा कि वह उसकी सहायता करेगा परन्तु वास्तव मे वह जयपुर और जोधपुर के बीच न्यायोचित स्थिति से अधिक कुछ नहीं करना चाहता था।[८४] उसने महाराणा को सुझाव दिया कि अपनी दोनों पुत्रियों में से बड़ी की शादी राठौड

शासक से और छोटी की शादी जयपुर के शासक से कर दे।[८४] परन्तु जगतसिंह ने इसे स्वीकार नहीं किया।[८५] सिंधिया को जगतसिंह का आचरण उचित नहीं लगा। उसने उस पर दबाव डालना शुरू किया और शीघ्र ही बकाया कर का भुगतान माँगा और न मिलने पर सैनिक कार्यवाही की धमकी दी।[८७] इस पर जगतसिंह ने मानसिंह से अपनी बहन की शादी करने की वार्ता प्रारम्भ की।[८८] कुछ समय के लिए जयपुर के शासक ने कृष्णाकुमारी से शादी की वार्ता स्थगित कर दी।[८९]

(२) नाद सम्मेलन (जून-अक्टूबर १८०६) व उसके परिणाम

मानसिंह का पत्र प्राप्त होने के पश्चात् होल्कर कुछ समय तक तो पंजाब में बना रहा। परन्तु मई, १८०६ में वह सांभर पहुँचा और यह बहाना बनाकर कि जयपुर शासक ने खांपिक कर नहीं दिया है, उसके राज्य को लूटने लगा।[९०] जगतसिंह की कुछ फौजें मेवाड़ में थीं। उसके कई सरदार विद्रोही होने लगे थे। एक ओर होल्कर, दूसरी ओर सिंधिया का विरोध करने की क्षमता जगतसिंह में नहीं थी। अतः न सिर्फ उदयपुर से उसने अपनी फौजें हटायीं बल्कि मानसिंह से समझौता कर होल्कर को सीन करने का प्रयास किया।[९१] राजस्थान में होल्कर के आने से महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन होने लगे। सिंधिया ने मानसिंह को लिखा कि वह होल्कर से वार्ता कर उसके और होल्कर के बीच समझौता कराए।[९२] मानसिंह ने होल्कर से मुलाकात करने का निश्चय किया।[९३] वह मिलन इसलिए भी आवश्यक हो गया कि राठौड़ शासक अपने प्रतिद्वन्द्वी धौकलसिंह के विरुद्ध मल्हारराव का नैतिक एवं सैनिक समर्थन भी चाहता था।[९४] इस उद्देश्य से उसने आलनियावास से, जहाँ उसका डेरा लगा हुआ था, होल्कर से मिलने के लिए २२ जून १८०६ को प्रस्थान किया।[९५] होल्कर अपनी सेना को हरमाड़ा में छोड़कर पुष्कर आया हुआ था और उसका डेरा तिलोरे गाँव में लगा था।[९६]

२३ जून को दोनों, मानसिंह और जसवंतराव नाद गाँव में मिले।[९७] फिर समय समय पर उनकी मुलाकातें होती रहीं। ये वार्ताएँ २३ अक्टूबर तक चलती रहीं।[९८] प्रारम्भिक मुलाकातों में जयपुर का दीवान रायचन्द भी शामिल हुआ। बाद में शिरजीराव घाटगे, अमीरखाँ, आयसजी महाराज भी शामिल हुए।[९९] मानसिंह और जसवन्तराव में पारिवारिक घनिष्ठता स्थापित हो गयी। उन्होंने एक ही पाट पर बैठकर खाना खाया।[१००] तत्कालीन पत्रों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि अमीरखाँ और मानसिंह के बीच भयंकर मतभेद हो गया था। वह (अमीरखाँ) मुलाकात में अनुपस्थित रहा और अजमेर चला गया था।[१०१]

होल्कर और राठौड़ की नाद में हुई मुलाकातें आंशिक रूप में ही सफल मानी जाती हैं। सिंधिया होल्कर मतभेदों को सुलझाने में मानसिंह असफल रहा।[१०२] जयपुर के प्रतिनिधि ने बकाया वार्षिक के भुगतान के बारे में आना-कानी ही नहीं की बल्कि इसे उलझाये रखा। होल्कर की सैनिक अभियान की धमकी से ही कुछ

धनराशि मिल सकी।[१०३] कृष्णाकुमारी के सम्बन्ध मे होल्कर का प्रभाव मानसिंह के पक्ष मे बना रहा। २६ जून १८०६ को होल्कर के प्रस्ताव पर दोनो शासकों ने कृष्णाकुमारी से विवाह न करने का निश्चय किया। इसके अलावा उन दोनो ने आपस में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर पारिवारिक घनिष्ठता बनाये रखने का समझौता भी किया।[१०४] होल्कर ने मानसिंह को विश्वास दिलाया कि यदि कृष्णा कुमारी से शादी की समस्या पुन पैदा हुई और धोकलसिंह को जयपुर का समर्थन मिला तो वह उसकी सहायता करेगा।[१०५]

इसी बीच हरमाडा स्थित होल्कर की सेना ने वतन की मांग को लेकर विद्रोह कर दिया। सैनिकों ने यशवतराव के भतीजे खंडेराव को गिरफ्तार कर लिया।[१०६] नाद की मुलाकात समाप्त कर होल्कर एक राठौड फौज के साथ हरमाडा पहुँचा और बकाया वेतन देकर विद्रोह को शांत करने की चेष्टा की।[१०७] परन्तु हैदराबाद रिसाले ने उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया।[१०८] बाकी बची सेना को लेकर वह रामसर शाहपुरा होता हुआ मालवा की ओर चल दिया।[१०९] शाहपुरा से अभी वह रवाना हो हुआ था कि उसे मानसिंह का पत्र मिला कि जयपुर का शासक उस पर आक्रमण की तैयारियाँ कर रहा है अत वह आगे प्रस्थान न करे।[११०]

अक्टूबर १८०६ मे होल्कर के प्रस्थान के बाद जयपुर के शासक ने अपनी स्थिति शक्तिशाली बनाने के लिए कई कदम उठाये। होल्कर के विद्रोही हैदराबाद रिसाले' को अपनी सेना मे भर्ती कर लिया।[१११] अमीरखा से उसने सैनिक सधि कर ली।[११२] जोधपुर की गद्दी के तथाकथित प्रत्याशी धोकलसिंह और पोकरण के विद्रोही ठाकुर सवाईसिंह को जयपुर मे शरण देकर उनका समर्थन किया।[११३] बीकानेर के शासक सूरतसिंह का सहयोग भी उसे प्राप्त हो गया।[११४] सिंधिया को अपनी ओर करने के लिए जगतसिंह ने उसे यह विश्वास दिलाया कि धोकलसिंह का कर भी वह देगा।[११५] इस प्रकार अपनी शक्ति मे वृद्धि कर जगतसिंह ने मानसिंह से समझौता भग कर दिया और कृष्णाकुमारी से विवाह रचाने की इच्छा व्यक्त की।[११६] नवम्बर १८०६ मे जयपुर का राजनैतिक वातावरण इतना उग्र हो गया कि मानसिंह से युद्ध अवश्यंभावी हो गया।[११७] २६ दिसम्बर को मानसिंह ने यशवतराव को पत्र लिखा कि जयपुर की फौजी हलचलो का उद्देश्य मारवाड़ पर आक्रमण करने का है अत. वह उसकी सहायता के लिए आए।[११८]

(३) जयपुर–जोधपुर सघर्ष (जनवरी–अक्टूबर १८०७)

जगतसिंह का आचरण नैतिक दृष्टि से कितना ही बुरा हो, राजनैतिक दृष्टिकोण से प्रभावपूर्ण था। मानसिंह होल्कर की सहायता पर पूर्ण रूप से आश्रित था। उसने यशवतराव को शीघ्रातिशीघ्र आने को पुनः लिखा।[११९] प्रारम्भ मे तो होल्कर ने महाराणा उदयपुर पर दबाव डाला कि कृष्णा की शादी जयपुर नही करे।[१२०] वह इसके लिए किसी भी दल की सहायता करने को तैयार न था[१२१] परन्तु उसे

निराशा ही हाथ लगी। जनवरी १८०७ के मध्य में जगतसिंह मारवाड़ की ओर चल पड़ा। इस पर होल्कर मानसिंह की सहायता हेतु अजमेर और किशनगढ़ की ओर बढ़ा।[१२२] जगतसिंह ने कूटनीति अपनायी। उसे लौटाने हेतु चार लाख रुपये नकद देने का वचन दिया।[१२३] परन्तु होल्कर ने इसे अस्वीकार करते हुए स्पष्ट चेतावनी दी कि वह मानसिंह पर आक्रमण नही करे अन्यथा उसे वह अपने ऊपर आक्रमण समझेगा।[१२४]

कछवाह नरेश ने इस धमकी की परवाह नहीं की।[१२५] १७ जनवरी को उसने धोंकलसिंह को मारवाड़ के शासक के रूप में मान्यता प्रदान कर दी।[१२६] इसके पूर्व मानसिंह ने समझौता करना चाहा परन्तु उसने कोई जवाब नही दिया।[१२७] उसका सैनिक अभियान चलता रहा। साभर मे आकर उसने अपना पड़ाव डाला।[१२८] परबतसर से बारह मील दूर पर मानसिंह का पड़ाव था।[१२९] उसने होल्कर के पास अपने वकीलो के साथ युद्ध खर्चे के दो लाख रुपये भेजे।[१३०] वह मानसिंह की सहायता के लिए परबतसर की ओर चल पड़ा।[१३१] अब जगतसिंह को परेशानी होने लगी। ४ फरवरी को होल्कर सांभर की ओर मुड़ा।[१३२] ६ फरवरी को जयपुर का वकील १० लाख रुपयों की हुँडियां लेकर कैम्प मे उपस्थित हुआ। इन हुँडियो की कोटा मे भुगतान की व्यवस्था की गयी थी। जयपुर-शासक ने इस शर्त पर हुंडियां दी कि वह शीघ्र कोटा की ओर प्रस्थान कर देगा।[१३३] होल्कर ने इसे स्वीकार किया। मानसिंह की सहायतार्थ कुछ सेना को छोड़कर[१३४] वह कोटा की ओर चल पड़ा।[१३५]

फरवरी मे होल्कर के प्रस्थान के बाद जोधपुर के महाराजा ने दिल्ली स्थित ब्रिटिश राजदूत एलेक्जेण्डर सेटोन से सहायता के लिए पत्र-व्यवहार शुरू किया।[१३६] मार्च के पूर्वार्द्ध मे उसके वकील फतेहराम व्यास ने सेटोन से मुलाकात की और महाराजा का यह प्रस्ताव प्रेषित किया कि जोधपुर को अंग्रेजी सरक्षण मे ले लिया जाए।[१३७] रेजिडेण्ट ने अत्यन्त नम्रता से इसे अस्वीकार किया।[१३८]

होल्कर के हट जाने से और अंग्रेजी सहायता न मिलने के कारण मानसिंह अत्यन्त निराश हुआ। अत जगतसिंह ने, अमीरखां की सेना की सहायता से[१३९] परबतसर के पास १६ मार्च १८०७ को उस पर आक्रमण किया तो वह हार गया।[१४०] वह रणक्षेत्र से भाग गया। प्रारम्भ मे वह जालोर की ओर बढ़ा परन्तु बाद मे विचार बदल दिया।[१४१] २१ मार्च को वह जोधपुर की ओर चला।[१४२] धोंकलसिंह को लेकर आक्रमणकारियों ने उसका पीछा करना शुरू किया। मार्ग मे उन्होने नागौर पर अधिकार कर लिया।[१४३] २ अप्रेल को कछवाह और अमीरखां की सेना ने जोधपुर का घेरा डाल दिया।[१४४] अप्रेल १६ को राजधानी पर इस सेना का अधिकार हो गया।[१४५] अब किले का घेरा डाला गया।[१४६] सपूर्ण मारवाड में धोंकलसिंह का शासन स्थापित किया गया।[१४७] सिर्फ किले पर

ही महाराजा का अधिकार था, जिसे वह छोड़कर जालोर जाने को तैयार नहीं था।[१४८]

आशा के प्रतिकूल जोधपुर गढ़ का घेरा काफी समय तक चला। इससे जयपुर वालों को अंतिम सफलता में सन्देह होने लगा। घास और पानी की कमी के कारण आक्रमणकारी सेना में विद्रोह होने लगा।[१४९] मानसिंह की मातृभूमि की रक्षा की अपील पर[१५०] आक्रमणकारियों के कई समर्थक राठौड़ ठाकुर अपने महाराजा से आ मिले।[१५१] अमीरखा प्रारम्भ से ही यह चाहता था कि जयपुर शासक उदयपुर जाकर कृष्णाकुमारी से शादी कर ले।[१५२] जगतसिंह की यह नीति उसे पसन्द नहीं थी कि पहले धोकलसिंह को जोधपुर की गद्दी पर आसीन करें।[१५३] लम्बे अर्से तक घेरा रहने से अमीरखा, जगतसिंह तथा सवाईसिंह के बीच मतभेद बढ़ने लगे।[१५४] मई के प्रथम सप्ताह में अम्बाजी इंगले और बापूजी सिंधिया, जिन्हें दौलतराव सिंधिया ने भेजा था, जयपुर की सेना से आ मिले। वे आक्रमणकारियों का नेतृत्व करने लगे।[१५५] जयपुर नरेश द्वारा अपना स्थान अम्बाजी को दिया जाना अमीरखां को बुरा लगा।[१५६]

मानसिंह आक्रमणकारियों में फूट की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने गुलामखा को अमीरखा के पास गुप्त रूप से भेजकर अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया, जिसे पठान नेता ने शीघ्र ही स्वीकार कर लिया।[१५७] इसी प्रकार का प्रस्ताव महाराजा ने बापूजी सिंधिया के पास भेजा परन्तु मराठा सेनापति ने यह शर्त स्वीकार नहीं की कि सवाईसिंह को समाप्त कर दिया जाए।[१५८] मानसिंह ने अम्बाजी के शत्रु शिरजीराव घाटका को अपनी ओर मिला लिया।[१५९] इन्द्रराज सिंघवी के नेतृत्व में राठौड़ सैनिकों व शिरजीराव घाटका के मराठा सैनिकों को लेकर, अमीरखा पुष्कर की ओर चल पड़ा।[१६०] अचानक अगस्त १८०७ में उसने जयपुर पर आक्रमण कर दिया।[१६१] *अमीरखां का पीछा करने हेतु जगतसिंह ने शिवलाल के नेतृत्व में एक* फौज भेजी, जिसने ३ अगस्त को उसे हराया।[१६२] परन्तु १८ अगस्त के युद्ध में अमीरखा ने कछवाहा सेना को बुरी तरह परास्त कर[१६३] जयपुर पर अधिकार कर कर लिया।[१६४] जगतसिंह ने अपनी राजधानी को बचाने के लिए जोधपुर का घेरा ४ सितम्बर को हटा लिया।[१६५] धोकलसिंह, सवाईसिंह और बापूजी सिंधिया को नागौर में छोड़कर,[१६६] अम्बाजी के साथ[१६७] जगतसिंह जयपुर के लिए चल पड़ा, जहां वह अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में पहुँचा।[१६८] अमीरखां से उसने समझौता कर लिया। उसकी मध्यस्थता से जोधपुर और जयपुर के बीच समझौता हो गया।[१६९] १६ अक्टूबर १८०७ को शिरजीराव घाटका के साथ वह (अमीरखा) जोधपुर पहुंचा।[१७०]

(४) मानसिंह-अमीरखां मैत्री (कृष्णाकुमारी काण्ड की समाप्ति)

जयपुर पर विजय का श्रेय अमीरखा को प्राप्त हुआ। जब वह जयपुर से १६ अक्टूबर १८०७ को जोधपुर लौटा तो मानसिंह ने उसका शानदार स्वागत

किया।[171] यद्यपि जोधपुर से आक्रमण का खतरा हट गया था परन्तु धोकलसिंह और सवाईसिंह, जिन्होंने बापूजी सिंधिया की फौज को अपने पास नागौर मे रख लिया था, उसके लिए समस्या बने हुए थे।[172] मानसिंह ने अमीरखां के साथ इन दोनों का अन्त करने का समझौता कर लिया था।[173] इस समझौते के अनुसार (१) मानसिंह द्वारा अमीरखा को ४,५०,००० रुपये और (२) ४ लाख आय की जागीर देना तथा (३) अमीरखा की सेना की एक टुकडी जोधपुर मे रखना तय हुआ।[174] इस समझौते के बाद अमीरखा ने अपने तोपखाने के सेनापति मुख्तियारउद्दौला मोहम्मद खां को जोधपुर बुला भेजा। वह दिसम्बर मे जोधपुर पहुचा।[175] मानसिंह ने उससे पृथक् समझौता किया।[176] समझौते की शर्तें निम्न थीं—मुख्तियारउद्दौला मानसिंह के निर्देशन म कार्य करेगा, उसकी सेना में १० हजार पैदल, २ हजार अश्वारोही और १२५ युद्ध तोपें रहेंगी। मानसिंह उसे प्रति माह १,५०,००० रुपया देगा तथा नावा तहसील म जागीर प्रदान करेगा।[177]

अमीरखा ने २६ दिसम्बर १८०७ को जोधपुर से नागौर की ओर प्रस्थान किया।[178] मानसिंह ने इन्द्रराज सिंघवी को भी आदेश दिये कि वह अमीरखा के साथ जाए।[179] मुख्तियारउद्दौला भी अमीरखा की सहायता के लिए जोधपुर से ६ जनवरी १८०८ को रवाना हुआ।[180]

समकालीन पत्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि अमीरखा और बापूजी सिंधिया के बीच गुप्त वार्ता हुई।[181] वार्ता मे क्या तय हुआ यह तो स्पष्ट नही था, परन्तु शीघ्र ही बापूजी बीन बेपटीस्ट को लेकर नागौर से चल पड़े।[182] पठान सरदार ने सवाईसिंह से मित्रता का खुला प्रदर्शन किया, परन्तु गुप्त रूप से वह उसकी हत्या की योजनाएँ तैयार करता रहा। इसके फलस्वरूप सवाईसिंह और उसके चार साथी ३० मार्च को मार डाले गये।[183] धोकलसिंह बचकर बीकानेर की ओर भाग गया।[184] नागौर पर मानसिंह का राज्य स्थापित कर[185] अमीरखा जोधपुर आया। १५ मई १८०८ से १ जुलाई तक वह जोधपुर मे ही बना रहा, जहाँ मानसिंह ने उसका बड़ा आदर सत्कार ही नहीं किया बल्कि अपने गुप्त विश्वसनीय गुट मे भी शामिल कर लिया।[186] जयपुर-शासक के निमंत्रण पर उसने मानसिंह से २ जुलाई को विदाई ली।[187]

मानसिंह की जयपुर के विरुद्ध सफलता, सवाईसिंह के अन्त और अमीरखां से उसकी मित्रता से दौलतराव का प्रभाव जोधपुर पर कम होने लग गया था। जयपुर के जगतसिंह ने अम्बाजी इगले द्वारा दी गई सहायता के बदले कोई धन-राशि सिंधिया को नहीं भेजी। इस पर सिंधिया ने जुलाई १८०८ मे जयपुर पर आक्रमण करने की धमकी दी।[188] जगतसिंह ने अमीरखां को जयपुर बुला भेजा। सिंधिया ने मानसिंह को सेना के लिए लिखा परन्तु उसने यह बहाना बना कर कि बीकानेर की ओर से उस पर आक्रमण की संभावना है अतः राठौड सेना मारवाड से भेजी

नही जा सकती, सेना नही भेजी।[१८६] इसके अलावा मानसिंह ने शिरजीराव घाटका की विद्रोही पैदल सेना को जो हीरासिंह के नतृत्व मे थी अपनी ओर मिला लिया।[१९०] अमीरखां और मुस्तयारउद्दौला से सधियो के बाद मानसिंह न सिंधिया को कर देना बन्द कर दिया था।[१९१] सिंधिया को यह बुरा लगा। उसने न सिर्फ कर की धनराशि की, वल्कि पठान सरदार की सेना को हटाने व हीरासिंह को निकालने की भी मांग की।[१९२] मानसिंह ने इसे अस्वीकार किया।[१९३]

राठौड नरेश को दण्ड देने हेतु दौलतराव ने जून १८०६ में मारवाड की ओर प्रस्थान करने का इरादा किया।[१९४] शिरजीराव को धोकलसिंह से सम्पर्क स्थापित करने के उसने आदेश दिये,[१९५] जिससे महाराजा पर राजनैतिक दबाव डाला जा सके। मानसिंह इसके लिए तैयार था। भडारी कानमल के नेतृत्व मे राठौड सेना अजमेर के पास सीमा पर भेजी गयी।[१९६] अमीरखा को सूचना भेजी गयी कि होल्कर की फौज सहित वह मारवाड चला आए।[१९७] अगस्त मे जयपुर के साथ आपसी सहायता की पुन सधि की गयी।[१९८] मुस्तियारउद्दौला १० हजार अश्वारोही और तोपखाना लेकर मेडता की ओर बढा।[१९९]

सिंधिया का मारवाड पर आक्रमण नही हो सका। अजमेर के सूबेदार बालेराव इगले ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।[२००] अत वह इस समस्या मे उलझ गया। उसने मानसिंह के प्रति उदारता का दृष्टिकोण अपनाया[२०१] और कहा कि वह अमीरखा से सम्बन्ध त्याग दे तथा भविष्य म आवश्यकता पडने पर उसे सैनिक सहायता प्रदान करे।[२०२] इस पर मानसिंह ने अपने वकील को सिंधिया के पास भेजा। वार्ताएं प्रारम्भ हुई।[२०३] २७ जनवरी १८१० को सिंधिया ने बापूजी इगले को अजमेर का नया सूबेदार बनाया।[२०४] ७ फरवरी को वहां से वह मालवा की ओर चल दिया।[२०५] मानसिंह ने मुस्तियारउद्दौला को आदेश दिया कि वह अजमेर की तरफ बढे जहां उसने २२ फरवरी १८१० को डेरे डाल दिये।[२०६] कृष्णाकुमारी की शादी के लिए जयपुर और जोधपुर शासको के बीच १८०६ से मतभेदो के कारण दोनो राज्यो पर बुरा प्रभाव पडा। दोनो के बीच पुन आपसी वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने हेतु नया समझौता हुआ।[२०७] फिर अप्रेल १८१० मे दोनो के बीच आपसी सहायता की सधि हुई।[२०८] मानसिंह की सलाह पर[२०९] अमीरखां उदयपुर पहुंचा और उसने महाराणा पर दबाव डालकर अगस्त १८१० मे कृष्णा को जहर पीने को मजबूर किया।[२१०] इस सघर्ष के कारण मारवाड पर अमीरखा का प्रभाव स्थापित हो गया। व्यवहार मे मानसिंह उसके अधीन मित्र बन गया।[२११] उसे न सिर्फ मारवाड म जागीर ही प्राप्त हुई[२१२] बल्कि उसकी सेना स्थायी रूप से जोधपुर मे रहने लगी।[२१३]

(द) मारवाड मे पिंडारी प्रभाव

दौलतराव सिंधिया के दरबार मे नियुक्त ब्रिटिश रेजिडेण्ट के ११ मई १८१२ के एक पत्र स यह ज्ञात होता है कि मारवाड और सिंधिया म शातिपूर्ण सम्बन्ध

स्थापित हो गये थे।[२१४] इस पत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि १८१० से १८१२ तक मारवाड मराठों के आक्रमणों से मुक्त रहा।[२१५] परन्तु अमीरखां का प्रभाव नियमित रूप से बढ़ता गया। उसने मेडता के आसपास का क्षेत्र अपने साथियों के बीच वितरित कर दिया।[२१६] फरवरी १८११ में घाणेराव पर उसका अधिकार हो गया।[२१७] अक्टूबर में वह जोधपुर पहुँचा[२१८] और मानसिंह से दो लाख रुपये वसूल किये।[२१९] अगस्त १८१२ में एक बार पुनः वह जोधपुर आया[२२०] और तीन लाख रुपये प्राप्त किये।[२२१] वह वहाँ अक्टूबर तक रहा, फिर मोहम्मद खां और कुछ राठौड़ सैनिकों सहित जयपुर में दौलतराव से मिलने चल दिया।[२२२]

अमीरखां की लगातार माँग के कारण जोधपुर की आर्थिक स्थिति तो बिगड़ने लगी ही, साथ ही राजनैतिक असंतुलन भी होने लगा। बाह्य आक्रमणों का भय बढ़ता गया। सिंध के तालपुरा-शासक ने १८१३ के प्रारम्भ में अमरकोट पर अधिकार कर लिया।[२२३] मानसिंह ने अमीरखां को मध्यस्थता के लिए लिखा।[२२४] पर वह जयपुर व बूँदी की समस्या में व्यस्त होने के कारण नहीं आया।[२२५] जनवरी १८१४ में पूर्व की ओर से बापूजी सिंधिया ने मारवाड को लूटना शुरू किया।[२२६] इन परिस्थितियों में मानसिंह ने अंग्रेजों से सहायता की प्रार्थना की।[२२८] परन्तु अंग्रेजी सरकार ने आंग्ल-सिंधिया संधि के अनुसार मारवाड़ पर सिंधिया के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था अतः मानसिंह के प्रस्ताव को उन्होंने अमान्य किया।[२२९]

इस स्थिति का लाभ मोहम्मदखां ने उठाया, जो कि १८१२ में जयपुर चला गया था।[२३०] यह बहाना बनाकर कि मानसिंह ने अभी तक मान्य धन-राशि नहीं दी है, उसने मेडता के आस-पास के क्षेत्रों को लूटना शुरू किया।[२३१] उसे शांत करने के लिए महाराजा ने दीवान इन्द्रराज को आदेश दिया कि शीघ्र ही उसे ५० हजार रुपये भेज दिये जाएँ।[२३२] मोहम्मद शाह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने अपने परिवार एवं सेना के खर्च के लिए नावाँ का परगना माँगा।[२३३] वह सेना सहित ७ फरवरी १८१५ को जोधपुर पहुँचा।[२३४] सैनिक दबाव के कारण मानसिंह ने उसे बकाया धन-राशि में ६ लाख रुपये तत्काल दे दिये तथा नावाँ, साभर, बिलाड़ा, मालकोट व डाँगावास के क्षेत्रों की आय एकत्र करने का अधिकार भी दिया। इसके अलावा वार्षिक भुगतान करने का भी वचन दिया जो कि ४ लाख रुपयों का होता था।[२३५]

इसी समय अमीरखां भी जोधपुर पहुँच गया था।[२३६] वह मेडता में मुहम्मदखां से मिला।[२३७] वह भी मानसिंह-मुहम्मदखां वार्ता से सन्तुष्ट नहीं था। अतः बकाया राशि प्राप्त करने हेतु उसने अपने प्रतिनिधि दत्ताराम को मानसिंह के पास भेजा।[२३८] दत्ताराम ४ मई १८१५ को मानसिंह से मिला, और कुछ धन-राशि

प्राप्त कर मेड़ता लौट आया।[२३९] इस अल्प धनराशि की प्राप्ति पर अमीरखाँ ने असन्तोष व्यक्त किया।[२४०] अतः वह स्वयं २० अगस्त को जोधपुर पहुंचा[२४१] दो दिन बाद किले के मुख्य द्वार पर अपने सैनिकों को नियुक्त कर महाराजा से मिलने वह किले के ऊपर चला।[२४२]

अमीरखाँ के अचानक किले मे प्रवेश ने राज्य दरबार मे सनसनी पैदा कर दी। मानसिंह इस नयी परिस्थिति का सामना करने के लिए अपने को असहाय अनुभव करने लगा। दीवान इन्द्रराज और आयस देवनाथ ने अमीरखाँ से मुलाकात की।[२४३] अमीरखाँ ने तत्काल ४ लाख रुपयों की मांग की पर इन्द्रराज उस समय सिर्फ दो या तीन लाख रुपयों की व्यवस्था कर सकता था।[२४४] वार्ता ९ सितम्बर तक चलती रही।[२४५]

१८१२ से इन्द्रराज दीवान और बख्शी के पद पर कार्य करता था। वह और आयस देवनाथ राज्य के सर्वेसर्वा थे। इन दोनो के अलावा महाराजा से कोई मिल नही सकता था। एक घोषणा के द्वारा महाराजा ने इन दोनों को पांच वर्ष के लिए अपार शक्तियां दे दी थीं। इससे राज्य के अधिकारियों में असन्तोष फैल गया। इन्द्रराज के विरुद्ध एक नया गुट तैयार हो गया। मोहता अखेचन्द, व्यास चतुर्भुज, मेहता सूरजमल, साहिबचन्द और आयस सूरतनाथ, जो कि देवनाथ का छोटा भाई था, इसके प्रमुख सदस्य थे। अमीरखाँ ने मोहता अखेचन्द के गुट से गुप्त सम्पर्क स्थापित किया। इसके अलावा उसने ठाकुर केशरीसिंह आसोप के हरिसिंह, अम्बोहा के बख्तावरसिंह, निम्बाज के सुल्तानसिंह और भाद्राजूँ के प्रतापसिंह से भी मुलाकात की और इन्द्रराज विरोधी गुट को सशक्त बना दिया।[२४६]

मानसिंह की पटरानी भी इन्द्रराज से अप्रसन्न थी।[२४७] उसने अपने पुत्र छत्रसिंह को अमीरखाँ से मिलने उसके कैम्प मे १० सितम्बर १८१५ को भेजा।[२४८] छत्रसिंह ने अमीरखाँ से लम्बी बात की।[२४९] इन दोनों में क्या बातें हुईं इस सबंध मे समकालीन स्रोत मौन हैं, परन्तु बाद की घटनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन दोनो ने इन्द्रराज और आयस देवनाथ की हत्या करने, मानसिंह को गद्दी से उतारने व छत्रसिंह को शासक बनाने की योजना बनायी।[२५०] इस कार्य के लिए विरोधी दल ने अमीरखाँ को सात लाख रुपया नकद देने का वचन दिया।[२५१]

पाँच लाख रुपये नकद प्राप्त होते ही[२५२] अमीरखाँ ने इन्द्रराज और देवनाथ के विरुद्ध कार्यवाही करने का निश्चय किया।[२५३] तत्काल ही नगर मे उसके सैनिक तैनात कर दिये गये। इस कार्य के लिए सुअवसर की प्रतीक्षा की जाने लगी। ९ अक्टूबर की सन्ध्या को अखेराज गुट के गुप्तचरों के द्वारा, जो कि किले मे ही रहते थे, अमीरखाँ को सूचना प्राप्त हुई कि इन्द्रराज और देवनाथ किले के महल मे वार्ता कर रहे हैं। अमीरखाँ ने कुतुबुद्दीन के नेतृत्व मे २५-३० पठान सैनिकों को

दीवान के पास धन प्राप्त करने भेजा। इस दल को गुप्त सन्देश दिये गये थे कि धन राशि की माँग रखते समय उनकी हत्या कर दी जाए। शाम को आठ बजे यह दल उन दोनों मन्त्रियों से मिला।[२५४] ६ महीनों के भीतर-भीतर किश्तों द्वारा सारी बकाया राशि अदा करने का इन्द्रराज ने वचन दिया। परन्तु कुतुबुद्दीन सम्पूर्ण धन उसी समय चाहता था। वार्ता में गर्मागर्मी हो गयी। सिपाहियों ने इन्द्रराज को पकड़ कर ले जाना चाहा पर वे सफल न हो सके।[२५५] इस पर दीवान, देवनाथ और अन्य पाँच आदमियों को, जो वहाँ उपस्थित थे, हत्या कर दी गयी।[२५६] रात्रि को आयस सूरतनाथ और किले में उपस्थित औरतों, ठाकुरों और पदाधिकारियों ने इन हत्यारों को किले के बाहर पहुँचा दिया।[२५७] मानसिंह के महलों को घेर लिया गया। उसे किसी से मिलने नहीं दिया गया। उसके अंग-रक्षक व सेवक पदों से हटा दिये गये। वह नजरबन्द कर दिया गया।[२५८]

जब दीवान और आयस गुरु की हत्या की सूचना शहर में पहुँची तो नागरिकों ने अमीरखां के विरुद्ध विद्रोह करना शुरू किया। पर पठान नेता ने नगर लूटने व विद्रोहियों का दमन करने का आदेश देकर[२५९] नागरिकों को धमकी दी कि यदि उन्होंने अधिक कदम उठाये तो वह मानसिंह को मार देगा।[२६०]

अमीरखां द्वारा प्रभावित अखेचन्द के नेतृत्व में नयी सरकार की स्थापना हुई।[२६१] नई सरकार और पठान नेता के बीच नया समझौता हुआ। इसके अनुसार,[२६२] अमीरखां को कुल मिलाकर २० लाख रुपया देना तय हुआ जिसमें से पाँच लाख रुपये पहिले ही दिये जा चुके थे, दो लाख रुपया तत्काल ही दिया गया और बाकी धनराशि रबी की फसल के बाद देना निश्चित हुआ। अमीरखां कुछ समय तक जोधपुर में ही ठहरा रहा। इस अवधि में उसका उद्देश्य मानसिंह को पदच्युत कर छत्रसिंह को राजसिंहासन पर बैठाना था।[२६३] उसने मानसिंह को अपने अधिकार में लेने की योजना बनायी पर वह सफल न हो सका।[२६४] दिसम्बर १८१५ में वह जोधपुर से चला गया।[२६५] इन्द्रराज सिंघवी की हत्या का और मारवाड़ के शासन पर अमीरखां के प्रभाव का विरोध हुआ। सिंघवी के भाई गुलराज ने बापूजी सिंधिया से सहायता माँगी।[२६६] दोनों ही २६ जनवरी १८१६ को जोधपुर पहुँचे।[२६७] अखेराज ने इनका सामना किया पर हार गया। उसे त्याग-पत्र देना पड़ा और उसके स्थान पर फतेहराज नियुक्त किया गया। १ फरवरी १८१६ की घोषणा के द्वारा महाराजा ने इन परिवर्तनों को स्वीकार किया।[२६८]

इस परिवर्तन से शासन और राजनीति में कोई महत्वपूर्ण सुधार नहीं हुआ। अमीरखां का स्थान बापूजी ने ले लिया और लूट-खसोट की क्रिया बनी रही। बापूजी एक ओर नयी सरकार से भारी रकम माँगता था, दूसरी ओर अमीरखां से पत्र-व्यवहार करता था।[२६९] बापूजी की गतिविधियाँ मानसिंह को पसन्द नहीं थीं।[२७०] परन्तु अगस्त १८१६ के एक पत्र से प्रतीत होता है कि उसे अप्रसन्न करने

की क्षमता वह नहीं रखता था।[२७१] सितम्बर-नवम्बर १८१६ में राजनैतिक प्रस्थायित्व ने एक बार पुनः अमीरखां और बापूजी को अवसर प्रदान किया कि वे अपने प्रभाव के गुटों का समर्थन करें।[२७२] नवम्बर १८१६ में दोनों जोधपुर पहुँचे।[२७३] जनवरी १८१७ में पिंडारी नेता चीतू ने अमीरखां को लिखा कि वह मारवाड़ के शासक पर दबाव डालकर उसके परिवार को वैसी ही शरण दिलाने के लिए प्रयास करे, जैसी उसने होल्कर को १८०५ में दी थी।[२७४] अमीरखां और बापूजी सिंधिया ने मारवाड़ को खूब लूटना प्रारम्भ किया।[२७५]

मराठों और पठानों की कार्यवाहियों से मानसिंह परेशान था। न उसमें शक्ति थी न प्रभाव ही जिससे कि उन पर नियन्त्रण किया जा सके। अतः वह समय-समय पर आंशिक रूप में उनकी धन लिप्सा को शांत करता रहता था।[२७६] दीवान गुलराज ने अमीरखां और बापूजी के सैनिकों की लूट को रोकने के लिए अजमेर स्थित सिंधिया के सूबेदार और सेनापति धनसिंह से सहायता की प्रार्थना की।[२७७] परन्तु इसके पूर्व कि धनसिंह अपने तोपखाने सहित मारवाड़ पहुँचे, जोधपुर में राजनैतिक उथल-पुथल हो गयी। ४ अप्रैल १८१७ को गुलराज की हत्या कर दी गयी।[२७८] फतेहराज बन्दी बना लिया गया।[२७९] अखेराज, शालिमसिंह और आयस भीमनाथ ने, जो कि उथल-पुथल के नेता थे, महाराज को गद्दी त्यागने को बाध्य किया।[२८०] १६ अप्रैल १८१७ को महाराजा ने शासन का भार अपने पुत्र छत्रसिंह को सौंप दिया।[२८१] युवराज ने अखेराज को अपना दीवान घोषित किया[२८२] तथा यह भी घोषणा की कि नयी सरकार मारवाड़ में सुधारों का युग प्रारम्भ करेगी।[२८३] इन सेवाओं के बदले में अमीरखां को पर्याप्त धन प्राप्त हुआ।[२८४]

(क) मराठा प्रभाव की इतिश्री (मारवाड़ ब्रिटिश संधि, ६ जनवरी १८१८)

प्रारम्भ से ही मानसिंह और ब्रिटिश सरकार के सम्बन्ध अच्छे नहीं हो सके थे। १८०३ में राठौड़ शासक ने एक संधि प्रस्तावित की थी, जिसे अंग्रेजों ने स्वीकार कर भी ली थी, पर बाद में मानसिंह ने उस पर स्वीकृति प्रदान नहीं की। अंग्रेज इसलिए भी नाराज थे कि उसने होल्कर के परिवार को अपने राज्य में शरण दी। अतः जब मानसिंह ने १८०५,[२८५] १८०७,[२८६] १८१२[२८७] और अन्त में १८१४[२८८] में अंग्रेजों से पुनः संधि करनी चाही तो यह कहकर अस्वीकार किया कि वे सिंधिया के साथ की संधि की धारा ८ के अन्तर्गत मारवाड़ में हस्तक्षेप करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।[२८९] १८१५ में अंग्रेज गवर्नर-जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज ने नयी नीति निर्धारित की। वह भारत में अंग्रेजी सत्ता को सर्वोच्च शक्ति बनाना चाहता था।[२९०] इसका स्वाभाविक परिणाम था—मराठों से युद्ध; क्योंकि वे ही ऐसी शक्ति थे जो समस्त उत्तरी व दक्षिणी भारत में अपना प्रभाव रखते थे। मराठों की एक शक्ति का स्रोत पिंडारी वर्ग था। अंग्रेजों ने पिंडारियों के विरुद्ध

सैनिक अभियान कर उनका अंत कर दिया। फिर उन्होने देशी राजाओ को अपनी ओर मिलाना शुरू किया। लार्ड हेस्टिंग्ज जान चुका था कि देशी राज्य मराठों के चंगुल से मुक्त होना चाहते थे।

ज्योंही लार्ड हेस्टिंग्ज मार्च १८१६ मे नेपाल–युद्ध से मुक्त हुआ उसने राजपूताना की ओर अपना ध्यान दिया।[२९१] अप्रेल मे बापूजी और उसके पिंडारी साथियों की मनमानी को रोकने के लिए मानसिंह ने अग्रेजी सहायता के लिए हेस्टिंग्ज को लिखा। गवर्नर जनरल इस शर्त पर सहायता देने को तैयार था कि जोधपुर शासक अंग्रेजो द्वारा निर्धारित नीति का स्वीकार करे।[२९२] मानसिंह ऐसी कोइ नीति स्वीकार करने को तैयार नही था, जिससे वह अंग्रेजो के अधीनस्थ शासक बन जाए।[२९३] परन्तु १८१६-१८१७ मे बापूजी और अमीरखां द्वारा मारवाड मे लूट-पाट एव १८१७ के प्रारम्भिक महीनो की राजनैतिक अराजकता ने महाराजा को [२९४] विवश किया कि वह अंग्रेजो की शर्तो पर सधि करे। दिल्ली स्थित अपने वकील आसोपा विशनराम को अंग्रेजो से सधि करने के लिए सम्पर्क करने के आदेश उसने भेजे।[२९५] अंग्रेज इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

इस आधार पर कि सिंधिया, पेशवा और रणजीतसिंह से सम्पर्क कर ब्रिटिश सरकार को उखाड फेंकने का प्रयत्न कर रहे थे, सिंधिया से हुई सधि को भग कर अंग्रेजो ने अपने को सधि की धारा ८ से मुक्त कर लिया।[२९६]

सधि सम्बन्धी अंतिम बातें तय करने हेतु रेजिडेण्ट मेटकाफ[२९७] आसोपा विशनराम से १८१७ में (अक्टूबर १८१७ मे) मिला।[२९८] वार्ता शिथिल ढग से चली।[२९९] जोधपुर की राजनैतिक स्थिति मे स्थायित्व नही था। महाराजा एक तरह से नजरबन्द था। युवराज ने सधि पर हस्ताक्षर करने के लिए विशनराम को कोई निर्देश नही भेजे।[३००] परन्तु कुछ सवैधानिक कठिनाइयों के दूर हो जाने के बाद दिसम्बर १८१७ मे वार्ता पुन. प्रारम्भ हुई।[३०१] जनवरी ६, १८१८ को मानसिंह और युवराज छत्रसिंह के सयुक्त नाम से यह सधि सम्पन्न हुई।[३०२]

मेटकॉफ और आसोपा विशनराम के बीच निम्न शर्तो पर सधि हुई।[३०३]

(१) माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी और महाराजा मानसिंह एव उसके उत्तराधिकारी के बीच मित्रता, सधि और स्वार्थों की एकता रहेगी तथा एक के मित्र और शत्रु दोनों के मित्र और शत्रु रहेंगे।

(२) जोधपुर राज्य और प्रदेश की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार का होगा।

(३) महाराजा मानसिंह और उसके उत्तराधिकारी ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता को मान्यता देंगे, उनके अधीनस्थ सहयोगी के रूप मे कार्य करेंगे और अन्य राज्यो और शासको से कोई सम्बन्ध नही रखेंगे।

(४) महाराजा और उसके उत्तराधिकारी बिना ब्रिटिश सरकार को सूचना दिये और स्वीकृति प्राप्त किये, किसी भी शासक या राज्य से पत्र-व्यवहार, वार्ता नहीं करेंगे। परन्तु मित्रो व सम्बन्धियों के साथ शांति-पूर्वक पत्र-व्यवहार होता रहेगा।

(५) महाराजा और उसके उत्तराधिकारी किसी पर आक्रमण नहीं करेंगे। यदि दुर्घटनावश किसी के साथ कोई मतभेद उत्पन्न हो जाए, तो उसे ब्रिटिश सरकार की मध्यस्थता व निर्णय के लिए प्रेषित करेंगे।

(६) जोधपुर राज्य, जो कर अब तक सिंधिया को देता आ रहा था, वह कर अब लगातार ब्रिटिश सरकार को दिया करेगा और सिंधिया तथा जोधपुर सरकार के बीच सभी प्रकार के समझौतो का अन्त समझा जाएगा।

(७) जैसाकि महाराजा न घोषणा की थी कि सिंधिया के अलावा जोधपुर राज्य द्वारा किसी अन्य को कर नही दिया जाता था और वह कर अंग्रेजो को दिया जाएगा। अतः यदि सिंधिया या अन्य कोई भी कर की मांग करेगा तो ब्रिटिश सरकार इस प्रकार की मांग का जवाब देगी।

(८) जब कभी मांग की जाएगी तो जोधपुर सरकार ब्रिटिश सरकार की सेवा के लिए १५०० अश्वारोही सैनिक देगी और जब कभी आवश्यकता होगी तो सिवाय उन सैनिको के जो देश के आतरिक प्रशासन के लिए आवश्यक हों, सम्पूर्ण सेना ब्रिटिश सेना का साथ देगी।

(९) महाराजा और उसके उत्तराधिकारी अपने देश के शासक बने रहेंगे और ब्रिटिश सरकार उनके राज्य को अपना क्षेत्राधिकार नहो बनाएगी।

(१०) दस धाराओ वाली सधि देहली म सम्पन्न हुई और चार्ल्स थीयोफिलस मेटकॉफ और व्यास विष्णुराम और व्यास उवेराम ने मोहर सहित हस्ताक्षर किये। उसकी पुन स्वीकृति इस तारीख (६ जनवरी १८१८) के छः सप्ताह के भीतर-भीतर महामहिम गवर्नर जनरल और राजराजेश्वर महाराजा मानसिंह बहादुर और जुगराज महाराजा कुंवर चतुरसिंह बहादुर द्वारा की जाएगी।

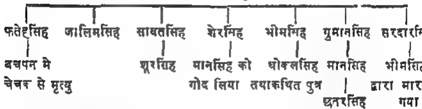
लार्ड हेस्टिंग्ज ने १६ जनवरी १८१८ को इस सधि पर पुन अपनी स्वीकृति प्रदान की।[३०४] इसके बाद इसे मानसिंह पास भेजा गया जो कि उस समय जोधपुर से पांच मील दूर मण्डोर मे निवास करता था। उसने इस समझौते के फारसी अनुवाद पर ९ फरवरी १८१८ को युवराज की उपस्थिति में हस्ताक्षर कर दिये।[३०५]

इस संधि से मारवाड पर सिंधिया के प्रभाव का अंत हो गया। जो कर अब तक सिंधिया को दिया जाता था वह अब से ब्रिटिश सरकार को दिया जाना तय हुआ। कर की राशि १०८००० रुपये निश्चित हुई।[306] इसके बाद यदि सिंधिया जोधपुर से बकाया धन राशि की मांग करे तो उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सरकार का हो गया। अमीरखां के प्रभाव का भी अंत हो गया। अंग्रेजों ने यह स्वीकार नहीं किया कि अमीरखां को जो धन राशि दी जाती थी वह कर था। उन्होंने जोधपुर के शासक को अधिकार दिये कि मारवाड में अमीरखां की जागीर पर पुनः अधिकार कर ले।[307] इस संधि के फलस्वरूप जोधपुर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधीनस्थ और संरक्षित राज्य बन गया। सर्वोच्च शक्ति द्वारा मांगे जाने पर जोधपुर शासक ने १५०० अश्वारोही सैनिक देना स्वीकार किया। सिंधिया के अधीन जोधपुर कर देने वाला राज्य ही था। शासक को पूर्ण स्वतन्त्रता थी कि वह किसी भी राज्य के साथ संधि कर सकता था। सिंधिया को लगातार कर की वसूली की चिंता रहती थी।[308] दूसरी ओर ईस्ट इण्डिया कम्पनी से हुई संधि ने जोधपुर के शासक को न सिर्फ अधीनस्थ स्थिति में ला दिया बल्कि उसके वैदेशिक नीति सम्बन्धी अधिकार भी छीन लिए। बिना ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति के जोधपुर शासक किसी भी राज्य या शासक से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रख सकता था। यद्यपि संधि की धाराओं में कोई भी ऐसी धारा नहीं थी जिससे यह स्पष्ट हो कि ब्रिटिश सरकार जोधपुर राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप कर सकती थी, परन्तु यह सन्देह हमेशा बना रहा कि यदि ऐसी स्थिति पैदा हो गयी जिससे कि उनके राज्य के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप आवश्यक हुआ तो ब्रिटिश सरकार शांत दर्शक नहीं रहेगी।[309]

संधि की पुष्टि के कुछ दिन बाद २३ मार्च १८१८ को छत्रसिंह की मृत्यु हो गयी।[310] प्रतेचंद और सालिमसिंह को भय हुआ कि महाराजा को पुनः शक्ति प्राप्त हो जाएगी। अतः उन्होंने धोकलसिंह को जो कि इन दिनों दिल्ली में रहता था, जोधपुर की गद्दी पर बैठाने का षडयंत्र रचा।[311] मानसिंह भी सजग था। उसने समय में ओक्टर जनरल आक्टर लूनी और मुंशी महमूद बाज के माफत दिल्ली रेजिडेंट से २३ जुलाई १८१८ को सम्पर्क स्थापित किया और जोधपुर पर अपने अधिकार की सुरक्षा चाही।[312] अक्टूबर के प्रारम्भ में उसने बरकतअली की सहायता से रेजिडेन्ट पर दबाव डाला।[313] इस पर आक्टर लूनी के नेतृत्व में एक अंग्रेजी सेना ६ अक्टूबर को जोधपुर की ओर रवाना हुई।[314] नवम्बर में जोधपुर की गद्दी पर मानसिंह का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।[315]

सन्दर्भ

१ यह वंशावली राठौड़ थानेश्वर वंशावली, पृ० ४३ बस्ता नं० २८ पर आधारित है।



२ जोध-येथील २०, २१, २४, २६; मारवाड री ख्यात (३) पृ० ६६-१०३

३ भीमसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी ६, वि० सं० १८४६ । १६ जुलाई १७९३ (अ०ब०नं० ४, पृ० ५० जोध०), जोध० येथील २६

४. जोधपुर येथील १२६; मारवाड री ख्यात ग्रन्थ (३) पृ० १२१, १२२, मानसिंह का महाराजा सूरतसिंह को खरीता, चैत्र सुदी ४ वि० सं० १८५४। २० मार्च १७९८; मानसिंह का महाराणा भीमसिंह (उदयपुर को) खरीता वैशाख बदी १, वि० सं०१८५४। १ अप्रेल १७९८ (वीर-विनोद २, पृ० १५७४)

५ भीमसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी ६, वि० सं० १८४६ । १७ जुलाई १७९३ (अ०ब०नं० ४ पृ० ५० जोध०)

६. भीमसिंह का अम्बाजी इंग्ले को पत्र, भाद्रपद बदी १, वि० सं० १८५० । २२ अगस्त १७९३ (अ०ब०नं० ४, पृ० ७२ जोध०)

७ भीमसिंह का शिवाजी नाना को पत्र, भाद्रपद बदी ७ वि० सं० १८५० । २८ अगस्त १७९३ (अ०ब०नं० ४ पृ० १४६ जोध०)

८ भीमसिंह का महादजी, जीवाजी और गोपाल भाऊ को पत्र, फाल्गुन बदी ३० वि०सं० १८५० । १ मार्च १७९४ (अ०ब०नं० ४, पृ० ५१ व १२४ जोध०); जोधपुर येथील २६, २७; मारवाड री ख्यात ३, पृ० १२०-१२१

९ जोधपुर येथील २७

१० उपर्युक्त २८

११ भीमसिंह का नारायण राव प० को पत्र, आश्विन वदी ४ वि० सं० १८५१। १३ सितम्बर १७९४ (अ०ब०न० ६, पृ० १२७ जोध०)

१२ जोधपुर वैयील २७

१३ उपर्युक्त

१४ उपर्युक्त २६

१५ भीमसिंह का लक्ष्मण अनन्त को पत्र, पौष सुदी ६, वि०सं० १८५१। ३० दिसम्बर १७९४ (अ०ब०न० ४, पृ० १०८ जोध०)

१६ उपर्युक्त

१७ भीमसिंह का प्रतापसिंह को खरीता, ज्येष्ठ सुदी ४ वि० सं० १८५३। [illegible] १७९६ (जय०), मारवाड़ री ख्यात ३, पृ० १९१

१८. घाणेराव, देसूरी के द०पू० में ४ मील दूर २५, [illegible] पर है। भीमसिंह का प० लक्ष्मण अनन्त को पत्र, [illegible] ३, वि०सं० १८५२। १४ नवम्बर १७९५ (अ०ब०न० ६, पृ० ११० [illegible]) [illegible] का दौलतराव सिंधिया को पत्र, कार्तिक सुदी १६, वि०सं० [illegible], २५ नवम्बर १७९६ (अ०ब०न० ४ पृ० ५३ जोध०), [illegible] (८) ३६

१९ पी० आर० सी० (८) ३७

२० उपर्युक्त, (८) ७४-७६, १९८

२१. वीर-विनोद (२), पृ० १५७

२२. पी० आर० सी० (८) ३७

२३ उपर्युक्त ३६

२४ पब्लिक विभाग रिकार्ड, ग्रन्थ १५ (इण्डिया आफिस [illegible], जनवरी १७९५, जून १७९७, पृ० ३११)

२५ ओझा-राजपूताने का इतिहास, ग्रन्थ ४, भाग २, पृ० [illegible], वीर विनोद (२), पृ० १५७४

२६ भीमसिंह का अम्बाजी इंगले को पत्र, आषाढ़ वदी [illegible], वि०सं० १८५५। [illegible] जून १७९९ (अ०ब०न० ४, पृ० ७३, जोध०)

२७ उपर्युक्त, पी० आर० सी० (न० ८) १३२

२८ किशनगढ़ शासक का भीमसिंह को खरीता, [illegible] ३ एवम् आश्विन वदी, वि०सं० १८५६। ५ जुलाई व २२ सितम्बर [illegible], [illegible] फाइल नं० ८/११, खरीता नं० ४ व ५ [illegible]

२९ पी० आर० सी० (८) १६८

३०. पी०आर०सी० (९) ८

३१ उपर्युक्त (११) ११

३२ उपर्युक्त १४।

३३-३४-३५. उपर्युक्त (१४, १७)
३६ उपर्युक्त (१६), १६ बी०
३७ भीमसिंह का लक्ष्मण अनत को पत्र, आषाढ बदी ६, वि०स० १८५६। १२ जून १८०० (अ०ब०न० ४, पृ० १११ (ब) जोध०)
३८. उपर्युक्त—पी०आर०सी० (६) १६ बी०
३९ पी०आर०सी० (६) १६
४०. उपर्युक्त २१; अजमेर और जोधपुर का इतिहास (हस्तलिखित) पृ० १५४
४१ आषाढ सुदी १४, वि०स० १८५६। ५ जुलाई १८०० का पत्र (खतोकिताब फाइल न० ६ डोलिया कोठार–जोध०)
४२ पी०आर०सी० (६)–२४,
अर्जी फाइल न० ६ (डोलिया का कोठार–जोध०), अजमेर और जोधपुर का इतिहास (हस्तलिखित) पृ० १५४
४३ मेलोनी ख्यात, पृ० ११, बस्ता न० ४०, जोध०, मारवाड री ख्यात (३), पृ० १३०
४४ मारवाड री ख्यात (३) पृ० १३०
४५ मारवाड री ख्यात (४), पृ० १-५
४६. एम०एम० बेनेजली-डिस्पेचेज ग्रंथ ३, पृ० १६६-१७०, २३५, २४१ २४२, पी०आर०सी० (८) १२५
४७ भीमसिंह का दौलतराव को पत्र आश्विन सुदी ३, वि० स० १८७०। १६ सितम्बर १८०३ (अ०ब०न० ४, पृ० ५५ जोध०)
४८ पी०आर०सी० ग्रन्थ (६) १४
४९ हकीकत बही न० ८, पृ० ४४४
५०-५१ उपर्युक्त, पृ० ४५०
५२ जसवतराव होल्कर को मानसिंह का कौलनामा, माघ सुदी ५, वि०स० १८६०, १७ जनवरी १८०४। (अ०ब०न० ५, पृ० १०५ जोध०)
५३ मानसिंह का जसवतराव होल्कर को कौलनामा, फाल्गुन बदी ६, वि०स० १८६०/२ फरवरी १८०४ (अ०ब०न० ५, पृ० १०५ जोध०)
५४. भण्डारी गगाराम का जसवतराव होल्कर को पत्र, चैत्र बदी १३, वि०स० १८६०। ६ अप्रेल १८०४ (अ०ब०न० ५, पृ० १०५ जोध०)
५५-५६ एच०एम०आई० एस० (२) ७०
५७ हकीकत बही न० ६, पृ० ३-४ जोध०
५८ उपर्युक्त, बाद मे प० बालाजी, दीवान, दुल्हराज और प० त्र्यम्बकराव भी इनसे आ मिले। (हकीकत बही न० ६, पृ० २२)
५९ उपर्युक्त, पृ० ३

६० उपर्युक्त, पृ० २। जोधपुर के उत्तर में ६ मील दूर है।
६१ उपर्युक्त पृ० ३-४, ३७; मारवाड री ख्यात ग्रन्थ ४, पृ० १४
६२ हकीकत बही नं० ६, पृ० ३७
६३ उपर्युक्त, पृ० २२, पी०आर०सी० (११), १८५
६४ हकीकत बही नं० ६, पृ० ३-४ जोध०।
६५. गवर्नर जनरल के सेक्रेट्री का मालकम, सिंधिया के साथ रेजोडेंट, ६ मई १८०४ का पत्र, एफ०एस० ६, सितम्बर १८०८, नं० ६, प्रिंसेप—हिस्ट्री ऑफ पोलीटीकल एण्ड मिलट्री ट्रांजेक्शन इन इण्डिया, ग्रन्थ पृ० १,७
६६. पी०आर०सी० (११), १३४
६७ एम०एम० वेलेजली डिस्पेचेज (३), पृ० ५६३
६८ ६६ पी० आर० सी० (११) १३४ मानसिंह का दौलतराव को पत्र, पौष सुदी ८, वि० स० १८६२। २६ दिसम्बर १८०५ (अ०ब० नं० ६-७ जोध०)
७० माल्कम : मेमोयर्स ऑफ सेण्ट्रल इण्डिया (१), पृ० ३३०, मारवाड री ख्यात (४) पृ० २७
७१. जनवरी ६, १८०४ को महाराणा ने कृष्णा की शादी मानसिंह से करने की इच्छा प्रकट की, जिसे मानसिंह ने स्वीकार किया परन्तु जब मानसिंह ने जून में राणा के मित्र घाणेराव ठाकुर पर आक्रमण किया तो वह उसका विरोधी हो गया।
७२ हिस्टोरिकल एसेज में कानूनगो का लेख 'मेमोयर्स ऑफ अमीरखा पिंडारी' लेखक बसावनलाल, पृ० १३१
७३ मारवाड री ख्यात (४) पृ० २७-२८; माल्कम (१), पृ० ३३१, टॉड (२), पृ० १०८२
७४ पी०आर०सी० (११) १३६; विल्सन ग्रन्थ ७, पृ० ६०
७५ ७६ हकीकत बही नं० ६, पृ० ४८
७७ मानसिंह का तांतिया माधोराव को पत्र, माघ सुदी १२, वि० स० १८६२। ३१ जनवरी १८०६ (अ०ब०नं० ५, पृ० ११६ जोध०)
७८. मानसिंह का दौलतराव को पत्र, माघ सुदी ६, वि०स० १८६२, २८ जनवरी १८०६ (अ०ब० नं ५, पृ० ३-४ जोध०)
७९ पण्डित बालाजी द्वारा प्राप्त कर की रसीद (सिंधिया द्वारा भेजी गयी) चैत्र बदी ७, वि०स० १८६२। ११ मार्च १८०६ (अ०ब०नं० ५, पृ० ६६ जोध०)
८०. मानसिंह का शिरजीराव घाटका को पत्र, फाल्गुन सुदी ३, वि० स० १८६२। २१ फरवरी १८०६ (अ०ब०नं० ५, पृ० ६४, जोध०)
८१ उपर्युक्त
८२ मारवाड री ख्यात (४) पृ० २७-२८; टॉड ग्रन्थ २, पृ० १०८३; विल्सन, ग्रन्थ ७, पृ० ७१

८३ पी०आर० सी० (१) १६२
८४-८५-८६-८७ उपर्युक्त
८८ उपर्युक्त १५६
८९ उपर्युक्त, मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० २६, विल्सन (७), पृ० ६१
९० पी०आर०सी० (११) १६८, मालकम (१) पृ० २४१
९१ पी० आर० सी० (११) १६८
९२ उपर्युक्त १७८
९३ उपर्युक्त १६८
९४ पी०आर०सी० (११) भूमिका, पृ० १४, मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० ३०-३१, असल की चिट्ठी की फाइल नं० ७ (कोठियों का कोठार, जोध०); तथाकथित पुत्र धोंकलसिंह भीमसिंह की मृत्यु के बाद पैदा हुआ था।
९५ हकीकत बही नं० ६, पृ० ७३
९६ हकीकत बही नं० ६, पृ० ७३, प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीरखां, पृ० २६८
९७ हकीकत बही नं० ६, पृ० ७४
९८ पी०आर०सी० (११), २०३ मानसिंह के साथ होल्कर का परिवार भी था। अक्टूबर में वह जोधपुर लौट आया।
९९ पी०आर०सी० (११), १८३, हकीकत बही नं० ६, ७७, ७८, ७६, प्रिन्सेप, मेमोयर्स आफ अमीरखां पृ० २६८-२६६
१०० हकीकत बही नं० ६, पृ० ७८
१०१ उपर्युक्त, प्रिन्सेप, पृ० २६६
१०२ पी०आर०सी० (११), १८५; होल्कर ने यह मानने से इन्कार कर दिया कि उदयपुर से प्राप्त कर-राशि का आधा भाग वह छोड़ दे।
१०३. पी०आर०सी० (११), १८५, २०१ (जो धन-राशि तय हुई थी वह १५ लाख रुपये थी)
१०४ ठाकुरदास का दिल्ली स्थित ब्रिटिश रेजिडेन्ट को पत्र, १२ जनवरी १८०७, एफ० एम० २८ जनवरी १८०७ नं० ४, याददाश्त आषाढ़ सुदी ११, वि० सं० १८६२। २६ जून १८०६, (खरीता बही नं० १२, पृ० ४८-४६, जोध०) मानसिंह की पुत्री की शादी जगतसिंह से और जगतसिंह की बहन की शादी मानसिंह से तय हुई।
१०५ ए० सेटोन का गवर्नर जनरल के सेक्रेटरी को पत्र, १२ जनवरी १८०७ एफ एम० २८ जनवरी १८०७ नं० १३ अ०।
१०६ पी०आर०सी० (११), १६७, २०४
१०७. उपर्युक्त, प्रिन्सेप मेमोयर्स ऑफ़ अमीरखां, पृ० ३०२-३०३
१०८ पी० आर०सी० (११), २०४
१०९ उपर्युक्त २०६

११० उपर्युक्त २०८
१११ उपर्युक्त २०४, २११
११२ उपर्युक्त २०४, २१२, प्रिन्सेप , मेमायर्स ऑफ अमीरखां, पृ० ३०७
११३ पी०आर०सी० (११) भूमिका, पृ० १५, (११), २१०, मालकम १, पृ० ३३३
११४ पी०आर०सी० (११), २१६; प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीरखां, पृ० ३१२
११५ पी०आर० सी० (११), २१६
११६ उपर्युक्त, २०४
११७ उपर्युक्त २०८
११८ मानसिंह का जसवन्तराय होल्कर को पत्र, पौष सुदी १, वि० सं० १८६३। २६ दिसम्बर १८०६ (अ०व०न० ४, पृ० १०२)
११९ मा० सिंह का यशवन्तराव को पत्र, पौष बदी ८, १८६३। १ जनवरी १८०७ (अ०व०न० ५, पृ० १०३, जोध०)
१२० १२१ पी०आर०सी० (११) २०६
१२२ उपर्युक्त २१३
१२३-१२४ ए० सेटोन का गवर्नर-जनरल के सेक्रेटरी को पत्र, १२ जनवरी १८०७ एफ० एम० २६ जनवरी १८०७ न० १३ ए०
१२५ राय रामसिंह, जयपुर के वकील की दिल्ली स्थित ब्रिटिश रजीडेण्ट को अर्जी (७ फरवरी १८०७ को प्राप्त हुई। एफ० एस० १२ जनवरी १८०७ न० ६७)
१२६ ए० सटोन का एन० बी० एडमोंस्टन को पत्र, २० जनवरी १८०७ एफ० पी० ५ जनवरी १८०७ न० १२७
१२७ १२८ उपर्युक्त को पत्र १५ जनवरी १८०७, एफ०पी० २६, जनवरी १८०७ न० ३२
१२९-१३२ उपर्युक्त को पत्र, २९ जनवरी १८०७, एफ०बी० १२ फरवरी १८०७ न० ६६ तथा १० फरवरी १८०७, एफ०पी० २६ फरवरी १८०७ न० २९
१३३ ए० सेटोन का एन० बी० एडमोल्स्टन को पत्र, १० फरवरी १८०७, एफ० पी० २६ फरवरी १८०७ न० २६
१३४ पी०आर०सी० (११), २२४
१३५ ए० सटोन का एन० बी० एडमोंस्टन को पत्र, ६ मार्च १८०७, एफ० पी० १६ मार्च १८०७ न० २१, पी०आर०सी० (१) २२४
१३६ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोंस्टन को पत्र २० फरवरी १८०७, एफ०पी० १२ मार्च १८०७ नं० २६
१३७ १३८ उपर्युक्त का पत्र, १२ मार्च १८०७ एफ० पी०। १२ मार्च १८०७ न० ७८ वास्तव में अंग्रेज यह चाहते थे कि राजपूत शासकों को अमीरखां गूढ़ सूट। अमीरखां का इस प्रकार का आचरण उनके राज्य के लिए सुरक्षा

समभी गयी। (बी० डी० बसु , राइज ऑफ क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया) ग्रन्थ ४, पृ० २०, १६८

१३६ ए० सेटोन का एडमोन्स्टन को पत्र १ मार्च १८०७ एफ० पी० १६ मार्च १८०७ न० ३

१४० उपर्युक्त को पत्र २३ मार्च १८०७, एफ० पी०, ६ अप्रेल, १८०७ न० २५, पी०आर०सी० (११), २२५

१४१ युद्ध में मानसिंह अपने कैम्प में निजी खाने का सामान व इष्ट देवता श्रीनाथजी आदि भी साथ रखता था। भागते हुए वह इन्हें साथ ले जाना भूल गया।

१४२ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, २३ मार्च १८०७, एफ० पी० ६ अप्रेल १८०७ न० २५, पी०आर०सी० (११), २२५

१४३ पी०आर०सी० (११), २२७

१४४ उपर्युक्त २२८

१४५ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, २४ अप्रेल १८०७, एफ०पी० ७ मई १८०७, न० २२, पी०आर०सी० (११), २३०

१४६ उपर्युक्त

१४७ ए० सेटोन को एन० बी० एडमोन्स्टन का पत्र, ११ अप्रेल, १८०७, एफ०पी० ३० अप्रेल १८०७ न० २८ , सवाईसिंह का बुधसिंह को पत्र, बैसाख वदी १४, वि०स० १८६७, २६ अप्रेल १८०७ (अमल की चिट्ठी की फाइल न० ७) (ठाकुरों का कोठार, जोधपुर)

१४८ पी०आर०सी० (११) २३०

१४९ पी०आर०सी० (११), २३२

१५० ख्यात (रवन्ना बही) न० २, पृ० २, जोध०, ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, ११ अप्रेल, १८०७, एफ०पी० ३० अप्रेल १८०७ न० २८

१५१ पी०आर०सी० (११) २३१

१५२ १५३ सटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, ६ मार्च १८०७ एफ०पी १६ मार्च १८०७ न० २१, पी०आर०सी० (११), २२५

१५४ ए० सेटोन का एन० बी० एडमोन्स्टन को पत्र, ६ अगस्त १८०७, एफ०पी० १ सितम्बर १८०७ न० ६ अ

१५५ उपर्युक्त को पत्र २४ मई १८०७ एफ०पी० ११ जून १८०७ न० १६: पी०आर०सी० ग्रन्थ (११) २३२

१५६ उपर्युक्त को पत्र, ६ अगस्त १८०७, एफ०पी०, १ सितम्बर १८०७ न० ६, व प्रिन्सेप—मेमोयर्स ऑफ अमीरखां, पृ० ३१६, इनके के आते ही जयपुर-

शासक ने अमीरखां के प्रतिदिन हाथखर्च के ५००) रु० बन्द कर दिये थे।

१५७ खास रुक्का बही नं० २, पृ० ३ (जोध०): पी०आर०सी० (११) २३५; मालकम ग्रन्थ १, ३३८

१५८ पी०आर०सी० (११) २३५-२३६

१५९ मानसिंह का शिरजीराव घाटगा को पत्र आश्विन बदी १३, वि०सं० १८६४/२९ सितम्बर १८०७ (म०ब०नं० ५, पृ० ६५, जोध०)

१६० उपर्युक्त खास खाता बही नं० २, पृ०, ३, पी०आर०सी० (१), २३७

१६१ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र ९ अगस्त १८०७ एफ०पी० ८ सितम्बर १८०७ नं० ६ ए०

१६२ पी०आर०सी० (११) २३७

१६३ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, २१ अगस्त १८०७, एफ०पी० ८ सितम्बर १८०७, नं० ४३ ए०

१६४ उपर्युक्त, टॉड (२), पृ० १०८७

१६५ खास रुक्का बही नं० २, पृ० ७ (जोध०)

१६६ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र ८ अक्टूबर १८०७, एफ० पी० २६ अक्टूबर १८०७ नं० २०, पी०आर०सी० (१) २३८

१६७ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, ८ अक्टूबर १८०७, एफ०पी० २६ अक्टूबर १८०७ नं० २०

१६८ उपर्युक्त

१६९ पी०आर०सी० (११), २४३

१७० हकीकत बही नं० ९, ८७ जोध०

१७१ हकीकत बही नं० ९, पृ० ९१-९२

१७२ पी०आर०सी० (११), २४३

१७३ उपर्युक्त २३६

१७४ मालकम 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ग्रन्थ १, पृ० २३४; प्रिन्सेप; मेमोयर्स ऑफ अमीरखां, पृ० २३४; विल्सन ग्रन्थ ७, पृ० ६४, फुटनोट ३

१७५ हकीकत बही नं० ९, पृ० ८६

१७६-१७७ हथ बही नं० ३ पृ० ४२-४३

१७८ हकीकत बही नं० ९, पृ० ९१

१७९ मानसिंह का बापूजी सिंधिया को पत्र, पौष सुदी २, वि० सं० १८६४। ३० दिसम्बर १८०७ (म०ब०नं० ५, पृ० ४२, जोध०)

१८० हकीकत बही नं० ९, पृ० ९३

१८१ पी०आर०सी० (११), २४३

१८२. उपर्युक्त; अमीरखां, अपनी आत्मकथा में लिखता है कि उसने बापूजी को आसोप की ओर भेज देने का निश्चय किया। प्रिन्सेप : मेमायर्स ऑफ अमीर खां पृ० ३५१।
१८३. हकीकत बही नं० ६, पृ० १०१, मानसिंह का शिरजीराव को पत्र, चैत्र सुदी ५, वि०सं० १८६४। १ अप्रेल १८०८ (अ०ब०नं० ५, पृ० जोध०), पी० आर०सी० (११). २५१
१८४. पी०आर०सी० (११), २५१
१८५. उपर्युक्त; मानसिंह का गवर्नर-जनरल को पत्र, ६ जून १८०८ एफ० पी०, २० अगस्त १८०८ नं० ५८
१८६. हकीकत बही नं० १०६-१११
१८७. उपर्युक्त; पी०आर०सी० (११) २६०-२६२
१८८. पी०आर०सी० (११), २६०-२६२
१८९. उपर्युक्त २६१; मानसिंह का दौलतराव को पत्र, भाद्रपद सुदी ३, वि०सं० १८६५। २४ अगस्त १८०८ (अ०ब०नं० ५, पृ० १० जोध०)
१९०. पी०आर०सी० (११) २६१, मानसिंह का शिरजीराव घाटगे को पत्र, पौष सुदी ४, वि०सं० १८६५। २१ दिसम्बर १८०८, (अ०ब०नं० ५, पृ० ६६, जोध०)
१९१. पी०आर०सी० (११) २८६, २९०, (१४), ११
१९२. उपर्युक्त २८६, २९० (१४) १०
१९३ उपर्युक्त, (११), २८७
१९४. उपर्युक्त २८५
१९५ उपर्युक्त २८६
१९६. उपर्युक्त, २९०; हकीकत बही नं० ११, पृ० १६२ जोध०
१९७ पी०आर०सी० (१४) १
१९८. इन्द्रराज का राय रतनलाल को पत्र, श्रावण सुदी १४, वि० सं० १८६६। २४ अगस्त १८०९ (कपड़-अय०), पी०आर०सी० (१४)–१२
१९९. पी०आर०सी० (१४) १८
२००. उपर्युक्त (११), २९० (१४) १
२०१. उपर्युक्त (१४) १
२०२. उपर्युक्त (११), २९०
२०३. पी०आर० सी० (१४) ४
२०४. उपर्युक्त १८
२०५ उपर्युक्त १९
२०६. उपर्युक्त २०, २१

२०७ ए० मेटोन का एल०बी० एडमान्स्टन को पत्र, ६ जून १८१०. एफ० पी० २१ जून १८१०, न० ४२

२०८. पी०मार०सी० (१४), ३०

२०९-२१० उपर्युक्त; मारवाड़ री ख्यात (४), पृ० ५८; वीर-विनोद (१), पृ० १७३८-१७३९ टॉड (ग्रन्थ-१, पृ० ५३९-५४१) और प्रिन्सेप (मिमोयर्स ऑफ अमीरखां, पृ० ३९९) के अनुसार कृष्णा की हत्या में मानसिंह का कोई हाथ न था।

२११. पी०मार०सी० (११) भूमिका, पृ० १४

२१२. उपर्युक्त (१४) २७, अमीरखां को नावां में ३ लाख की आय की जागीर दी गयी।

२१३ उपर्युक्त ३४

२१४ पी०मार०सी० (१४) ११५

२१५. उपर्युक्त ५९, ११५

२१६. टॉड (२), पृ० १०६१ ,

२१७ मानसिंह का अमीरखां को पत्र, फाल्गुन सुदी १, वि०सं० १८६७/२४ फरवरी १८११ (म०व०न० ५, पृ० १२० जोध०)

२१८ मेटकाफ का जे० एडम्स को पत्र, ७ नवम्बर १८११, एफ० पी० नवम्बर २९, १८११ न० १६

२१९ पे०द० का (४१), ५०

२२० पी०मार०सी० (१४), १२८

२२१. उपर्युक्त १३६

२२२. पी०मार०सी० (१४), १३६

२२३. मेटकॉफ का पत्र, जे० एडम्स को, २८ अप्रेल १८१३, एफ० पी० १५ मई १८१३ न० १७

२२४. पी०मार०सी० १४, पृ० २२६

२२५. उपर्युक्त (१४), १७१

२२६ मानसिंह का दौलतराव सिंधिया को पत्र, माघ बदी १०, वि० सं० १८७० । १६ जनवरी १८१४ (म०व०न०५, पृ० १६ जोध०)

२२७. उपर्युक्त पत्र, फाल्गुन सुदी ७, वि०सं० १८७० । २० फरवरी १८१४ (म०व०न० ५, पृ० १६)

२२८-२२९ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, ३ अप्रेल १८१४, एफ०पी० २२ अप्रेल १८१४, न० ११

२३०. पी०मार०सी० (१४), १३६

२३१. उपर्युक्त २२३, २२५, २२५ए

२३२ मानसिंह का मोहम्मदशाह को पत्र, पोष वदी ५, वि०सं० १८७१ । ३१ दिसम्बर १८१५ (प्र०व०न० ५, पृ० १४० जोध०)

२३३ उपर्युक्त को पत्र , वैशाख वदी १, वि०सं० १८७१ । २४ अप्रेल, १८१५ (प्र०व०न० ५, पृ० १४१-१४२ जोध०)

२३४ हकीकत बही नं० १०, पृ०३५

२३५ मानसिंह का मोहम्मद शाह को पत्र, वै० वदी १, वि० सं० १८७१ । २४ अप्रेल, १८१५ (प्र०व०नं० ५, पृ० १४१-१४२)

२३६. पी०आर०सी० (१४), २२३, २२५, २२५ ए०, प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीर खा पृ० ४१२

२३७-२३८ मेमोयर्स ऑफ अमीरखा, पृ० ४३२; मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७०

२३९ हकीकत बही नं० १०, पृ० ५८

२४० हकीकत बही नं० १०, पृ० ७२, पी०आर०सी० नं० १४, २२५ ए०, इसी बीच मोहम्मदशाह की मृत्यु हो गयी थी ।

२४१ हकीकत बही नं० १०, पृ० ७८

२४२-२४३ उपर्युक्त, पृ० ८०

२४४ उपर्युक्त, पृ० ८६, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२०-१२१, बस्ता न ४०

२४५ हकीकत बही नं० १०, पृ० ८४

२४६ मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० ११५-११६, बस्ता नं० ४०, मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७३; प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीरखा, पृ० ४३३

२४७ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५, नं० १६, प्रिन्सेप . मेमोयर्स ऑफ अमीरखा पृ० ४३४, विल्सन (८), पृ० १२६

२४८ हकीकत बही नं० १०, पृ० ८४

२४९ उपर्युक्त

२५० मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०पी० १३ जनवरी १८१६, नं० २७

२५१ मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२२, बस्ता नं० ४०, मारवाड री ख्यात ग्रन्थ ४, पृ० ७३, टॉड (२), पृ० १०६१

२५२ पी०आर०सी० (१४) २४३

२५३ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५ नं० १४

२५४ हकीकत बही नं० १०, पृ० ८०-८८, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२३, बस्ता नं० ४०, मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ० पी०, १० नवम्बर १८१५ नं० १४

२५५ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५, नं० १६
२५६ हकीकत बही नं० १०, पृ० ८८; मेटकॉफ के० जे० एडम्स को दो पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ० पी० १० नवम्बर १८१५ नं० १४ तथा २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५ नं० १६
२५७ हकीकत बही नं० १६ पृ० ८६
२५८ मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२४, बस्ता म ४०, टॉड (२), पृ० ८३०, १०११, विल्सन (८) पृ० १२७
२५९-२६०. मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२५, बस्ता नं० ४०, जोध०
२६१ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ नवम्बर १८१५ एफ०पी० २५ नवम्बर १८१५, नं० ३१
२६२ पी०आर०सी० (१४), २४३
२६३-२६४ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०पी० १३ जनवरी १८१६, नं० २७
२६५ मारवाड़ री ख्यात (४), पृ० ७३-७४
२६६ दौलतराव सिंधिया का जयपुर के जगतसिंह को पत्र, वि०सं० १८७३। १८१६ (रापह-जय०)
२६७. हकीकत बही नं० ६, पृ० ६४
२६८ उपर्युक्त, मारवाड़ री ख्यात (४), ७३-७४
२६९. पी०आर०सी० (१४), पृ० ७३-७४
२७० क्लोक का जे० एडम्स को पत्र ३१ मई १८१६, एफ०एस० १५ जून १८१६, नं० १०; पी०आर०सी० (१४), २७७, २८२
२७१ मानसिंह का बापूजी सिंधिया को पत्र, भाद्रपद बदी ३० वि० सं० १८७३। २३ अगस्त १८१६ (ख०व०नं० ५, पृ० ४६ जाध०)
२७२ हकीकत बही नं० १०, १०७ व ११०
२७३ पी०आर०सी० (१४), २६२
२७४ पी०आर०सी० (१४), ३६७-३६८
२७५ मानसिंह का दौलतराव को पत्र, फाल्गुन सुदी १२ वि०सं० १८७३। २८ फरवरी १८१७ (ख०व०नं० ५, पृ० १७ जोध०), पी०आर०सी० (१४), ३६८
२७६ उपर्युक्त, पी०आर०सी० (१४), ३०५
२७७ पी०आर०सी० (१४), ३२१
२७८-२७९ हकीकत बही नं० १०, पृ० नं० १७; पी०आर०सी० (१४), ३११, मारवाड़ री ख्यात (४), पृ० ७५-७८
२८० मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२५, बस्ता नं० ४०

२३२ मानसिंह का मोहम्मदशाह को पत्र, पौष वदी ५, वि०स० १८७१ । ३१ दिसम्बर १८१५ (प्र०व०न० ५, पृ० १४० जोध०)

२३३ उपर्युक्त को पत्र, वैशाख वदी १, वि०स० १८७१ । २४ अप्रेल, १८१५ (प्र०व०न० ५, पृ० १४१-१४२ जोध०)

२३४ हकीकत बही न० १०, पृ०३५

२३५ मानसिंह का मोहम्मद शाह को पत्र, वै० वदी १, वि० स० १८७१ । २४ अप्रेल, १८१५ (प्र०ब०न० ५, पृ० १४१-१४२)

२३६ पी०आर०सी० (१४), २२३, २२५, २२५ ए०, प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीर खा पृ० ४१२

२३७-२३८ मेमोयर्स ऑफ अमीरखा, पृ० ४३२; मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७०

२३९ हकीकत बही न० १०, पृ० ५८

२४० हकीकत बही न० १०, पृ० ७२, पी०आर०सी० न० १४, २२५ ए०, इसी बीच मोहम्मदशाह की मृत्यु हो गयी थी।

२४१ हकीकत बही न० १०, पृ० ७८

२४२-२४३ उपर्युक्त, पृ० ८०

२४४ उपर्युक्त, पृ० ८६, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२०-१२१, बस्ता न ४०

२४५ हकीकत बही न० १०, पृ० ८४

२४६ मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० ११५-११६, बस्ता न० ४०, मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७३; प्रिन्सेप, मेमोयर्स ऑफ अमीरखा, पृ० ४३३

२४७ मेटकॉफ का जे० एडम्स का पत्र, २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५, न० १६, प्रिन्सेप - मेमोयर्स ऑफ अमीरखा पृ० ४३४; विल्सन (८), पृ० १२६

२४८ हकीकत बही न० १०, पृ० ८४

२४९ उपर्युक्त

२५० मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०पी० १३ जनवरी १८१६, न० २७

२५१ मुडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२२, बस्ता न० ४०; मारवाड री ख्यात ग्रन्थ ४, पृ० ७३, टॉड (२), पृ० १०६१

२५२ पी०आर०सी० (१४) २४३

२५३ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५ न० १४

२५४ हकीकत बही न० १०, पृ० ८०-८८; मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२३, बस्ता न० ४०, मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ० पी०, १० नवम्बर १८१५ न० १४

२५५ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५, नं० १६

२५६ हकीकत बही नं० १०, पृ० ८८; मेटकॉफ के० जे० एडम्स को दो पत्र, १७ अक्टूबर १८१५, एफ० पी० १० नवम्बर १८१५ नं० १४ तथा २५ अक्टूबर १८१५, एफ०पी० १० नवम्बर १८१५ न० १६

२५७ हकीकत बही न० १६ पृ० ८६

२५८ मुंडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२४, बस्ता न ४०, टॉड (२), पृ० ८३०, १०६१, विल्सन (८) पृ० १२७

२५९-२६० मुंडियाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२५, बस्ता न० ४०, जोध०

२६१ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ नवम्बर १८१५ एफ०पी० २५ नवम्बर १८१५, न० ३१

२६२ पी०आर०सी० (१४), २४३

२६३-२६४ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०पी० १३ जनवरी १८१६, न० २७

२६५ मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७३-७४

२६६ दौलतराव सिंधिया का जयपुर के जगतसिंह को पत्र, वि०स० १८७३। १८१६ (कपड-जय०)

२६७. हकीकत बही न० ६, पृ० ६४

२६८ उपर्युक्त, मारवाड री ख्यात (४), ७३-७४

२६९. पी०आर०सी० (१४), पृ० ७३-७४

२७० क्लोक का जे० एडम्स को पत्र ३१ मई १८१६, एफ०एस० १५ जून १८१६, न० १०, पी०आर०सी० (१४), २७७, २८२

२७१ मानसिंह का बापूजी सिंधिया को पत्र, भाद्रपद वदी ३० वि० सं० १८७३। २३ अगस्त १८१६ (अ०ब०न० ५, पृ० ४६ जोध०)

२७२ हकीकत बही न० १०, १०७ व ११०

२७३ पी०आर०सी० (१४), २६२

२७४ पी०आर०सी० (१४), ३६७-३६८

२७५ मानसिंह का दौलतराव को पत्र, फाल्गुन सुदी १२ वि०स० १८७३। २८ फरवरी १८१७ (अ०ब०न० ५, पृ० १७ जोध०), पी०आर०सी० (१४), ३६८

२७६ उपर्युक्त, पी०आर०सी० (१४), ३०५

२७७ पी०आर०सी० (१४), ३२१

२७८-२७९ हकीकत बही न० १०, पृ० नं० १७, पी०आर०सी० (१४), ३११, मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७५-७८

२८० मुडयाड ख्यात (मानसिंह), पृ० १२५, बस्ता न० ४०

२८१ हकीकत बही नं० १०, पृ० ११७; मारवाड री ख्यात (४), पृ० ७७-७८; मानसिंह का जयपुर-शासक को दिनांक २० अप्रेल १८१७ को पत्र, वैशाख सुदी ४ वि०स० १८७३। २० अप्रेल १८१७ जय० और ब्रिटिश सरकार को पत्र, जो रेजिडेण्ट को १३ जून १८१७ (एफ०पी० १५ अगस्त १८१७ नं० ४०) को प्राप्त हुआ था।

२८२ हकीकत बही न० १०, पृ० नं० ११८

२८३ किशनगढ के महाराजा का छत्रसिंह को पत्र, प्रथम श्रावण बदी ५ वि०सं० १८७४। ३ जुलाई १८१७ (पी०फो० नं० ४ फाइल ८/११ खरीता नं० १ जोध०)

२८४ मुडमाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२६, बस्ता न० ४०

२८५. पी०आर०सी० (१४), १८२

२८६ ए० सेटोन का एन०बी०एडमोंस्टन को पत्र, २० फरवरी १८०७, (एफ०पी० १२ मार्च १८०७ न० २६)

२८७ पी०आर०सी० (१४) ६८

२८८ मेटकाफ का ज० एडम्स को पत्र, ३ अप्रेल १८१४, एफ० पी० २२ अप्रेल १८१४ न० ११

२८९ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, ३ अप्रेल १८१४, एफ० पी० २२ अप्रेल, १८१४, न० ११

२९०. द प्राईवेट जरनल ऑफ मारक्वीस आफ हेस्टिंग्स, पृ० ३०

२९१ बीलर जे० टालबॉयज, पृ० २०१

२९२ पी०आर०सी ०(१४), २६७

२९३ क्लोज का गवर्नर जनरल को पत्र २२ मई १८१६, एफ० एच० ११ जून १८१६ न० २८)

२९४. क्लोज का जे० एडम्स को पत्र, ३१ मई १८१६, एफ०एस० १५ जून १८१६ न० १०, पी०आर०सी० (१४), २८२, २९१, २९२, २९८, २९९ व पृ० ३६७-३६८

२९५ मारवाड री ख्यात (४), पृ० ८२-८३; टाड (२), पृ० १०९३

२९६. बी०डी० बसु राइज ऑफ द क्रिश्चन पावर इन इण्डिया भाग ४, पृ० १९१ वीलर जे टालबॉयज, पृ० २२३-२२४

२९७ मारवाड री ख्यात (४), पृ० ८२-८३, वीलर जे० टालवायज, पृ० २२३-२२४

२९८ पी०आर०सी० १४), ३२१

२९९-३००. मेटकॉफ का आक्टरलोनी को पत्र, २५ नवम्बर (१८१७), एफ० एस० १९ दिसम्बर १८१७ न० ११२

३०१. जोधपुर के राजा का गवर्नर-जनरल को पत्र, जो १ जनवरी १८१८ को प्राप्त हुआ, एफ० स० २० फरवरी १८१८ न० १, ५७

३०२ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १५ जनवरी १८१८, एफ०एम० ६ फरवरी १८१८, न० १०३

३०३ मारवाड री ख्यात ग्रन्थ ४, पृ० ८२-८४ एटीशिचन ट्रिटी, एंगेजमण्टस व सनद (३) पृ० १२६-१२६

३०४ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ८४, एटीशिचन ट्रिटी, एंगेजमेण्ट्स व सनद (३) पृ० १३०

३०५ हकीकत बही न० १० पृ० न० २०२ जोध०

३०६ मानसिंह सिंधिया को (वार्षिक) १,८०,००० रुपये (१,५०,००० मारवाड के और ३०,००० गोडवाड के) कर देता था। कई कटौतियाँ होने के बाद सिंधिया को सिर्फ ९७,३०० वार्षिक मिलते थे। मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १५ जनवरी १८१८ एफ०एस० ६ फरवरी १८१८ न० १०२)

३०७ प्रिन्सेप हिस्ट्री आफ पोलिटिकल एण्ड मिलटी ट्रान्जेक्शन इन इण्डिया, ग्रन्थ २, पृ० ३५८

३०८ हथबही न० २, पृ० १३४, महादजी का विजयसिंह को पत्र, आश्विन सुदी ७, वि०सं० १८४३। २६ सितम्बर १७८६ (पो०फो० ६, पत्र ५५, जोध०)

३०९ मेटकाफ का जे० एडम्स को पत्र, १५ जनवरी १८१८,एफ०एस०, ६ फरवरी १८१८ न० १०२

३१० हकीकत बही न० १०, पृ० न० २०७ (जोध०), मेटकाफ का जे० एडम्स को पत्र, २ अप्रेल १८१८ एफ० पी० २४ अप्रेल १८१८ न० ४६

३११ उपर्युक्त टाड के अनुसार पोकरन गुट ने ईडर के शासक से प्रार्थना की कि उनके एक पुत्र को जोधपुर का शासक बनाने की अनुमति प्रदान करे परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया (ग्रन्थ २) पृ० १०९२

३१२ हकीकत बही ग्रन्थ १०, पृ० २१०और पृ० २१३, २१४

३१३ उपर्युक्त, पृ० २१६

३१४. आक्टर लोनी का जे० एडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८१८, एफ०पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५५

३१५ उपर्युक्त

अध्याय : ७

मराठों का प्रस्थान १८१५–१८४३

(अ) मधुराज भोंसले (अप्पाजी साहिब) व ब्रिटिश

१८०३ मे अंग्रेजो से युद्ध के बाद नागपुर का शासक रघुजी भोसला मराठा संघ के प्रति उदासीन हो गया। उसने भावी ब्रिटिश आक्रमणो से अपने को सुरक्षित रखने की नीति अपनायी। उसकी मृत्यु २२ मार्च १८१६ को हुई। इससे नागपुर मे ब्रिटिश हस्तक्षेप, जिसे उसने जीवन भर रोके रखा था, संभव प्रतीत होने लगा। उसका उत्तराधिकारी परसाजी बाला साहिब था। अन्धा होने के कारण वह स्वयं राज्य के प्रशासन की देख रेख करने मे असमर्थ था। अतः उसके रिजेण्ट के रूप मे उसका चचेरा भाई मधुराज भोसला[1] शासन कार्य की देख रेख करता था। वह चालाक और अवसरवादी था। उसने २८ मई १८१६ को अंग्रेजो से गुप्त संधि कर अपनी स्थिति सुदृढ कर ली। जून मे उसके विरुद्ध विद्रोह की संभावना होने लगी। संधि के अनुसार अंग्रेजो ने उसकी सहायता की। कर्नल डोवटोन के नेतृत्व मे एक अंग्रेजी सेना १८ जून को नागपुर पहुँची। अंग्रेजो के इस कार्य से नागपुर के राजनैतिक वातावरण मे संदिग्धता और अनिश्चितता की स्थिति पैदा हो गयी। परिणामस्वरूप शासक परसाजी की १ फरवरी १८१७ को हत्या कर दी गयी। अप्पा साहिब (मधुराज) २५ अप्रैल १८१७ को नागपुर का शासक बन गया।[2] गद्दी पर बैठने के पश्चात् अप्पाजी ने अंग्रेजो के प्रति अपनी नीति मे महत्वपूर्ण परिवर्तन किया। उसने उस मन्त्री को पद से हटा दिया जो अंग्रेजो से संधि के लिए उत्तरदायी था। पेशवा बाजीराव द्वितीय से उसने पत्र व्यवहार प्रारम्भ किया, जिससे उसकी अंग्रेज विरोधी नीति स्पष्ट होने लगी। उसने अपनी सेना मे नयी भर्ती शुरू की और गुप्त संधि (मई १८१६) मे अंकित से अधिक सेना का संगठन किया। ब्रिटिश सरकार के लिए अप्पाजी का यह कार्य असहनीय था।[3] इन सम्बन्धों मे तीव्रता उस समय अधिक पैदा हो गयी जब नवम्बर, १८१७ मे अंग्रेजो के विरुद्ध उसने पेशवा का समर्थन किया।[4] इस पर अंग्रेजो ने नागपुर म सैनिक अभियान कर उसे पदच्युत कर दिया।[5] वह कैद कर लिया गया। परन्तु किसी प्रकार मई १८१८ मे वह भागने में सफल हुआ।[6] १८१६ मे वह पंजाब की ओर गया जहाँ कुछ समय तक रणजीतसिंह के पास रहा।[7] १८२० मे उसने शिमला पहाडियों के जनाह नामक

स्थान पर, जहाँ का शासक साहिबसिंह वेदी था, शरण ली।[८] बाद में मंडी को उसने अपना निवास स्थान बनाया।[९] परन्तु फरवरी १८२८ में वह अमृतसर चला आया, जहाँ वह गुप्त रूप से रहने लगा।[१०] इन्दौर के तत्कालीन रेजीडेण्ट, वेलेजली द्वारा जब्त किये गये पत्रों[११] से ऐसा लगता है कि मंडी में रहते हुए अप्पा साहिब ने राजस्थान के कई शासकों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित किये थे। इन पत्रों द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि राजस्थान के राज्यों से सहायता प्राप्त करने का कार्य उसने गंगासिंह नामक अपने एक विश्वासपात्र पदाधिकारी को सौंपा।[१२] १८२६ में बर्मा-युद्ध की समाप्ति पर, पदच्युत देशी शासकों की अंग्रेजों के प्रति विरोधी भावना[१३] का लाभ उठाकर उसने अपने प्रतिनिधि को आदेश दिया कि वह मेटकॉफ और कालब्रुक से मिले और उनसे अनुकूल शर्तों पर समझौता करने की पहल करे।[१४] गंगासिंह १० अक्टूबर १८२७ को कालब्रुक से मिला।[१५] अपने मिशन के उद्देश्य से उसने जॉन मालकम को ८ फरवरी १८२८ को एक पत्र द्वारा अवगत कराया।[१६] परन्तु मई १८२८ में गवर्नर जनरल का आदेश पाकर कालब्रुक ने गंगासिंह से सभी प्रकार की वार्ता समाप्त कर दी।[१७] अप्पा साहिब अत्यन्त निराश हुआ। उसने रणजीतसिंह से सहायता की आशा की पर वह भी प्राप्त नहीं हो सकी।[१८]

(अ) मानसिंह और अप्पाजी भोंसले

(१) भोंसले को राठौड़ी सहायता (१८२९–१८३०)

अप्पाजी ने शिमला पहाड़ियों के सरक्षकों से शरण माँगी थी। वह उसे मिली परन्तु उसकी महत्वाकांक्षा कम नहीं हुई। उसकी पूर्ति के लिए पहाड़ियों का वातावरण अनुकूल न पाकर वह पंजाब की ओर चल पड़ा। राजस्थान के कई शासकों में उसने सम्पर्क स्थापित किया पर उसे फिर भी सफलता नहीं प्राप्त हुई। वह अंग्रेजों से समझौता करने में भी असफल रहा। १८२६ के मार्च में वह बीकानेर पहुंचा।[१९] उसने देशनोक के पवित्र मंदिर में शरण ली।[२०] एक बार पुनः उसने अंग्रेजों से समझौते हेतु प्रयास किया। उसकी शर्त थी कि यदि उसे नागपुर का शासक पुनः बना दिया जाए तो न सिर्फ वह अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार करेगा, बल्कि वह रुपये में ६ आना (३६ प्रतिशत) कर देने को भी तैयार था।[२१] अंग्रेजों ने इसे भी अस्वीकार कर दिया।[२२]

नागपुर में अप्पा साहिब को व्यापक समर्थन प्राप्त था। वहाँ के लोग उसे लगातार धन भेजते थे, जो कि उसे राजस्थान व उसके बाहर स्थित अपने प्रतिनिधियों के द्वारा मिलता रहता था।[२३] देशनोक में रहते समय उसने जोधपुर के महाराजा मानसिंह को लिखा कि उसे नागौर में रहने की स्वीकृति दी जाए।[२४] अप्पाजी के इस प्रकार के पलायन, शरण एवं पत्र व्यवहार के प्रति अंग्रेजों ने बीकानेर तथा जोधपुर के नरेशों के प्रति कड़ा रुख अपनाया। गवर्नर-जनरल ने बीकानेर-शासक की कड़ी भर्त्सना की कि उसने संधि के उत्तरदायित्व को भंग कर अप्पाजी को अपने राज्य में शरण दी और आदेश दिये कि अप्पाजी को वहाँ से

निकाल दे तथा उसे जयपुर और जोधपुर प्रदेशों की ओर न जाने दे।[२५] मानसिंह को भी पत्र द्वारा निर्देश दिया कि यदि अप्पाजी मारवाड में प्रवेश करे तो उसे गिरफ्तार कर लिया जाए।[२६] बीकानेर के शासक ने अप्पाजी को देशनोक छोड़ने के आदेश दिये।[२७] अप्पाजी दो माह तक देशनोक में रहे।[२८]

बीकानेर से अप्पाजी ने बहालपुर की ओर प्रस्थान किया।[२९] वहाँ से उसने मारवाड की सीमा पार की[३०] और अंग्रेजो के मित्र का रूप धारण कर[३१] २०० सैनिको सहित वह नागौर पहुँचा।[३२] नागौर से उसने नागपुर मे अपने मित्रो से सम्पर्क स्थापित किया।[३३] अप्रैल, १८२६ मे वह मण्डोर पहुचा और महाराजा मानसिंह से प्रार्थना की कि कुछ समय तक उसे वहाँ रहने दिया जाए।[३४] अंग्रेजों को भय हुआ कि अप्पा साहिब धीरे-धीरे दक्षिण की ओर प्रयाण कर रहा है। अतः ब्रिटिश रेजिडेण्ट ने दिल्ली मे स्थित जोधपुर के वकील को कहा कि वह अपने शासक को लिखे कि अप्पा साहिब के बारे मे उनके (अंग्रेजो के पूर्ववर्ती आदेशो का पालन करे[३५] तथा उसे सिन्ध या बहावलपुर की ओर निष्कासित करे।[३६] रेजिडेण्ट ने इस सम्बन्ध मे मानसिंह को नये निर्देश भेजे कि अप्पा साहिब को जोधपुर से कुछ सैनिको के साथ उसी रास्ते से वापिस किया जाए जिस रास्ते से उसने मारवाड मे प्रवेश किया।[३७] इस पर महाराजा ने अप्पा साहिब को मारवाड मे ठहरने की निषेधाज्ञा दी।[३८] परन्तु बाद मे उसे ठहरने दिया गया।[३९] इसके लिए महामन्दिर अब जोधपुर का एक उपनगर, मे रहने की व्यवस्था की गयी।[४०]

अंग्रेजों के प्रति मानसिंह के इस प्रकार के आचरण के पीछे राजनैतिक कारण था। १८२७-१८२८ के सामंती विद्रोह को दबाने के लिए जब मानसिंह ने अंग्रेजी सहायता माँगी तो उन्होने न सिर्फ इन्कार किया बल्कि बाद मे दबाव डालकर सामंतो की माँगे मानने पर उसे बाध्य किया।[४१] अत. मानसिंह अंग्रेजो से क्षुब्ध हो गया। उसने अप्पा साहिब को मारवाड मे ठहरे रहने का आदेश दे दिया। आतरिक क्षेत्र मे वह अपने को पूर्ण स्वतन्त्र मानता था। उसकी दृष्टि में अंग्रेजो से की गयी सधि (१८१८) मे कोई ऐसी धारा नही थी जिससे आतरिक मामलों मे इस अधिकार से वह अपने को वंचित समझे कि वह किसी भी व्यक्ति को शरण दे सकता था।[४२] अंग्रेजो ने इसका प्रतिवाद किया। उन्होने अंग्रेजो के अपराधी को शरण देने के कारण अपना रोष बार-बार प्रकट किया। इस सम्बन्ध मे दिल्ली स्थित उसके वकील व रेजिडेण्ट के पत्र-व्यवहार (मई-जून १८२६) से स्पष्ट होता है कि वह अंग्रेजो के प्रतिवाद को स्वीकार करने को तैयार नही था।[४३] इन पत्रो का प्रत्युत्तर देते हुए मानसिंह ने ब्रिटिश रेजिडेण्ट को स्पष्ट लिखा कि 'अप्पा साहिब का एक एजेण्ट दिल्ली मे रहने दिया जाता है। किन सिद्धान्तो पर उसे अप्पा साहिब को अपमानित कर अपने राज्य से निष्कासित करने को कहा जाता है?[४४] उसने आगे और स्पष्ट किया कि सधि की शर्तों के अनुसार वह अंग्रेजो के शत्रु को उन्हें सौंपने

को बाध्य नहीं था।[४५] फिर भी उसने इस सम्बन्ध मे अंग्रेजी प्रतिक्रिया जानने हेतु राज्य के एक बगाली कर्मचारी बाबू को गुप्त तरीके से अजमेर भेजा।[४६]

अंग्रेज सरकार को सन्देह हुआ कि मानसिंह अप्पा साहिब से मिला हुआ है और वह उसे धर्म-यात्री (साधु) के भेष मे पुष्कर के मार्ग से नागपुर भेजना चाहता है।[४७] अतः एक ओर रेजिडेण्ट ने नागपुर, इन्दौर, ग्वालियर, सागर, कोटा, उदयपुर और जयपुर स्थित अपने 'पोलिटिकल एजेण्टो' को पत्र भेजकर सचेत रहने को कहा कि कहीं अप्पाजी उन मार्गों से नागपुर न चला जाए,[४८] दूसरी ओर अजमेर स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट ने मानसिंह की इस स्थिति को अस्वीकार किया कि सधि की शर्तों के अनुसार अंग्रेजो के शत्रुओ को शरण देने का उसका आन्तरिक अधिकार था।[४९] एक बार पुनः अप्पा साहिब को गिरफ्तार करने के आदेश जोधपुर शासक को दिये गये।[५०]

केवेंडिश के एक पत्र (२६ जून १८२६) से,जो कि उसने कालब्रुक को लिखा था, ऐसा प्रतीत होता है कि अप्पा साहिब महामन्दिर से बीकानेर की ओर प्रस्थान कर चुका था।[५१] अजमेर-स्थित ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट को नागौर स्थित उसके रिपोर्टर ने इसी प्रकार की सूचना भेजी।[५२] परन्तु फिर कुछ समय बाद यह सूचना प्राप्त हुई कि वह महामन्दिर पुन लौट आया।[५३] मानसिंह ने उसे जोधपुर से प्रस्थान करने को कहा था वह स्वय अपनी इच्छा से गया, समकालीन पत्रो से इस सम्बन्ध मे कुछ नहीं जाना जा सकता है। परन्तु जब वह लौटा तो उसकी पूर्ण देखरेख की गई तथा उसे महामन्दिर मे ही ठहराया गया।[५४] अप्पा साहिब के जोधपुर मे पुनः आगमन से अंग्रेज सरकार शकित हो उठी। अजमेर मे स्थित पोलिटिकल एजेण्ट केवेण्डिश को भय हुआ कि मानसिंह किसी अन्य को अप्पाजी भोसला घोषित कर उसके भागने की परिस्थितियां तैयार कर रहा है।[५५] दिल्ली स्थित रेजीडेण्ट हॉकिन्स ने केवेण्डिश से स्पष्टीकरण चाहा कि वह जोधपुर मे अप्पा साहिब को शरण मिलने के सम्बन्ध मे शिथिल नीति क्यों अपना रहा है।[५६] केवेण्डिश ने १० अक्टूबर को अपना स्पष्टीकरण भेजते हुए व्यक्त किया कि 'तत्कालीन शान्तिपूर्ण समय और हमारी शक्तिशाली स्थिति को देखते हुए मानसिंह की ओर से हमारे स्वार्थों को कोई खतरा नहीं है। उसे ब्रिटिश सरकार के साथ की गयी सन्धि पर विचार करने के लिए पर्याप्त समय दिया गया है।'[५७] केवेण्डिश का उत्तर न तो पर्याप्त था और न सतोषजनक ही। गवर्नर-जनरल ने आदेश दिया कि अप्पाजी को गिरफ्तार कर अंग्रेज सरकार को सौंप दिया जाए।[५८] सरकार अधिक-से-अधिक इतना कर सकती है कि अप्पा साहिब की सुरक्षा का उत्तरदायित्व ले सकती है और उसे आराम का जीवन निर्वाह करने के लिए पेन्शन दे सकती है।[५९]

मानसिंह बिना शर्त अप्पाजी को सौंपने को तैयार नहीं था। उसने ब्रिटिश सरकार को लिखा कि अप्पाजी की बहिन के पुत्र को नागपुर की गद्दी से हटा दिया

जाए तथा उसके स्थान पर उसके (अप्पाजी) वंश के व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाया जाए।[६०] उसने अप्पाजी के लिये जागीर की मांग भी की, जिससे वह संतुष्ट हो सके।[६१] अंग्रेजों ने इन शर्तों को मानने से इन्कार कर दिया। रेजिडेंट ने मानसिंह को धमकी दी कि समर्पण करने के पूर्व किसी शर्त के लिए जोर देना सौदा होगा, अतः संधि का उल्लंघन समझा जाएगा।[६२] ऐसी स्थिति में रेजिडेण्ट ने लिखा कि यदि धोकलसिंह ने जोधपुर की गद्दी की मांग प्रेषित की तो अंग्रेज सरकार को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन के लिए बाध्य होना पड़ेगा।[६३] केवेन्डिश को विश्वास था कि मानसिंह अप्पाजी को बिना हिचकिचाहट से सौंप देगा। इसके लिए उसने अक्टूबर १८२६ के प्रारम्भ में लक्ष्मीचन्द को जोधपुर भेजा।[६४]

मानसिंह ने लक्ष्मीचन्द मिशन की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और ब्रिटिश आक्रमण की संभावना समझकर जोधपुर की सुरक्षा की तैयारियाँ करने लगा।[६५] सेना को तैयार रहने के आदेश दिये गये।[६६] नयी सैनिक भर्ती प्रारम्भ की गयी।[६७] कीरचन्द को नया सेनाध्यक्ष बनाया गया।[६८] आन्तरिक क्षेत्र में राजनैतिक स्थायित्व स्थापित करने के लिए उसने नाथ गुट के शक्तिशाली नेता आयस भीमनाथ से समझौता कर लिया।[६९] राजस्थान के भिन्न-भिन्न भागों में अपने मित्रों से, विशेषकर टोंक के नवाब से, सहायता की प्रार्थनाएँ की गयी।[७०] परन्तु सहायता कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकी।[७१] दूसरी ओर से सूचना प्राप्त हुई कि उसके विरोधी सामन्तों और धोकलसिंह ने अंग्रेजों से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करना शुरू कर दिया है।[७२]

मानसिंह अपनी स्वयं की सैनिक तैयारियों से अंग्रेजों से लोहा नहीं ले सकता था। अतः उसने यही उचित समझा कि अंग्रेजों से वार्ता की जाए। उसने गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बैंटिक को दो पत्र लिखे। एक उसे सीधा १६ अक्टूबर १८२६ को प्राप्त हुआ,[७३] और दूसरा ब्रिटिश रेजिडेण्ट दिल्ली के मार्फत, जो उसे १६ अक्टूबर को मिला।[७४] इन दोनों पत्रों के अनुसार, अप्पा साहिब महामन्दिर में ठहरा हुआ था। मानसिंह *ब्रिटिश प्रदेशों में किसी प्रकार का बखेड़ा नहीं करना चाहता था* और न उसमें ऐसा करने की शक्ति ही थी। वह तो हमेशा अंग्रेजों सरकार से सुरक्षा और क्षमा की आशा रखता था। गवर्नर जनरल ने मानसिंह को सूचित किया कि उसकी भावनाएँ एक ही शर्त पर स्वीकार की जा सकती हैं कि वह अप्पा साहिब के अच्छे आचरण का जमानती रहे तथा यदि अप्पा साहब नागपुर के खोये हुए प्रदेश को पुनः लेने का प्रयास करे या वहाँ की शांति को भंग करे तो इसका उत्तरदायित्व जोधपुर-शासक अपने ऊपर ले।[७५]

मानसिंह ने इसे स्वीकार किया। समस्या के शांतिपूर्वक निपटारे से मानसिंह प्रसन्न था।[७६] गवर्नर जनरल को एक पत्र के द्वारा जो कि १ फरवरी १८३० को उसे प्राप्त हुआ था,[७७] उसने सूचित किया कि वह अत्यंत ईमानदारी से उसके

निर्देशों का पालन करेगा तथा अप्पा साहिब के आचरण व कार्यों पर कड़ी नज़र रखेगा। इस प्रकार अंग्रेजों से समझौता कर मानसिंह ने अप्पाजी को जालोर भेजने की कोशिश की।[७८] परन्तु वह इसके लिए तैयार नहीं था क्योंकि उसकी दृष्टि में महामन्दिर अधिक सुरक्षात्मक स्थान था।[७९]

(२) अप्पाजी जोधपुर में १० वर्ष (१८३० से १८४०)

अप्पाजी जोधपुर में शांत नहीं रहा। १८३२ में उसने नागपुर में अपने लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाने हेतु गुप्त व्यक्ति भेजे।[८०] जैसलमेर स्थित अंग्रेजों के अखबारनवीस ने २६ जनवरी १८३३ को अजमेर के ए०जी०जी० (गवर्नर-जनरल के एजेण्ट) एलवेस को सूचना भेजी कि अप्पाजी जोधपुर के पड़ोसी राज्य बहावलपुर और जैसलमेर से सैनिक भर्ती कर सेना सगठित कर रहा है।[८१] भूतपूर्व शासक रघुजी भोंसले की दूसरी रानी अंबिका बाई से उसका लगातार पत्र व्यवहार होता रहा है।[८२] १८३४ में नागपुर का राजनैतिक वातावरण उसके इतना अनुकूल हो गया कि उसने वहाँ अपने मित्रों को आदेश दिये कि शीघ्रातिशीघ्र कार्य किया जाए।[८३] परन्तु अप्पा साहिब नागपुर नहीं जा सके बल्कि महामन्दिर में ही बने रहे।[८४] इससे मानसिंह और ब्रिटिश सरकार के बीच सम्बन्धों में पुन. तनाव पैदा होने लगा।[८५]

कुछ समय तक अप्पाजी शांत बना रहा। परन्तु १८३८ के मध्य में आंग्ल-अफगान मतभेदों का लाभ उठाकर उसने नेपाल,[८६] सतारा,[८७] और बड़ोदा[८८] के शासकों को सहयोग देने के लिए अनुविनय की। नागपुर में उसकी पत्नी और अंबिका बाई ने उसके पक्ष में एक प्रभावशाली गुट तैयार कर लिया था।[८९] नेपाल शासक ने अप्पाजी को सूचित किया कि वह अपने दूतों को भेजे जिससे धन और सेना सम्बन्धी सहायता, जितनी उसे आवश्यकता हो, दी जा सके।[९०] बड़ौदा के शासक ने १० से १२ लाख रुपयों की सहायता देने का वचन दिया।[९१] मानसिंह तो अप्पा साहब का सबसे बड़ा सहायक था। उसने भोंसले को अग्रिम धनराशि दी, जिससे वह शस्त्र और बारूद खरीद सके।[९२] उसकी (अप्पाजी की) योजना यह थी कि उसकी पत्नी और चाची दशहरा के अवसर पर नागपुर के शासक को पकड़ कर राज्य पर अपना अधिकार कर लेगी और दिवाली के आसपास वह नागपुर पहुच जाएगा।[९३] अप्पाजी के कार्य ब्रिटिश सरकार के गुप्तचर विभाग से छिपे नहीं रह सके। मे[illegible] के २२ अक्टूबर १८३८ के एक पत्र से मालूम होता है कि सितम्बर १८३८ से [illegible] को यह सूचना मिलती रही थी कि अप्पाजी या तो नेपाल या दक्षिण की [illegible] की योजना बना रहा है।[९४] सरकार ने बीकानेर के शासक को [illegible] मन्दिर से अप्पाजी के उत्तर की ओर पलायन पर कड़ी निगाह रखी [illegible] अप्पाजी वेष बदल कर[९५] नहीं निकल जाए। ब्रिटिश सरकार ने [illegible] की सहायता से सम्भावित मार्गों पर अश्वारोही रक्षक नियुक्त कर [illegible]

१८३९ के प्रारम्भ में जोधपुर के प्रति, विशेषकर [illegible] सरकार ने कठोर नीति अपनायी। अजमेर में [illegible]

सदरलैण्ड और उसका सहायक कैप्टन लडलो अप्रैल १८३६ में जोधपुर पहुँचे और मानसिंह से मांग की कि अप्पा साहिब को अंग्रेजों को सौंप दें।[९८] अप्पा साहिब भी कर्नल सदरलैण्ड से मिला।[९९] उसने भोसले को राय दी कि उसकी भलाई इसी में है कि वह अंग्रेजों के संरक्षण में आ जाए।[१००] परन्तु अप्पाजी इसके लिए तैयार नहीं हुआ। उसने मई में ब्रिटिश प्रतिनिधि[१०१] को सूचित किया कि वह नागपुर की गद्दी पर अपने अधिकार को त्यागने की अपेक्षा एक भिखारी की तरह जीवित रहकर मरना उचित समझता है।[१०२]

अचानक कर्नल सदरलैण्ड जून १८३६ को अजमेर लौटकर जोधपुर के विरुद्ध सैनिक तैयारियाँ करने लगा।[१०३] अगस्त-सितम्बर में उसने जोधपुर पर अधिकार कर लिया।[१०४] इस पर मानसिंह ने अप्पा साहिब को इस शर्त पर सौंपना स्वीकार किया कि उसे नागपुर में कुछ प्रदेश दिये जाएँ।[१०५] सदरलैण्ड ने इस शर्त को अस्वीकार किया क्योंकि गवर्नर जनरल के निर्देशानुसार अप्पाजी के खर्च के लिए कोई शर्त उस समय तक स्वीकार नहीं की जा सकती थी जब तक जोधपुर से उसे हटा नहीं दिया जाता।[१०६] इस स्थिति को उसी रूप में छोड़कर,[१०७] कर्नल सदरलैण्ड ४ दिसम्बर १८३६ को अजमेर चला आया।[१०८]

जाने से पूर्व सदरलैण्ड ने कैप्टन लडलो को आदेश दिया कि अप्पा साहिब पर कड़ी निगरानी रखी जाए। लडलो ने उसके व्यक्तिगत पत्रों को, जो कि उसकी पत्नी से प्राप्त होते थे, खोलकर उनका निरीक्षण करना शुरू किया।[१०९] नागपुर के पोलिटिकल ऐजेन्ट को सचेत रहने के आदेश दिये गये।[११०] परन्तु अप्पाजी और अधिक समय तक जीवित नहीं रहा। जुलाई के प्रारम्भ में उसे अतिसार का रोग हो गया। वह पाँच दिन तक इसकी भयंकर पीड़ा को सहता रहा। १५ जुलाई १८४० को महामन्दिर में अपने निवास-स्थान पर उसकी मृत्यु हो गयी।[१११] मानसिंह ने राजकीय सम्मान के साथ उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करायी।[११२] गवर्नर जनरल के सचिव मडोक के १६ जुलाई १७४२ के एक पत्र से प्रतीत होता है कि अप्पाजी ने अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के लिए साण्डेराव के ठाकुर सबलसिंह के पुत्र शिवनाथसिंह का नाम प्रस्तावित किया था।[११३] इसे अंग्रेजी सरकार ने इसलिए स्वीकृति नहीं दी[११४] कि न तो अप्पाजी की पत्नियों ने इसे माना[११५] और मानसिंह ने इस सम्बन्ध में कोई सिफारिश ही की।[११६]

(ई) राठौड़-मराठा मैत्री सम्बन्ध

मानसिंह और दौलतराव सिंधिया के बीच राजनैतिक ही नहीं बल्कि पारिवारिक सम्बन्ध भी थे। दोनों परिवार घनिष्ठ मित्रता में बँधे हुए थे। १८०५ मार्च में महाराजा मानसिंह ने दौलतराव सिंधिया की पत्नी बेजाबाई को अकोली गाँव प्रदान किया था। १८४० में ब्रिटिश रेजिडेण्ट लडलो की आज्ञा से दीवान गम्भीरीमल ने इस गाँव को जब्त कर लिया।[११७] जनवरी १८४२ में बेजाबाई ने

ग्वालियर के रेजिडेण्ट द्वारा जोधपुर सरकार से माग की कि उस गाँव पर उसके अधिकार को मान्यता दे।[११८] यह समस्या इस रूप मे उलझन मे पड गयी कि यह गाँव 'पेशकश' के बदले मे दिया गया था या शासक ने अपनी इच्छानुसार दिया था। सिंधिया सरकार ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि १७८० मे महाराजा विजयसिंह ने इसे पेशकश के रूप मे दिया गया था और ६० वर्ष तक यह सिंधिया सरकार के अधीन था।[११९] लडलो ने जोधपुर सरकार का समर्थन किया और इसे 'पेशकश' मानने से इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि मारवाड के शासकों के अधिकार और रीति-रिवाजो के अनुसार उनकी इच्छा पर दिये गये गाँव या भूमि पर वे पुनः अधिकार कर सकते हैं।[१२०] जब मानसिंह को इस मतभेद की सूचना मिली तो उसने अस्वीकार किया कि उसकी आज्ञा से गाव की जब्ती हुई थी।[१२१] उसका कथन था कि सिंधिया परिवार के साथ मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए ही उसने उस गाँव को बेजाबाई को दिया था।[१२२] अतः उसने उक्त गाव पुन सिंधिया की पत्नी को दे देने के लिए आज्ञा जारी की।[१२३] सितम्बर १८४२ में अकोली पुनः बैजाबाई को दे दिया गया और यह आदेश भी दिया गया कि जब तक वह जीवित है यह गाव उसी के पास रहेगा।[१२४]

(ड) मराठा प्रभाव का अन्त व आंग्ल प्रभाव की वृद्धि (१८१८—१८४३)

६ जनवरी १८१८ की संधि के अनुसार[१२५] मारवाड के शासकों का मराठो, विशेषत सिंधिया से सभी प्रकार के सम्बन्धों का अन्त हो गया। संधि की धारा ६ व ७ के अनुसार सिंधिया का स्थान अंग्रेजों ने ले लिया। जोधपुर-शासक को सिंधिया की बकाया धन-राशि से भी मुक्ति प्राप्त हो गयी। उसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश सत्ता के कंधों पर आ पड़ा। चूँकि अंग्रेज-सिंधिया संधि (१८०३) के अनुसार सिंधिया भी अंग्रेज शक्ति को चुनौती देने मे शक्तिहीन हो गया था, अतः मारवाड के शासको की बकाया धन-राशि सिंधिया को कभी प्राप्त नही हो सकी। इस संधि मे ऐसी कोई धारा नहीं थी जिससे महाराजा मानसिंह के आतरिक क्षेत्र मे ब्रिटिश सरकार हस्तक्षेप कर सकती थी। धारा ९ के अनुसार तो अंग्रेजों ने महाराजा के राज्य को अपने क्षेत्राधिकार मे न रखने का वचन भी दे दिया था। फिर भी संधि के शीघ्र बाद ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुई कि आंग्ल सत्ता मानसिंह के आतरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने लगी।

१८१८ के अंतिम महीनों मे सर डेविड ऑक्टरलूनी ने जोधपुर पहुच कर[१२६] मानसिंह और उसके विरोधियो के बीच मे समझौता कराया, जिसके अनुसार अखेराज को दीवान और ठाकुर शालिमसिंह को प्रधान नियुक्त किया गया।[१२७] अंग्रेजी हस्तक्षेप के कारण समझौता तो हो गया,[१२८] पर दोनो दलो मे से एक भी इसके प्रति ईमानदार नहीं रहा।[१२९] दिसम्बर १८१८ में जोधपुर मे ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट के पद पर विल्डर नियुक्त हुआ।[१३०] उसे प्रभुसत्ता के निर्देश प्राप्त हुए कि 'राजा को समझाया जाए कि वह यूरोपियन अफसरो से सलाह ले और उसके जोखों

द्वारा अजमेर या अन्य राज्य से व्यापार करने वाले यात्रियो व व्यापारियो को लूटने के लिए जो ठगी होती है उसका दमन करे।[१३१] विल्डर कुछ समय तक जोधपुर मे रहा। उसने फरवरी १८१६ मे अपना उत्तरदायित्व कर्नल टॉड को सौंपा जिसे कि उदयपुर, कोटा, बूंदी और सिरोही के अलावा जोधपुर का भी भार दिया गया था।[१३२] कर्नल टॉड नवम्बर ४, १८१६ को महाराजा मानसिंह से प्रथम वार मिला।[१३३]

टॉड के जोधपुर पहुँचने के ६ माह के भीतर ही मानसिंह ने अपनी शक्ति का कठोर प्रयोग करना शुरू किया।[१३४] उसने १८२० के मध्य भाग मे अखेचन्द को पदच्युत् कर दिया और राज्यकोष मे गलतियो का उत्तरदायी बनाकर उसे गिरफ्तार कर लिया।[१३५] बाद मे उसे और उसके पाँच सहयोगियो, किलेदार नथकरण, व्यास विनोदी राम, मुशी जीतमल और जोशी फतेचन्द तथा दो अन्य ठाकुरो को मृत्यु-दण्ड दिया।[१३६]

ठाकुर सालिमसिंह भागकर नीमाज चला गया, फिर वहाँ से भी भागकर उसने जैसलमेर मे शरण ली।[१३७] महाराजा न विरोधियो को ढूँढ-ढूँढकर निकाला और दडित किया। उनकी जागीरें छीन ली।[१३८] सालिमसिंह को शरण देने के अपराध मे नीमाज ठाकुर को जुर्माना भरना पड़ा। उसकी भी जमीन छीन ली गयी।[१३९] फतेराज को नया दीवान नियुक्त किया गया।[१४०] नयी सरकार ने विजयसिंह के समय दी गयी जागीर की भूमि को पुनः राज्य के अधिकार मे लाने की नीति को कार्यान्वित करना प्रारम्भ किया।[१४१]

इस नीति से जागीरदारो मे असतोप फैल गया। उन्होने सयुक्त रूप मे कर्नल टॉड को ३१ जुलाई १८२१ को एक प्रतिवेदन देकर प्रार्थना की कि मध्यस्थता कर उनका समझौता कराया जाए।[१४२] टॉड ने हस्तक्षेप किया। मानसिंह ने फरवरी १८२४ मे आउवा, आसोप, नीमाज और राठ के ठाकुरो की जागीरें वापिस की।[१४३] अग्रेजो ने भी अपने लिए लाभ प्राप्त किया। आठ वर्ष के लिए मारवाड के मेरवाडा प्रदेश के ३१ गाँव अग्रेजो ने अपने सरक्षण मे ले लिये।[१४४] वहाँ पर एक ब्रिटिश सैनिक टुकडी रखी गयी, जिसका खर्च जोधपुर कोप से दिया गया।[१४५] ब्रिटिश मध्यस्थता ने एक वार पुन (१८२१ की तरह) मानसिंह के विरोधी तत्वो को सतुष्ट कर मारवाड के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप करने की परिस्थितियाँ बना ली।

मानसिंह की सामतो के प्रति कोई निश्चित नीति नहीं थी। अग्रेजी सत्ता द्वारा हस्तक्षेप करने पर वह उनसे समझौता कर लेता परन्तु बाद मे उनकी भूमि छीनकर उन्हें देश से निर्वासित कर देता। कई सामन्त जयपुर और बीकानेर राज्यो मे शरण ले चुके थे।[१४६] नीमाज, आउवा और राठ के ठाकुरों को एक वार पुन अपनी जागीरों से भागना पडा।[१४७] इन ठाकुरो ने मानसिंह को गद्दी पर से हटाकर धोकलसिंह को शासक बनाने का षडयन्त्र रचा।[१४८] जयपुर-शासक का सरक्षण

पाकर, उन्होंने जुलाई १८२८ तक दस हजार की फौज एकत्र कर ली।[१४६] मानसिंह और उसका मन्त्री लाडूनाथ इस मत के थे कि सामतों के विद्रोह के पीछे अंग्रेजों का हाथ था।[१५०] अतः उन्होंने पंजाब के शासक रणजीतसिंह से सहायता की प्रार्थना की।[१५१] मानसिंह द्वारा किसी अन्य राज्य के साथ प्रत्यक्ष पत्र-व्यवहार से अंग्रेज क्षुब्ध हो उठे। यद्यपि वे जानते थे कि रणजीतसिंह उनकी संधि की अवज्ञा कर मानसिंह को सहायता नहीं देगा[१५२] तो भी वे धोकलसिंह का पक्ष लेकर सामंतों के विद्रोह को अनदेखा नहीं कर सकते थे।[१५३] अतः उन्होंने मानसिंह को बाध्य किया कि ठाकुरों से अपने मतभेद को ब्रिटिश मध्यस्थता और निर्णय के लिए प्रेषित करे।[१५४] मानसिंह ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए जो तैयारियाँ की थी वे फालतू गयी। उसे अपने विद्रोही सामन्तों को जागीरें, पद एवं अन्य सुविधाएँ पुनः लौटानी पड़ी।[१५५]

अब मानसिंह अंग्रेजों का खुला विरोधी हो गया। उसने १८२६ में अप्पा साहिब भोंसले को अंग्रेजी कोप की परवाह न करते हुए भी, अपने यहाँ शरण दी।[१५६] नाथ गुट को जिससे अंग्रेज अत्यन्त अप्रसन्न थे, उसने न सिर्फ संरक्षण प्रदान किया बल्कि राज्य की आय का पाँचवाँ भाग नाथ गुट के लोगों को दिया जाने लगा।[१५७] रणजीतसिंह से वह लगातार पत्र-व्यवहार करता रहा। अंग्रेजों ने इसे संधि का उल्लंघन माना तो भी उसने परवाह नहीं की।[१५८] सिरोही और अजमेर की सीमा पर उसने अपने लोगों को प्रोत्साहित कर उन प्रदेशों में लूट-पाट करने वालों को शरण दी।[१५६] १८३२ में विलियम बेंटिक ने सभी शासकों का सम्मेलन बुलाया। वह उपस्थित नहीं हुआ।[१६०] थार पारकर में अपना प्रभाव स्थापित करने हेतु वह अपनी सेना में खोसरा जाति के लोगों को भर्ती करने लगा तो अंग्रेजों को सन्देह हुआ कि वह उनके विरुद्ध सैनिक तैयारियाँ कर रहा है।[१६१] सितम्बर १८३२ में अंग्रेजों ने संधि की शर्तों के अन्तर्गत १५०० अश्वारोहियों को खोसरा जाति के विरुद्ध भेजने को लिखा।[१६२] पहले तो उसने नहीं भेजा बाद में अधिक दबाव आने पर लोढा रिडमल और महणोत रामदास के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ी भेजी, जो संकटावस्था में शत्रु से मिल गयी।[१६३] अंग्रेजों के लिए मानसिंह का आचरण असहनीय था। जब मानसिंह ने लगातार कर देना भी बन्द कर दिया तो अजमेर स्थित पोलिटिकल एजेण्ट लोकहार्ट ने मानसिंह को स्थिति की गंभीरता बतायी पर मानसिंह ने कोई धन-राशि नहीं भेजी।[१६४] पोलिटिकल एजेण्ट ने मानसिंह को बार-बार आगाह किया कि किशनगढ़ क्षेत्र में होने वाली लूटमार के लोग उसके राज्य में आकर शरण लेते हैं, अतः वह इन्हें रोके[१६५] और ठगी प्रथा को अपने राज्य में अवैध घोषित करे।[१६६] परन्तु महाराजा पर इन धमकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने इनका कोई प्रत्युत्तर भी नहीं दिया।[१६७] सिर्फ मई १८३३ में बकाया कर की कुछ राशि भिजवादी।[१६८] दूसरी ओर उसने अजमेर के डा० मोटले के हत्यारों को अपने यहाँ शरण देकर अंग्रेजों के रोष को और बढ़ा दिया।[१६६]

जोधपुर के शासक के सर्वोच्चसत्ता-विरोधी आचरण से अजमेर मे उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का विचार होने लगा।[१००] फिर भी पोलिटिकल एजेन्ट एलवेस ने मानसिंह को सम्बन्ध सुधारने के लिए एक बार अवसर देने का निश्चय किया। मानसिंह ने अपना प्रतिनिधि मण्डल अजमेर भेजा।[१०१] इस दल मे व्यास मनोपराम, रोया के ठाकुर और बुनन्दा के ठाकुर सम्मिलित थे। यह दल एलवेस से ५ अगस्त, १८३४ को अजमेर मे मिला।[१०२] वार्ता के दौरान एलवेस यह अनुभव करने लगा कि यह दल शक्ति हीन ही नहीं बल्कि निर्णय लेने की क्षमता भी नहीं रखता था।[१०३] अत उसने एक रोष भरा पत्र मानसिंह को लिखा और चेतावनी दी कि यदि समस्याओं के निवारण के लिए उसने उचित कार्यवाही नहीं की तो ब्रिटिश सरकार को बाध्य होकर उसे पदच्युत करना पड़ेगा और उसके स्थान पर धोकलसिंह को मारवाड का राज्य सौंप दिया जाएगा।[१०४] मानसिंह ने सितम्बर मे खीवसर ठाकुर रणजीतसिंह के नेतृत्व मे दूसरा दल भेजा।[१०५] यह दल २६ सितम्बर को एलवेस से मिला।[१०६] ८ अक्टूबर को उसने उन सभी शर्तों पर हस्ताक्षर कर दिये, जो एलवेस ने रखी थी।[१०७]

इस समझौते के अनुसार[१०८] मानसिंह ने यह स्वीकार किया कि वह—

(१) किशनगढ़, सिरोही और जैसलमेर प्रदेशो मे हुई डकैती की क्षति पूर्ति देगा।
(२) ठगी प्रथा को अपने राज्य मे अवैध घोषित करेगा।
(३) डा० मोटले के हत्यारे को ब्रिटिश सरकार को सौंप देगा एव उसके यहाँ हुई डकैती की क्षतिपूर्ति देगा।
(४) सिरोही मे सीमा पर हुई डकैती की क्षतिपूर्ति के रूप मे १० से १२ लाख रुपये देगा। परन्तु उस धनराशि मे से धनराशि काट ली जाएगी जो उसे सिरोही के शासक की ओर से देय थी।
(५) पिछले बुरे आचरण के लिए क्षमायाचना करेगा तथा भविष्य म अग्रेजो से अच्छा व्यवहार करेगा।
(६) अजमेर मे जोधपुर के विरुद्ध सैनिक तैयारियो के लिए जो खर्च हुआ, उसकी मद मे पाँच लाख रुपये चार महीनों के भीतर-भीतर देगा और
(७) भविष्य म आवश्यकता पड़ने पर अग्रेजो को अच्छे अश्वारोही सैनिको की टुकड़ी भेजेगा।

ठाकुर रणजीतसिंह ने समझौते पर हस्ताक्षर कर जोधपुर शासक को वचनबद्ध कर दिया परन्तु अग्रेज मानसिंह के प्रति सशक बने रहे। अत उसकी स्थिति पर कड़ा नियत्रण करने एव समझौते की शर्तों के पालन हेतु ब्रिटिश सरकार ने बाडमेर मे एक सैनिक छावनी की स्थापना की।[१०९] महाराजा पर दडित क्षतिपूर्ति की लगातार अदायगी की जमानत के रूप में साँभर की नमक झील पर अधिकार कर लिया।[११०] मेरवाडा का क्षेत्र, जिसे आठ वर्ष के लिए अग्रेजो ने अपनी अधीनता मे लिया था अक्टूबर १८३५ से ९ वर्ष के लिए बढ़ा लिया।[१११] दिसम्बर मे

ऐरनपुर मे एक अन्य सैनिक छावनी स्थापित कर 'मारवाड़ लीजन' का सगठन किया, जिसका खर्चा १,१५,००० रुपया वार्षिक जोधपुर के शासक पर डाला गया ।[१६२]

१८३५ मे इंग्लैंड के मलबोर्न मन्त्रिमण्डल के समक्ष मध्यपूर्व की समस्या अत्यन्त उग्र होने लगी । अफगानिस्तान मे ब्रिटेन और रूस के स्वार्थों का टकराव के कारण उक्त समस्या उत्पन्न हुई थी । मेलबोर्न उग्रवादी विदेशी नीति का समर्थक नही था । परन्तु भारत मे गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बैंटिक की नीति उसके विपरीत थी । वह यह चाहता था कि भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य की पश्चिमी सीमा, सिंध नदी और पश्चिमी पहाड़ियों—किरथर, सुलेमान एव हिन्दूकुश तक होनी चाहिए । इस नीति का परिणाम न सिर्फ अफगानिस्तान से बल्कि रूस से खुली लड़ाई थी अतः मन्त्रिमण्डल ने सितम्बर १८३५ में विलियम बेन्टिक को पदच्युत कर दिया उसका स्थान सर चार्लसमैटकॉफ ने लिया । यह मार्च १८३६ तक गवर्नर-जनरल बना रहा । फिर लार्ड ऑकलैण्ड को इस पद पर नियुक्त किया गया । नये गवर्नर-जनरल ने लार्ड विलियम बैंटिक की सीमान्त नीति का ही अनुसरण किया ।[१६३]

ऑकलैण्ड ने शीघ्र ही 'वैज्ञानिक सीमा' की नीति को कार्यान्वित किया । सिंध और अफगानिस्तान के विरुद्ध सैनिक अभियानो के लिए उसने मारवाड़ को आधार-क्षेत्र बनाने का निश्चय किया । १८१८ की संधि के अनुसार जोधपुर-शासक अंग्रेजो के अधीनस्थ शासक हो चुका था अतः उसकी दृष्टि मे यह कार्य संधि के अनुकूल था । उसने सितम्बर १८३६ में मालानी, मारवाड़ के पश्चिमी भाग को ब्रिटिश नियंत्रण मे ले लिया और वहाँ सैनिक केन्द्र स्थापित कर दिये ।[१६४] इस सेना के खर्चे के लिए नावाँ, गुढा, डीडवाना और मारोठ के नमक उत्पादक क्षेत्र पर भी प्रत्यक्ष ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना कर दी ।[१६५] जोधपुर, बीकानेर और जयपुर राज्यो को एक ब्रिटिश अधीक्षक के अन्तर्गत करने के बारे मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा ।[१६६] मेजर एलवेस ने गवर्नर जनरल के सचिव मेकनॉटन को सिफारिश की कि मारवाड़ के राजनैतिक वातावरण से लाडूनाथ व भीमनाथ को अनिवार्य रूप से पृथक् कर देना चाहिए क्योंकि वे दोनों मानसिंह के अंग्रेज विरोधी कार्यों को प्रोत्साहन देते हैं ।[१६७]

मानसिंह ने अंग्रेजों की इस नीति का घोर विरोध किया । मालानी और अन्य क्षेत्रों पर अचानक बाह्य अधिकार उसके लिए असहनीय था । अंग्रेजों की यह नीति एक तरफा ही नहीं थी बल्कि मारवाड़ के आन्तरिक क्षेत्र मे खुला हस्तक्षेप था तथा उससे मारवाड़ की आय पर भी काफी प्रतिकूल प्रभाव पड रहा था ।[१६८] अंग्रेजों ने उसके प्रतिरोध को सुना-अनसुना कर दिया । इस पर मानसिंह ने भारत मे अंग्रेज विरोधी असन्तुष्ट तत्वो से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उखाड़ फेंकने के लिए योजना तैयार की ।[१६९]

इसी बीच जोधपुर के प्रशासन मे सुधार करने हेतु गवर्नर-जनरल लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अजमेर के पोलिटिकल एजेण्ड एलवेस को आदेश दिया कि वह जोधपुर पर

जोधपुर के शासक के सर्वोच्चसत्ता-विरोधी आचरण से अजमेर मे उसके विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने का विचार होने लगा।[१७०] फिर भी पोलिटिकल एजेन्ट एलवेस ने मानसिंह को सम्बन्ध सुधारने के लिए एक बार अवसर देने का निश्चय किया। मानसिंह ने अपना प्रतिनिधि मण्डल अजमेर भेजा।[१७१] इस दल मे व्यास मनोपराम, रीयाँ के ठाकुर और बुनन्दा के ठाकुर सम्मिलित थे। यह दल एलवेस से ५ अगस्त, १८३४ को अजमेर मे मिला।[१७२] वार्ता के दौरान एलवेस यह अनुभव करने लगा कि यह दल शक्ति हीन ही नही बल्कि निर्णय लेने की क्षमता भी नहीं रखता था।[१७३] अतः उसने एक रोष भरा पत्र मानसिंह को लिखा और चेतावनी दी कि यदि समस्याओं के निवारण के लिए उसने उचित कार्यवाही नही की तो ब्रिटिश सरकार को बाध्य होकर उसे पदच्युत करना पडेगा और उसके स्थान पर धोंकलसिंह को मारवाड का राज्य सौंप दिया जाएगा।[१७४] मानसिंह ने सितम्बर मे खीवसर ठाकुर रणजीतसिंह के नेतृत्व म दूसरा दल भेजा।[१७५] यह दल २६ सितम्बर को एलवेस से मिला।[१७६] ८ अक्टूबर को उसने उन सभी शर्तों पर हस्ताक्षर कर दिये, जो एलवेस ने रखी थी।[१७७]

इस समझौते के अनुसार[१७८] मानसिंह ने यह स्वीकार किया कि वह—

(१) किशनगढ़, सिरोही और जैसलमेर प्रदेश म हुई डकैती की क्षति पूर्ति देगा।

(२) ठगी प्रथा को अपने राज्य मे अवैध घोषित करेगा।

(३) डा० मोटले के हत्यारे को ब्रिटिश सरकार को सोंप देगा एवं उसके यहाँ हुई डकैती की क्षतिपूर्ति देगा।

(४) सिरोही मे सीमा पर हुई डकैती की क्षतिपूर्ति के रूप मे १० से १२ लाख रुपये देगा। परन्तु उस धनराशि मे से धनराशि काट ली जाएगी जो उसे सिरोही के शासक की ओर से देय थी।

(५) पिछले बुरे आचरण के लिए क्षमायाचना करेगा तथा भविष्य मे अग्रेजो से अच्छा व्यवहार करेगा।

(६) अजमेर मे जोधपुर के विरुद्ध सैनिक तैयारियो के लिए जो खर्च हुआ, उसकी मद मे पाँच लाख रुपये चार महीनों के भीतर-भीतर देगा और

(७) भविष्य म आवश्यकता पडने पर अग्रेजों को अच्छे अश्वारोही सैनिको की टुकडी भेजेगा।

ठाकुर रणजीतसिंह ने समझौते पर हस्ताक्षर कर जोधपुर शासक को वचनबद्ध कर दिया परन्तु अ ग्रेज मानसिंह के प्रति सशक बने रहे। अत उसकी स्थिति पर कडा नियत्रण करने एव समझौते की शर्तों के पालन हेतु ब्रिटिश सरकार ने बाडमेर मे एक सैनिक छावनी की स्थापना की।[१७९] महाराजा पर दण्डित क्षतिपूर्ति की लगातार अदायगी की जमानत के रूप मे साँभर की नमक झील पर अधिकार कर लिया।[१८०] मेरवाडा का क्षेत्र, जिसे आठ वर्ष के लिए अग्रेजो ने अपनी अधीनता में लिया था अक्टूबर १८३५ से ९ वर्ष के लिए बढ़ा लिया।[१८१] दिसम्बर मे

ऐरनपुर मे एक अन्य सैनिक छावनी स्थापित कर 'मारवाड लोजन' का सगठन किया, जिसका खर्चा १,१५,००० रुपया वार्षिक जोधपुर के शासक पर डाला गया ।[१८२]

१८३५ मे इंग्लैंड के मेलबोर्न मन्त्रिमण्डल के समक्ष मध्यपूर्व की समस्या अत्यन्त उग्र होने लगी । अफगानिस्तान मे ब्रिटेन और रूस के स्वार्थों का टकराव के कारण उक्त समस्या उत्पन्न हुई थी । मेलबोर्न उग्रवादी विदेशी नीति का समर्थक नही था । परन्तु भारत मे गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेंटिक की नीति उसके विपरीत थी । वह यह चाहता था कि भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य की पश्चिमी सीमा, सिंध नदी और पश्चिमी पहाडियों—किरथर, सुलेमान एव हिन्दूकुश तक होनी चाहिए । इस नीति का परिणाम न सिर्फ अफगानिस्तान से बल्कि रूस से खुली लडाई थी अत. मन्त्रिमण्डल ने सितम्बर १८३५ मे विलियम बेन्टिक को पदच्युत कर दिया उसका स्थान सर चार्ल्समैटकॉफ ने लिया । यह मार्च १८३६ तक गवर्नर-जनरल बना रहा । फिर लार्ड ऑकलैण्ड को इस पद पर नियुक्त किया गया । नये गवर्नर-जनरल ने लार्ड विलियम बेंटिक की सीमान्त नीति का ही अनुकरण किया ।[१८३]

ऑकलैण्ड ने शीघ्र ही 'वैज्ञानिक सीमा' की नीति को कार्यान्वित किया । सिंध और अफगानिस्तान के विरुद्ध सैनिक अभियानो के लिए उसने मारवाड को आधार-क्षेत्र बनाने का निश्चय किया । १८१८ की सधि के अनुसार जोधपुर-शासक अंग्रेजो के अधीनस्थ शासक हो चुका था अतः उसकी दृष्टि मे यह कार्य सधि के अनुकूल था । उसने सितम्बर १८३६ मे मालानी, मारवाड के पश्चिमी भाग को ब्रिटिश नियत्रण मे ले लिया और वहाँ सैनिक केन्द्र स्थापित कर दिये ।[१८४] इस सेना के खर्चे के लिए नावाँ, गुढा, डीडवाना और मारोठ के नमक उत्पादक क्षेत्र पर भी प्रत्यक्ष ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना कर दी ।[१८५] जोधपुर, बीकानेर और जयपुर राज्यो को एक ब्रिटिश अधीक्षक के अन्तर्गत करने के बारे मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा ।[१८६] मेजर एलवेस ने गवर्नर जनरल के सचिव मेक्नॉटन को सिफारिश की कि मारवाड के राजनैतिक वातावरण से लाडूनाथ व भीमनाथ को अनिवार्य रूप से पृथक् कर देना चाहिए क्योंकि वे दोनो मानसिंह के अंग्रेज विरोधी कार्यों को प्रोत्साहन देते हैं ।[१८७]

मानसिंह ने अंग्रेजो की इस नीति का घोर विरोध किया । मालानी और अन्य क्षेत्रों पर अचानक बाह्य अधिकार उसके लिए असहनीय था । अंग्रेजो की यह नीति एक तरफा ही नही थी बल्कि मारवाड के आन्तरिक क्षेत्र मे खुला हस्तक्षेप था तथा उससे मारवाड की आय पर भी काफी प्रतिकूल प्रभाव पड रहा था ।[१८८] अंग्रेजो ने उसके प्रतिरोध को सुना-अनसुना कर दिया । इस पर मानसिंह ने भारत मे अंग्रेज विरोधी असन्तुष्ट तत्वो से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उखाड फेंकने के लिए योजना तैयार की ।[१८९]

इसी बीच जोधपुर के प्रशासन मे सुधार करने हेतु गवर्नर-जनरल लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अजमेर के पोलिटिकल एजेण्ड एलमेस को आदेश दिया कि वह जोधपुर पर

जोधपुर के शासक के सर्वोच्चसत्ता-विरोधी आचरण से अजमेर मे उसके विरूद्ध सैनिक कार्यवाही करने का विचार होने लगा।[१७०] फिर भी पोलिटिकल एजेण्ट एलवेस ने मानसिंह को सम्बन्ध सुधारने के लिए एक वार अवसर देने का निश्चय किया। मानसिंह ने अपना प्रतिनिधि मण्डल अजमेर भेजा।[१७१] इस दल मे व्यास मनोपराम, रीयाँ के ठाकुर और बुनन्दा के ठाकुर सम्मिलित थे। यह दल एलवेस से ५ अगस्त, १८३४ को अजमेर मे मिला।[१७२] वार्ता के दौरान एलवेस यह अनुभव करने लगा कि यह दल शक्ति हीन ही नही बल्कि निर्णय लेन की क्षमता भी नही रखता था।[१७३] अतः उसने एक रोष भरा पत्र मानसिंह को लिखा और चेतावनी दी कि यदि समस्याओ के निवारण के लिए उसने उचित कार्यवाही नही की तो ब्रिटिश सरकार को बाध्य होकर उसे पदच्युत करना पडेगा और उसके स्थान पर धोकलसिंह को मारवाड का राज्य सौंप दिया जाएगा।[१७४] मानसिंह ने सितम्बर मे खीवसर ठाकुर रणजीतसिंह के नेतृत्व म दूसरा दल भेजा।[१७५] यह दल २६ सितम्बर को एलवेस से मिला।[१७६] ८ अक्टूबर को उसने उन सभी शर्तों पर हस्ताक्षर कर दिये, जो एलवेस ने रखी थी।[१७७]

इस समझौते के अनुसार[१७८] मानसिंह ने यह स्वीकार किया कि वह—

(१) किशनगढ, सिरोही और जैसलमेर प्रदेशो मे हुई डकैती की क्षति पूर्ति देगा।
(२) ठगी प्रथा को अपने राज्य मे अवैध घोषित करेगा।
(३) डा० मोटले के हत्यारे को ब्रिटिश सरकार को सौंप देगा एव उसके यहाँ हुई डकैती की क्षतिपूर्ति देगा।
(४) सिरोही मे सीमा पर हुई डकैती की क्षतिपूर्ति के रूप मे १० से १२ लाख रुपये देगा। परन्तु उस धनराशि म से धनराशि काट ली जाएगी जो उसे सिरोही के शासक की ओर से देय थी।
(५) पिछले बुरे आचरण के लिए क्षमायाचना करेगा तथा भविष्य मे अग्रेजो से अच्छा व्यवहार करेगा।
(६) अजमेर मे जोधपुर के विरुद्ध सैनिक तैयारियो के लिए जो खर्च हुआ, उसकी मद मे पाँच लाख रुपये चार महीनो के भीतर-भीतर देगा और
(७) भविष्य म आवश्यकता पडने पर अग्रेजो को अच्छे अश्वारोही सैनिको की टुकडी भेजेगा।

ठाकुर रणजीतसिंह ने समझौते पर हस्ताक्षर कर जोधपुर शासक को वचनबद्ध कर दिया परन्तु अग्रेज मानसिंह के प्रति सशक बने रहे। अत उसकी स्थिति पर कडा नियन्त्रण करने एव समझौते की शर्तों के पालन हेतु ब्रिटिश सरकार ने बाडमेर में एक सैनिक छावनी की स्थापना की।[१७९] महाराजा पर दण्डित क्षतिपूर्ति की लगातार अदायगी की जमानत के रूप मे सांभर की नमक झील पर अधिकार कर लिया।[१८०] मेरवाडा का क्षेत्र, जिसे आठ वर्ष के लिए अग्रेजो ने अपनी अधीनता में लिया था अक्टूबर १८३५ से ६ वर्ष के लिए बढा लिया।[१८१] दिसम्बर मे

ऐरनपुर मे एक अन्य सैनिक छावनी स्थापित कर 'मारवाड लीजन' का सगठन किया, जिसका खर्चा १,१५,००० रुपया वार्षिक जोधपुर के शासक पर डाला गया ।[१८२]

१८३५ मे इग्लैड के मेलबोर्न मन्त्रिमण्डल के समक्ष मध्यपूर्व की समस्या अत्यन्त उग्र होने लगी । अफगानिस्तान मे ब्रिटेन और रूस के स्वार्थो का टकराव के कारण उक्त समस्या उत्पन्न हुई थी । मेलबोर्न उग्रवादी विदेशी नीति का समर्थक नही था । परन्तु भारत मे गवर्नर-जनरल लार्ड विलियम बेंटिक की नीति उसके विपरीत थी । वह यह चाहता था कि भारत मे अग्रेजी साम्राज्य की पश्चिमी सीमा, सिंध नदी और पश्चिमी पहाडियों—किरथर, सुलेमान एव हिन्दूकुश तक होनी चाहिए । इस नीति का परिणाम न सिर्फ अफगानिस्तान से बल्कि रूस से खुली लडाई थी अत मन्त्रिमण्डल ने सितम्बर १८३५ मे विलियम बेन्टिक को पदच्युत कर दिया उसका स्थान सर चार्ल्समेटकॉफ ने लिया । यह मार्च १८३६ तक गवर्नर-जनरल बना रहा । फिर लार्ड ऑकलैण्ड को इस पद पर नियुक्त किया गया । नये गवर्नर-जनरल ने लार्ड विलियम बेंटिक की सीमान्त नीति का ही अनुकरण किया ।[१८३]

ऑकलैण्ड ने शीघ्र ही 'वैज्ञानिक सीमा' की नीति को कार्यान्वित किया । सिंध और अफगानिस्तान के विरुद्ध सैनिक अभियानो के लिए उसने मारवाड को आधार-क्षेत्र बनाने का निश्चय किया । १८१८ की सधि के अनुसार जोधपुर शासक अग्रेजो के अधीनस्थ शासक हो चुका था अतः उसकी दृष्टि मे यह कार्य सधि के अनुकूल था। उसने सितम्बर १८३६ में मालानी, मारवाड के पश्चिमी भाग को ब्रिटिश नियत्रण मे ले लिया और वहाँ सैनिक केन्द्र स्थापित कर दिये ।[१८४] इस सेना के खर्चे के लिए नावाँ, गुढा, डीडवाना और मारोठ के नमक उत्पादक क्षेत्र पर भी प्रत्यक्ष ब्रिटिश प्रशासन की स्थापना कर दी ।[१८५] जोधपुर, बीकानेर और जयपुर राज्यो को एक ब्रिटिश अधीक्षक के अन्तर्गत करने के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाने लगा ।[१८६] मेजर एलवेस ने गवर्नर जनरल के सचिव मेक्नॉटन को सिफारिश की कि मारवाड के राजनैतिक वातावरण से लाडूनाथ व भीमनाथ को अनिवार्य रूप से पृथक् कर देना चाहिए क्योंकि वे दोनो मानसिंह के अग्रेज विरोधी कार्यों को प्रोत्साहन देते हैं ।[१८७]

मानसिंह ने अग्रेजो की इस नीति का घोर विरोध किया । मालानी और अन्य क्षेत्रों पर अचानक बाह्य अधिकार उसके लिए असहनीय था । अग्रेजो की यह नीति एक तरफा ही नहीं थी बल्कि मारवाढ के आन्तरिक क्षेत्र मे खुला हस्तक्षेप था तथा उससे मारवाड की आय पर भी काफी प्रतिकूल प्रभाव पड रहा था ।[१८८] अग्रेजों ने उसके प्रतिरोध को सुना अनसुना कर दिया । इस पर मानसिंह ने भारत मे अग्रेज विरोधी असन्तुष्ट तत्वो से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें उखाड फेंकने के लिए योजना तैयार की ।[१८९]

इसी बीच जोधपुर के प्रशासन मे सुधार करने हेतु गवर्नर-जनरल लॉर्ड ऑकलैण्ड ने अजमेर के पोलिटिकल एजेण्ट एलवेस को आदेश दिया कि वह जोधपुर पर

आक्रमण करे और महाराजा को गद्दी छोडने के लिए बाध्य कर तथा उसके स्थान पर धोंकलसिंह को या उसके नवजात शिशु को शासक बनाए।[१६०] एलवेस बीमार होने के कारण जोधपुर पर आक्रमण नहीं कर सका। मार्च १५,१८३९ को उसके स्थान पर कर्नल सदरलैण्ड नया पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त किया गया।[१६१] वह इस उद्देश्य से जोधपुर पहुँचा कि महाराजा से ब्रिटिश मांगों के बारे में वार्ता करे।[१६२] इसके अलावा वह मानसिंह पर इस बात के लिए भी डालना चाहता था कि दोस्त मोहम्मद के विरुद्ध वह शाहशुजा की मदद करे।[१६३]

वह ३ अप्रैल १८३९ को जोधपुर पहुँचा और ४ अप्रैल को वार्ता प्रारम्भ हुई। सदरलैण्ड ने महाराजा के सामने मागों का विवरण प्रेषित किया।[१६४] इसके अनुसार—

१ पांच वर्ष का बकाया कर व तीन वर्ष का सवार खर्च दिया जाए।
२. राज्य के प्रमुख ठाकुरों को उनके पदों पर पुनः नियुक्त किया जाए तथा उनकी जागीरें लौटायी जाएं।
३. राज्य के मन्त्रिमण्डल से उन लोगों को हटाया जाए जो ब्रिटिश सत्ता का विरोध करते हों।[१६५]

वार्ता आठ दिन तक चलती रही परन्तु मानसिंह ने किसी भी मांग पर स्वीकृति प्रदान नहीं की।[१६६] वार्ता चल ही रही थी कि सदरलैण्ड को विलोधवी से सूचना प्राप्त हुई कि भारत के देशी शासकों ने अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए एक संघ बनाया है, जिसका नेतृत्व मारवाड का महाराजा मानसिंह कर रहा है।[१६७] सदरलैण्ड को पहले तो विश्वास नहीं हुआ परन्तु जब उसके रहते नेपाल का राजदूत जोधपुर *आया और मानसिंह ने जिस आदर-सत्कार के साथ उसकी आवभगत* की उससे सदरलैण्ड को मानसिंह की नीति पर सन्देह होने लगा।[१६८] इस पर उसने अप्रैल २५ से महाराजा से वार्ता भंग कर दी।[१६९] तत्काल ही उसने धोकलसिंह को जोधपुर की गद्दी देने का निश्चय किया परन्तु इसके लिए वहां का वातावरण अनुकूल नहीं था।[२००] उसने ८ जून को जोधपुर से प्रस्थान किया और १४ जून के एक पत्र में उसने महाराजा को सूचना भेजी कि उसने महाराजा के वकील को बर्खास्त कर दिया है[२०१] क्योंकि उसने ब्रिटिश सरकार की मांगों की पूर्ति नहीं कर संधि का उल्लंघन किया है। इसलिए उसके प्रदेश को ब्रिटिश सुरक्षा नहीं दी जा सकती है।[२०२]

गवर्नर जनरल के आदेश प्राप्त होने के बाद,[२०३] सदरलैण्ड ने अगस्त १७ को जोधपुर के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।[२०४] २८ अगस्त को १००० अश्वारोहियों ३००० पैदल सैनिकों और १२ युद्ध तोपों के साथ ब्रिगेडियर रोश के नेतृत्व में उसने मारवाड पर आक्रमण कर दिया।[२०५] मार्ग में असंतुष्ट सामन्त १५०० सैनिकों के साथ उससे मिल गये।[२०६] महाराजा ने इस आक्रमण का सामना करने के लिए नगर के मेडतिया द्वार के बाहर अपना डेरा डाला।[२०७] परन्तु अंग्रेजों की

शक्ति अधिक जानकर उसने वार्ता का माध्यम अपनाया।[२०८] सदरलैंड ने इस ओर ध्यान नही दिया। उसने १६ सितम्बर को जोधपुर के किले पर अधिकार कर लिया।[२०९] एक अंग्रेज सेना वहा पर रख दी गयी।[२१०]

महाराजा ने पूर्ण आत्म-समर्पण कर दिया।[२११] सदरलैण्ड के आदेशों पर मानसिंह ने अपनी सरकार का पुनः सगठन किया। नाथों को प्रशासन से हटा दिया गया। क्षुब्ध सामतो को पुन विश्वास मे ले लिया गया तथा जोधपुर स्थित पोलिटिकल एजेण्ट की राय से शासन करने का वचन दिया।[२१२] सदरलैण्ड ने लडलो को जोधपुर का पोलिटिकल एजेण्ट नियुक्त[२१३] किया और उसकी सेवा मे एक अंग्रेजी सेना रखकर सदरलैण्ड ४ दिसम्बर को अजमेर चला आया।[२१४] जब वह २५ फरवरी १८४० को जोधपुर वापिस आया[२१५] तो महाराजा के आचरण मे महत्वपूर्ण परिवर्तन पाया।[२१६] अतः उसने २८ फरवरी को जोधपुर का किला उसे वापिस दे दिया।[२१७]

नये शासन ने, जो कि लडलो की राय से कार्य करता था, नाथो का देश से निष्कासन कर दिया। इससे मानसिंह को अत्यन्त पीड़ा हुई। वह उनसे गुप्त पत्र-व्यवहार करता रहा और यह प्रयास करता रहा कि जोधपुर मे उनका प्रभाव पुनः स्थापित हो सके।[२१८] लडलो बार बार इसका विरोध करता रहा।[२१९] पर जब मानसिंह ने इस विरोध की परवाह नही की तो पोलिटिकल एजेण्ट ने दो प्रमुख नाथो को गिरफ्तार कर अजमेर भेज दिया।[२२०] १८४२ के अन्त मे जब मानसिंह को कहा गया कि वह दिल्ली जाकर नाथो की समस्या के सम्बन्ध मे गवर्नर-जनरल से बात करे तो यह बहाना बनाकर दिल्ली नहीं गया कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है।[२२३] यह महाराजा ने अकोली जागीर पुन सिंधिया को लौटा देने के आदेश दिये तो लडलो की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गयी।[२२२] १८४३ के प्रारम्भ मे महाराजा ने राज्य का सारा कार्य संभालने और नाथो की मुक्ति की घोषणा करने का निश्चय किया।[२२१] अंग्रेजों को यह अनुचित लगा। जब मानसिंह को नियंत्रित नही किया जा सका तो अंग्रेजी सरकार ने जून १८४३ मे उसे गद्दी से हटाकर उसके निकट सम्बन्धी को उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय ले लिया।[२२४] परन्तु इसके पूर्व कि यह निर्णय क्रियान्वित हो पाता, मानसिंह की ५ सितम्बर १८४३ को मृत्यु हो गयी।[२२५]

सन्दर्भ

१. वह रघुजी भोंसले के छोटे भाई व्यकोजी मान्या बापू का पुत्र था जिसकी मृत्यु १८११ मे बनारस मे हुई (पी०ग्रार०सी० ग्रन्थ (५), २१४)
२ पी०ग्रार०सी० (५) २२७, २२६-२३१, नागपुर पर जेंकिन्स की रिपोर्ट, पृ० ६८-६६
३. पी०ग्रार०सी० (५) २३२, नागपुर पर जेंकिन्स की रिपोर्ट, पृ० ७१-७२
४. पी०ग्रार०सी० (५), २३५
५. उपर्युक्त २३६
६. उपर्युक्त २३६, कलकत्ता गजेटियर (१८१३-१८२३) ग्रन्थ ५, पृ० २५६
७-८ पी०ग्रार०सी० (५) २४८
६ हॉकिंस का स्विण्टन को प्रतिवेदन (गगासिंह के षडयत्र के बारे मे) एफ०पी० १६ अप्रैल १८३० न० २५
१०. उपर्युक्त न० २६
११. उपर्युक्त न० २५
१२. मेटकॉफ का ए० स्टर्लिंग, गवर्नर-जनरल का फारसी सचिव, को पत्र, २० सितम्बर १८२६, एफ० पी० २५ अक्टूबर १८२६ न० ४
१३ बी०डी० बसु, 'राईज ऑफ क्रिश्चियन पॉवर इन इण्डिया; ग्रन्थ (४), पृ० ४४०-४४१
१४. हॉकिन्स का स्विण्टन को प्रतिवेदन (गगासिंह के बारे मे) एफ० पी० १६ अप्रैल १८३० न २५ व २६
१५. उपर्युक्त न० २५ व २६
१६. उपर्युक्त न० २६
१७ गवर्नर-जनरल के सचिव से दिल्ली रेजीडेण्ट को पत्र, २३ मई १८२८, एफ० पी० २३ मई १८२८ न० ४१
१८. हॉकिन्स का स्विण्टन को प्रतिवेदन (गगासिंह के बारे मे) एफ० पी० १६ अप्रैल १८३० न० २५ व २६
१६. केवेन्डिश से ब्रोलब्रुक को पत्र, १६ मार्च १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२
२०. ब्रोलब्रुक से केवेण्डिश को पत्र, २० मई १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १३
२१-२२ केवेण्डिश से ब्रोलब्रुक को पत्र, १६ मार्च १८२६ एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२

२३ केवेण्डिश से कोलब्रुक को पत्र ८ व १३ मई १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२ व १३, मप्पा साहिब के बारे में मराठों का पत्र, १३ व पन्द्रह अगस्त १८२६, एफ०पी० २८ मई १८३० न० १५

२४ केवेण्डिश से कोलब्रुक को पत्र, ८ मई १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२

२५ कोलब्रुक से केवेण्डिश को पत्र, १६ मई, १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२

२६ केवेण्डिश से कोलब्रुक को पत्र, ८ मई १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १२

२७-२८ उपर्युक्त पत्र, २५ मई, १८२६, एफ०पी० १६ जून १८२६ न० २६ व ११ जून १८२६, एफ०पी० ३ जुलाई १८२६ न० २८

२६ कोलब्रुक का केवेण्डिश को पत्र, २० मई १८२६, एफ०पी० ५ जून १८२६ न० १३

३० कोलब्रुक का हिवण्टन को पत्र २ व ४ जून १८२६, एफ०पी० १६ जून १८२६ न० २६ व २७

३१ केवेण्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २५ मई १८२६, एफ० पी०१६ जून १८२६ न० २३६

३२ ३३ उपर्युक्त

३४ केवेण्डिश का मानसिंह को पत्र, ८ मई १८२६, जे०बी०आर०एस० ग्रन्थ ३३ (१६४७) भाग १ व २

३५ केवेण्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २५ मई १८२६, एफ०पी० १६ जून १८२६ न० २६

३६ रेजिडेण्ट दिल्ली का जोधपुर के पोलिटिकल एजेण्ट, मेहता बच्छराज को पत्र, एफ०पी० १६ जून १८२६ न० २६

३७ ३८ केवेण्डिश का मानसिंह को पत्र, ८ मई १८२६, जे०बी०आर०एस० ग्रन्थ (३३) (१६४७) भाग १ व २

३६ केवेण्डिश का कोलब्रुक को पत्र, २७ मई १८२६, एफ०पी० १६ जून १८२६ न० २७

४० उपर्युक्त, ८ जून १८२६ का पत्र, एफ०पी० ३ जुलाई १८२६ न० २५

४१ विल्सन, ग्रन्थ (६) पृ० ३०६ ३११

४२ केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, २३ सितम्बर १८२६, एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ न० ३

४३ केवेण्डिश का मानसिंह को पत्र, ८ मई १८२६, ज० बी० आर० एस० ग्रन्थ (३३) (१६४७) भाग १ व २, केवेण्डीश का कालब्रुक को पत्र, २५ मई

१८२६, एफ०पी० १९ जून १८२६ न० २६; रेजीडेण्ट दिल्ली का मेहता बच्छराज को पत्र, ए०पा० १६ जून १८२६

४४. केवेण्डिश का कालब्रुक को पत्र, ८ जून १८२६, एफ०पी० ३ जुलाई १८२६ न० २५ व २० जून १८२६, एफ०पी० ७ अगस्त १८२६ न० ८

४५ केवेण्डिश का हॉकिन्स का पत्र, २३ सितम्बर १२८६ एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६, न० ३

४७-४८ केवेण्डिश का कोलब्रुक को पत्र, ८ जून १८२६ एफ०पी० ३ जुलाई १८२६ न० २५

४६. केवेण्डिश से कालब्रुक को पत्र, २७ जून १८२६, एफ० पी० २४ जुलाई १८२६ न० १६; अप्पाजी अंग्रेजों के शत्रु घोषित किये गये थे। उनकी गिरफ्तारी के लिए पुरस्कार भी रखा गया था (पी०आर०सी० (५) २४१)

५० केवण्डिश का मानसिंह को पत्र, १२ जून १८२६, जे०बी० आर० एस० ग्रन्थ (३३) (१६४७) भाग १ व २

५१-५२ केवेण्डश का कोलब्रुक को पत्र, २६ जून १८२६, एफ०पी० ३१ जुलाई १८२६ न० ८, कालब्रुक का स्वीण्टन को पत्र, ४ जुलाई १८२६, एफ०पी० २४ जुलाई १८२६, न० २०

५३ अप्पा साहिब के बारे मे मराठी पत्र, १४ जुलाई १८२६, एफ० पी० २८ मई १८३० न० १५

५४. हकीकत बही न० २. पृ० २१८

५५-५७. केवण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १० अक्टूबर १८२६, एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ न० ६

५८. केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, २३ सितम्बर १८२६, एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ न० ३, हॉकिन्स का मानसिंह को पत्र, २ अक्टूबर १८२६, जे०बी० आर०एस० (३३) (१६४७) भाग १ व २, केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १२ अक्टूबर १८२६ एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ न० ६

५६-६७ केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १२ अक्टूबर १८२६, एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ न० ६

६८. जोधपुर मे अखबारनवीस की सूचना का साराश १७ अक्टूबर १८२६ (हॉकिन्स का स्विण्टन को पत्र १० नवम्बर १८२६, एफ०पी० ४ दिसम्बर १८२६ न० १०)

६६ जोधपुर अखबारनवीस की रिपोर्ट १८ व २० अक्टूबर १८२६ का साराश (हॉकिन्स का स्विण्टन को पत्र, १० नवम्बर १८२६ एफ०पी० ४ दिसम्बर १८२६, न० १०)

७०-७१ टोक से अप्पा साहिब के बारे मे गुप्त सूचनाएँ, केवेण्डिश का स्वीण्टन को पत्र, १२ अक्टूबर १८२६, एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ न० ६

७२ केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १२ अक्टूबर १८२६, एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ नं० ६

७३ मानसिंह का गवर्नर-जनरल को पत्र, जो उसे १६ अक्टूबर १८२६ को प्राप्त हुआ, एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ नं० ५

७४ मानसिंह का हॉकिन्स को पत्र, जो १६ अक्टूबर १८२६ को मिला : एफ०पी० १३ नवम्बर १८२६ नं० ६

७५ विलियम बेन्टिक का मानसिंह को पत्र, ६ नवम्बर १८२६, एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ नं० ६; स्वीण्टन का हॉकिन्स को पत्र, ६ नवम्बर १८२६ एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ नं० ७

७६ केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १२ दिसम्बर १८२६, एफ०पी० १५ जनवरी १८३० नं० ५

७७ मानसिंह का गवर्नर-जनरल को पत्र, जो १ फरवरी १८३० को प्राप्त हुआ, एफ०पी० ५, मार्च १८३० नं० ७६

७८-७९ केवेण्डिश का हॉकिन्स को पत्र, १२ फरवरी १८३० एफ०पी०, १६ फरवरी १८३० नं० १६

८० ए०एस० गोम, नागपुर रेजीडेण्ट का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ०पी० २६ अक्टूबर नं० १०२, प्रोसीडिंग्ज पृ० ४३२

८१ एफ०पी० २७ फरवरी १८३३ नं० २१।

८२ ब्रिग्ज, नागपुर में रेजीडेण्ट का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, १८ अगस्त १८३४, एफ०पी० ५ सितम्बर १८३४ नं० २०

८३ उपर्युक्त, नागपुर से जोधपुर की यात्रा करने वाले 'रसीद' प्राप्त पत्रों का अनुवाद, पत्र नं० ३, अप्पाजी का अमृतराव को पत्र, १४ जून १८३४, एफ० पी० ५ सितम्बर १८३४ नं० २१ (उटकमण्ड प्रोसीडिंग्ज)

८४ ए०जी०जी० (अजमेर) का मेकनॉटन को पत्र, २८ जुलाई १८३५, एफ०पी० २४ अगस्त १८३५ नं० २२, एलवेस का प्रेसकॉट को पत्र, १० नवम्बर १८३६, एफ०पी० १२ दिसम्बर १८३६ नं० १३

८५ ए०जी०जी० (अजमेर) का मेकनॉटन को पत्र, २८ जुलाई १८३५, एफ०पी० २४ अगस्त १८३५ नं० २२

८६ एल्वेस का आर० स्कॉट को पत्र, १७ जुलाई १८३८, इसमें जोधपुर वकील की १३ जुलाई १८३८ की लिखी अर्जी है, एफ०एस० अगस्त २२, १८३८ नं० ३६

८७ गवर्नर जनरल के सचिव का आर० स्कॉट को पत्र, १० अप्रेल १८३७, एफ० पी० १० अप्रेल १८३७ नं० ६१

८८ एलवेस का मेकनॉटन को पत्र, १७ जुलाई १८३८, एफ०एस० २२ अगस्त १८३८ नं० ३६

८६　उपर्युक्त, १६ जून १८३८ का पत्र, एफ०एम० १२ सितम्बर १८३८ न० २६, १२ सितम्बर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३६ न० २५ और १५ सितम्बर १८३८ ए०पी०, ३ अक्टूबर १८३८ न० १४७

६०　एलवेस का मेकनॉटन को पत्र, ६ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३६ न० २७

६१　उपर्युक्त पत्र दि १७ जुलाई १८३८ जिममे जोधपुर से मिर्जा मोहिलाह की १२ जलाई १८३८ की सूचना है। एफ०एस० २२ अगस्त १८३८ न० ३६

६२　उपर्युक्त, पत्र दि ६ अक्टूबर १८३८ एफ०सी० २३ जनवरी १८३६ न० २७

६३　उपर्युक्त, पत्र दि १२ सितम्बर १८३८ एफ०पी० २२ जनवरी १८३६ न० २६, ६ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३६ न० २७, २२ अक्टूबर १८३८ एफ०पी० २३ जनवरी १८३६ न० ३१

६४.　मेकनॉटन का एलवेस को पत्र, २२ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३८ न० २६

६५　एलवेस का टोरेन्स को पत्र, २२ दिसम्बर १८३८, एफ०पी० ३ अप्रेल १८३६ न० ४८१

६६　एलवेस का मेकनॉटन को पत्र, १५ नवम्बर १८३८, एफ० २३ जनवरी १८३६ न० ३३

६७　मेकनॉटन का एलवेस को पत्र, २२ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३८ न० २६

६८.　सदरलेंड का मानसिंह को पत्र, २६ अप्रेल १८३६ जे०बी०आर०एम० ग्रन्थ (३३) (१६४७) भाग १ व २, बेडॉक का सदरलैण्ड को पत्र २३ मई १८३६, एफ० पी० ७, अगस्त १८३६ न० ३०

६६　सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र ३ मई १८३६ (अप्पा साहिब-सदरलैण्ड पत्र व्यवहार की प्रतिलिपियाँ एफ०पी० १६ जून १८३६ न० २५

१००.　उपर्युक्त पत्र दि ६ जून १८३६, एफ०पी० २१ अगस्त १८३६ न० ६८, प्रोसीडिंग्ज पृ० ८७ ८८

१०१.　मई १८३६ को डा० रसेन को बीमार अप्पा साहिब का इलाज करने भेजा गया।

१०२　सदरलैंड का टॉरेन्स को पत्र, १८ जुलाई १८४०, एफ०पी० ३ अगस्त १८४० न० १२३

१०३　सदरलेण्ड का मानसिंह को पत्र, १४ जून १८३६, एफ०पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३६

१०४　देखिए इसी अध्याय का खण्ड ३

१०५　सदरलेण्ड का वेडॉक को पत्र, २६ दिसम्बर १८३६, एफ०पी० १२ फरवरी १८४० न० ४७

१०६. बेडॉक का सदरलैण्ड को पत्र, १० जून १८३६, एफ०पी० २१ अगस्त १८३६ न० ६७; सदरलैण्ड का बेडॉक को पत्र, २६ दिसम्बर १८३६, एफ० पी० १२ फरवरी १८४० न० ४२

१०७. उपर्युक्त, दिनांक को सदरलैण्ड का बेडॉक को पत्र

१०८. सदरलैण्ड का हेमिल्टन को पत्र, २ मार्च १८४०, एफ०पी० २३ मार्च १८४० न० ५७

१०९-११०. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, २६ मार्च १८४६, एफ० पी० २७ अप्रेल १८४० नं० ३२

१११-११२ उपर्युक्त, पत्र दि० १५ जुलाई १८४०, साथ में सदरलैण्ड का टॉरेन्स को १८ जुलाई १८४० को पत्र, एफ० पी० ३ अगस्त १८४० नं० १२३

११३. बेडॉक का सदरलैण्ड को पत्र, १६ जुलाई १८४२, आर० ए० ओ० फाइल न० २८, जोधपुर, १८४२ पृ० १–२

११४. सदरलैण्ड का बेडॉक को पत्र, २६ जुलाई १८४२ आर० ए० ओ० फाइल न० २८, जोधपुर १८४२, पृ० ३–७

११५. सदरलैण्ड का लडलो को पत्र, २६ जुलाई १८४२ आर० ए० ओ० फाइल न० २८, जोधपुर १८४२, पृ० ७

११६. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, २६ जुलाई १८४२, आर० ए० ओ० फाइल नं० २८, जोधपुर १८४२ पृ० ८–१०

११७ लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, २५ जुलाई १८४२—परिशिष्ट नं० १, आर० ए० ओ० फाइल नं० २७, जोधपुर १८४२, पृ० १६, अकोली का नाम आज कल एकेली है, जो मेड़ता के दक्षिण मे ८ मील पर है।

११८. स्पेयर्स का सदरलैण्ड को पत्र, १४ जनवरी १८४२, आर० ए० ओ० फाइल न० २७, जोधपुर १८४२ पृ० १६

११९. उपर्युक्त एव एक अन्य पत्र ८ जून १८४२, उपर्युक्त फाइल पृ० ९–१०

१२०. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, १६ अप्रेल १८४२ आर० ए० ओ० फाइल नं० २७, जोधपुर १८४२ पृ० ५

१२१-१२२. उपर्युक्त पत्र दि० २५ जुलाई १८४२, आर० ए० ओ० फाइल नं २७, जोधपुर (१८४२) पृ० १६

१२३. उपर्युक्त ७ सितम्बर १८४२, आर० ए० ओ० फाइल न० २७, जोधपुर १८४२, पृ० ३२

१२४. उपर्युक्त १२ सितम्बर १८४२, आर० ए० ओ० फाइल न० २७, जोधपुर १८४२ पृ० ३५

१२५. ऐचिसन : ट्रीटी, एनगेजमेण्ट, सनदस, (३) पृ० १२८–१२६

१२६. ऑक्टरलोनी का जे० एडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८८८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५५

१२७ उपर्युक्त पत्र एव ७ जनवरी १८१६ का पत्र, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८, न० ५५, मारवाड री ख्यात (४) पृ० ८६–६०, विल्सन (६) पृ० ३०६–३०७

१२८ ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी०, २६ दिसम्बर १८१८, न० ३२

१२६. ऑक्टरलोनी का जे० एडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५५

१३०. उपर्युक्त, पत्र दि० ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५१

१३१ ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८ एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५२

१३२ टॉड (२) पृ० १०६४ फुटनोट

१३३ उपर्युक्त, पृ० ८२२ १०६५

१३४ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ६० ६५, टाड (२) पृ० ८३२

१३५ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ६१ ६२, टाड (२) पृ० १०६७, विल्सन, (८) पृ० ३०७

१३६. विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१ न० १४, मारवाड री ख्यात पृ० ६२–६३, टॉड ग्रन्थ (२), पृ० १०६७ ६६, विल्सन (८) पृ० ३०७

१३७ विल्सन (८) पृ० ३०७

१३८-१३६ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ६७ ६८, टॉड (२) पृ० ११००-११०१, विल्सन (८) पृ० ३०७

१४०-१४१ विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१, न० १४, मारवाड री ख्यात (४) पृ० ६७ ६८

१४२. मारवाड के सामन्तो का कर्नल टॉड को पत्र, श्रावण सुदी २ वि० स० १८७८ ३१ जुलाई १८२१ टॉड (१) पृ० २२८ ३० से उद्धृत

१४३. डब्लू० जे० श्रीग्ज रिपोर्ट एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ न० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १६ २६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३३४–३३६, ऐचिसन ट्रीटीज, एगेजमेण्ट्स और सनद (३), पृ० १३० १३१

१४४ व्यास सूरजराम द्वारा किया गया समझौता, फाल्गुन सुदी २ वि० स० १८८० । ५ मार्च १८२४ (पो० फो० फाइल न० ७, पत्र ७ जोध०), एचिसन ट्रीटीज, एगेजमेण्ट्स और सनदें (३) पृ० १३२ १३३

१४५ उपर्युक्त

१४६ मारवाड री ख्यात (४), पृ० १०३, विल्सन (६) पृ० ३०८

१४७ मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४८. ब्रिग्ज रिपोर्ट : एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ न० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १६-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३७३); विल्सन (६) पृ० ३०७; मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४९-१५०. ट्रेवलिन का कालबुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, एफ०पी० ५, सितम्बर १८२८ न० २०, विल्सन (६) पृ० ३०६

१५१-१५२, कालबक का स्टीव्टन को पत्र, अगस्त १८२८, एफ० पी० ५ सितम्बर १८२८ न० २०

१५३-१५४. विल्सन (६) पृ० ३०६

१५५ मारवाड री ख्यात भाग (४), पृ० १०४, विल्सन (६) पृ० ३११

१५६. देखिए इसी अध्याय का भाग (आ)

१५७. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०५; विल्सन (६) पृ० ३१२; राज्य की वार्षिक आय ३७ लाख रुपये थी, ७ लाख रुपये नाथ गुट को दिये जाने लगे, १२ लाख ठाकुरों की जागीर के लिए, राज्य के लिए २० लाख रुपये रखे जाते थे।

१५८. मार्टिन का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २४ दिसम्बर १८३१, एफ० पी० ३० जनवरी, १८३२ न० ४०; लोकहार्ट का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ न० १४

१५९. विल्सन (६), पृ० ३१२

१६०. मानसिंह का स्टीव्टन को पत्र, जो कि उसे ६ अप्रेल १८३२ को प्राप्त हुआ, (एफ० पी० ७ मई १८३२ न. ३२); हकीकत बही न० ११ पृ० ३१८, ३२३; मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०८-१०६

१६१. लोकहार्ट का मेकनॉटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२ एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ नं० १६

१६२. लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एम० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०

१६३. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १११; विल्सन (६), पृ० ३१२

१६४. लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एस० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६५. वेडॉक का एलवीस को पत्र, २ अगस्त १८५४, एफ० पी० २२ अगस्त १८३४ न० १८, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६६. उपर्युक्त, एलबीस का मेकनॉटन को पत्र, ११ सितम्बर १८३४, आर० ए० ओ० फाइल न० ५, जोधपुर (२) १८३४ पैरा २

१६७. ब्रिग्ज रिपोर्ट, एफ० पी २६ अप्रेल १८४१ प्रोसिडिंग्ज १६-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३४५; मारवाड री ख्यात भाग (४) पृ० १११-११२

१२७. उपर्युक्त पत्र एवं ७ जनवरी १८१९ का पत्र, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८, नं० ५५; मारवाड री ख्यात (४) पृ० ८६–९०; विल्सन (९) पृ० ३०६–३०७

१२८. ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी०, २६ दिसम्बर १८१८, नं० ३२

१२९. ऑक्टरलोनी का जे० एडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ नं० ५५

१३०. उपर्युक्त, पत्र दि० ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ नं० ५१

१३१. ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८ एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ नं० ५२

१३२. टॉड (२) पृ० १०९४ फुटनोट

१३३. उपर्युक्त, पृ० ८२२, १०९५

१३४. मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९०-९५, टाड (२) पृ० ८३२

१३५ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९१-९२, टाड (२) पृ० १०९७, विल्सन, (८) पृ० ३०७

१३६. विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१ नं० १४, मारवाड री ख्यात पृ० ९२–९३; टॉड ग्रन्थ (२), पृ० १०९७-९९, विल्सन (८) पृ० ३०७

१३७ विल्सन (८) पृ० ३०७

१३८-१३९ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९७-९८; टॉड (२) पृ० ११००-११०१, विल्सन (८) पृ० ३०७

१४०-१४१ विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१, नं० १४, मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९७-९८

१४२. मारवाड के सामन्तों का कर्नल टॉड को पत्र, श्रावण सुदी २ वि० स० १८७८ ३१ जुलाई १८२१ टॉड (१) पृ० २२८-३० से उद्धृत

१४३. डब्लू० जे० श्रीग्ज रिपोर्ट : एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ नं० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १९ २६ अप्रेल १८४१ नं० ८९४ अ० पृ० ३३४–३३६, ऐश्चिन · ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट्स और सनदें (३), पृ० १३०-१३१

१४४. व्यास सूरनराम द्वारा किया गया समझौता, फाल्गुन सुदी २ वि० स० १८८० । ५ मार्च १८२४ (पो० फो० फाइल नं० ७, पत्र ■ जोध०), एश्चिन : ट्रीटीज, एंगेजमेण्टस और सनदें (३) पृ० १३२-१३३

१४५. उपर्युक्त

१४६. मारवाड री ख्यात (४), पृ० १०३, विल्सन (९) पृ० ३०८

१४७. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४८. ब्रिग्ज् रिपोर्ट : एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ न० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १९-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ ग्र० पृ० ३७७); विल्सन (६) पृ० ३०७; मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४९-१५०. ट्रेवलिन का कालब्रुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, एफ०पी० ५, सितम्बर १८२८ न० २०, विल्सन (६) पृ० ३०६

१५१-१५२, कालब्रुक का स्वीण्टन को पत्र, अगस्त १८२८, एफ० पी० ५ सितम्बर १८२८ न० २०

१५३-१५४. विल्सन (६) पृ० ३०६

१५५ मारवाड़ री ख्यात भाग (४), पृ० १०४; विल्सन (६) पृ० ३११

१५६. देखिए इसी अध्याय का भाग (आ)

१५७. मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० १०५; विल्सन (६) पृ० ३१२; राज्य की वार्षिक आय ३७ लाख रुपये थी, ७ लाख रुपये नाथ गुट को दिये जाने लगे, १२ लाख ठाकुरो को जागीर के लिए, राज्य के लिए २० लाख रुपये रखे जाते थे।

१५८. मार्टिन का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २४ दिसम्बर १८३१, एफ० पी० ३० जनवरी, १८३२ न० ४०; लोकहार्ट का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ नं० १४

१५९. विल्सन (६), पृ० ३१२

१६०. मानसिंह का स्वीण्टन को पत्र, जो कि उसे ६ अप्रेल १८३२ को प्राप्त हुआ, (एफ० पी० ७ मई १८३२ न. ३२); हकीकत बही न० ११ पृ० ३१८, ३२३; मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० १०८-१०९

१६१. लोकहार्ट का मेकनॉटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२ एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ नं० १९

१६२. लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एम० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०

१६३. मारवाड़ री ख्यात (४) पृ० १११; विल्सन (६), पृ० ३१२

१६४. लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एस० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६५. वेडॉर का एलवीस को पत्र, २ अगस्त १८५४, एफ० पी० २२ अगस्त १८३४ न० १८, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६६. उपर्युक्त, एलवीस का मेकनॉटन को पत्र, ११ सितम्बर १८३४, आर० ए० ओ० फाइल न० ५, जोधपुर (२) १८३४ पैरा २

१६७. ब्रिग्ज रिपोर्ट, एफ० पी २६ अप्रेल १८४१ प्रोसिडिंग्ज १९-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३४५; मारवाड़ री ख्यात भाग (४) पृ० १११-११२

१२७ उपर्युक्त पत्र एवं ७ जनवरी १८१९ का पत्र, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८, न० ५५, मारवाड री ख्यात (४) पृ० ८९–९०, विलसन (९) पृ० ३०६–३०७

१२८. ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी०, २६ दिसम्बर १८१८, न० ३२

१२९. ऑक्टरलोनी का जे० एडम्स को पत्र, १५ नवम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५५

१३०. उपर्युक्त, पत्र दि० ४ दिसम्बर १८१८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५१

१३१ ऑक्टरलोनी का विल्डर को पत्र, ४ दिसम्बर १८१८ एफ० पी० २६ दिसम्बर १८१८ न० ५२

१३२ टॉड (२) पृ० १०९४ फुटनोट

१३३ उपर्युक्त, पृ० ८२२, १०९५

१३४ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९० ९५, टाड (२) पृ० ८३२

१३५ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९१ ९२, टाड (२) पृ० १०९७, विल्सन, (८) पृ० ३०७

१३६. विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१ न० १४, मारवाड री ख्यात पृ० ९२–९३, टॉड ग्रन्थ (२), पृ० १०९७ ९९, विल्सन (८) पृ० ३०७

१३७ विल्सन (८) पृ० ३०७

१३८ १३९ मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९७ ९८, टॉड (२) पृ० ११००-११०१, विल्सन (८) पृ० ३०७

१४० १४१ विल्डर का ऑक्टरलोनी को पत्र, २२ फरवरी १८२१, एफ० पी० २१ मार्च १८२१, न० १४, मारवाड री ख्यात (४) पृ० ९७-९८

१४२. मारवाड के सामन्तो का कर्नल टॉड को पत्र, श्रावण सुदी २ वि० स० १७७८ ३१ जुलाई १८२१ टॉड (१) पृ० २२८ ३० से उद्धृत

१४३. डब्लू० जे० श्रीग्स रिपोर्ट एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ न० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १९ २६ अप्रेल १८४१ न० ८९४ प्र० पृ० ३३४–३३६, ऐश्चिन ट्रीटीज, ए गेजमेण्टस और सनद (३) पृ० १३० १३१

१४४ व्यास सूरनराम द्वारा किया गया समझौता, फाल्गुन सुदी २ वि० स० १८८० । ५ मार्च १८२४ (पो० फो० फाइल न० ७ पत्र ७ जोध०), एश्चिन ट्रीटीज, ए गेजमण्टस और सनदें (३) पृ० १३२ १३३

१४५ उपर्युक्त

१४६ मारवाड री ख्यात (४), पृ० १०३, विलसन (९) पृ० ३०८

१४७. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४८. ब्रिग्ज् रिपोर्ट : एफ० पी० २६ अप्रेल १८४१ न० ७७, प्रोसीडिंग्ज, १६-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३७७); विल्सन (६) पृ० ३०७; मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०३-१०४

१४६-१५०. ट्रेवलिन का कालब्रुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, एफ०पी० ५, सितम्बर १८२८ न० २०, विल्सन (६) पृ० ३०६

१५१-१५२, कालब्रुक का स्वीण्टन को पत्र, अगस्त १८२८, एफ० पी० ५ सितम्बर १८२८ न० २०

१५३-१५४. विल्सन (६) पृ० ३०६

१५५ मारवाड री ख्यात भाग (४), पृ० १०४; विल्सन (६) पृ० ३११

१५६. देखिए इसी अध्याय का भाग (आ)

१५७. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०५; विल्सन (६) पृ० ३१२; राज्य की वार्षिक आय ३७ लाख रुपये थी, ७ लाख रुपये नाथ गुट को दिये जाने लगे, १२ लाख ठाकुरों की जागीर के लिए, राज्य के लिए २० लाख रुपये रखे जाते थे।

१५८. मार्टिन का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २४ दिसम्बर १८३१, एफ० पी० ३० जनवरी, १८३२ न० ४०; लोकहार्ट का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र, २८ सितम्बर १८३२, एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ न० १४

१५६. विल्सन (६), पृ० ३१२

१६०. मानसिंह का स्वीण्टन को पत्र, जो कि उसे ६ अप्रेल १८३२ को प्राप्त हुआ, (एफ० पी० ७ मई १८३२ न. ३२); हकीकत बही न० ११ पृ० ३१८, ३२३; मारवाड री ख्यात (४) पृ० १०८-१०६

१६१. लोकहार्ट का मेकनॉटन को पत्र, २८ सितम्बर १८३२ एफ० पी० २६ नवम्बर १८३२ नं० १६

१६२. लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एम० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०

१६३. मारवाड री ख्यात (४) पृ० १११; विल्सन (६), पृ० ३१२

१६४ लोकहार्ट का मानसिंह को पत्र, १५ सितम्बर १८३२, एफ० एस० २२ अक्टूबर १८३२ न० १०, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६५. वेडॉर का एलवीस को पत्र, २ अगस्त १८५४, एफ० पी० २२ अगस्त १८३४ न० १८, विल्सन भाग (६), पृ० ३१२

१६६. उपर्युक्त, एलवीस का मेकनॉटन को पत्र, ११ सितम्बर १८३४, आर० ए० ओ० फाइल न० ५, जोधपुर (२) १८३४ पैरा २

१६७. ब्रिग्ज रिपोर्ट, एफ० पी २६ अप्रेल १८४१ प्रोसिडिंग्ज १६-२६ अप्रेल १८४१ न० ८६४ अ० पृ० ३४५; मारवाड री ख्यात भाग (४) पृ० १११-११२

१६८. मानसिंह का गवर्नर-जनरल को पत्र, जो उसे २६ मई १८३३ को प्राप्त हुआ (एफ० पी० ६ जून १८३३ नं० १४)
१६६ विल्सन भाग ६, पृ० ३१३
१७०. वेडॉक का एलवीस को पत्र, २२ अगस्त १८३४ एफ०पी० २२ अगस्त १८३४, नं० १८
१७१–१७४ एलवीस का मेकनॉटन को पत्र, १८ अगस्त १८३४ एफ० पी० १३ सितम्बर १८३४ नं० १०
१७५–१७६ एलवीस का गवर्नर-जनरल के सचिव को पत्र ७ अक्टूबर १८३४, आर० ए० ओ० फाइल न० ५, जोधपुर (२), १७३४ पेरा ५
१७७. उपर्युक्त, १० अक्टूबर १८३४, आर० ए० ओ फाइल न० ५ जोधपुर (२) १८३४ पृ० १५५
१७८. उपर्युक्त, ६ अक्टूबर १८३४, आर० ए० ओ० फाइल नं० ५ जोधपुर (२) १८३४, पृ० १४३-१४५; विल्सन भाग (६) पृ० ३१४
१७६ मानसिंह का एलवीस को पत्र, २७ अक्टूबर १८३४, एफ० पी० २२ दिसम्बर १८३४ न० ४०
१८० विलियम बेंटिक का मानसिंह को पत्र, २ दिसम्बर १८३४ आर० ए० ओ० फाइल न० ५, जोधपुर (२), १८३४, पृ० १६६-२०२, विल्सन (६) पृ० ३१४
१८१–१८२. एटिश्चन : ट्रीटीज, एंगेजमेन्ट्स और सनदें : (३) पृ० १३५
१८३. बी० डी० बसु : ■ राइज ऑफ क्रिश्चियन पॉवर इन इण्डिया, भाग ५, पृ० ३६-४५; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया भाग ५, पृ० ४८६-४६०
१८४. गवर्नर-जनरल के सचिव ए० बुश को पत्र, २६ सितम्बर १८३६, एफ० पी० २६ सितम्बर १८३६ नं० ३०;
बी० डी० बसु, 'राइज आफ क्रिश्चियन पॉवर इन इण्डिया,' भाग ५, पृ० ४५
१८५. एलवीस के मेकनॉटन को पत्र, २८ जनवरी व ३१ मार्च १८३८, आर० ए० ओ० फाइल न० १४ अ, जोधपुर (२) १८३८, पृ० ४२ व १००
१८६ मेकनॉटन का ऐलवीस को पत्र, १० जनवरी १८३८ आर० ए० ओ० फाइल न० १४ अ, जोधपुर (२), १८३८, पृ० ७-८
१८७. एलवीस का मेकनॉटन को पत्र, २६ जनवरी १८३८, एफ० पी० २१ मार्च १८३८ न० ११२
१८८ मानसिंह का एलवीस को पत्र, जो कि उसे २७ अक्टूबर १८३६ को प्राप्त हुआ था, एफ० पी० २ दिसम्बर १८३६ न० ४०
१८६. सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३६, एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ नं० ३८, हैदराबाद का स्वतंत्रता का संघर्ष, भाग (१) (१८००-१८५७),

पृ० १३४-१३५, (१८३६-४० में मुबारिजउद्दौला द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध षड्यन्त्र में भाग लेने पर कमीशन की रिपोर्ट,

१९०. मेकनॉटन का एलबोस को पत्र, १ नवम्बर १८३८, एफ० पी० २६ दिसम्बर १८३८ न० २०, मारवाड़ री ख्यात भाग (४) पृ० ११६-११८, महाराजा के एक पुत्र १ मई १८३८ को हुआ पर उसकी २० अप्रेल १८३९ को मृत्यु हो गयी।

१९१. सदरलैण्ड की गवर्नर-जनरल के सचिव को रिपोर्ट, ७ अगस्त १८४७, एफ० पी० ७ अगस्त १८४७ न० ८४५ पृ० १२

१९२. सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३६ एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३८; सदरलैण्ड की गवर्नर-जनरल के सचिव को रिपोर्ट, ■ अगस्त १८४७ एफ० पी० ७ अगस्त १८४७ नं० ८४५ पृ० १२; ब्रिटिश मांग सिर्फ १०, १०, १८६, रुपये और दो आने की थी (सदरलैण्ड की मारवाड़ के ठाकुरों व जनता के नाम घोषणा, १७ अगस्त १८३६, एफ० एस० ६ नवम्बर १८३६।)

१९३-१९४ सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३६, एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३८

१९५. सदरलैण्ड का मानसिंह को पत्र, १४ जून १८३६ एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३६

१९६-२००. सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३६ एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३८

२०१-२०२. सदरलैण्ड का मानसिंह को पत्र, १४ जून १८३६ एफ० पी० २४ जुलाई १८३६ न० ३६

२०३. टॉरिंस का सदरलैण्ड को पत्र, ६ अगस्त १८३६, एफ० एस० ६ अक्टूबर १८३६ न० ३२

२०४ सदरलैण्ड की घोषणा, १७ अगस्त १८३६, एफ० एस० ■ नवम्बर १८३६ न ४३

२०५ सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, २० अक्टूबर १८३६ एफ० पी० २४ फरवरी १८४० न० ३४; सदरलैण्ड की गवर्नर-जनरल के सचिव को रिपोर्ट ७ अगस्त १८४७, एफ० पी० ७ अगस्त १८४७ न० ८४५ पृ० १६-२०

२०६-२०८. उपर्युक्त; मारवाड की ख्यात भाग (४) पृ० ११६-११७

२०९-२१०. सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, २० सितम्बर १८३६, एफ० पी० ■ जनवरी १८४० न ६६

२११ उपर्युक्त, पत्र दिनाङ्क २० अक्टूबर १८३६, एफ० पी० २४ फरवरी १८४० न० ३४; सदरलैण्ड की गवर्नर जनरल के सचिव को रिपोर्ट, ७ अगस्त १८४७ एफ० पी० ७ अगस्त १८४७ न० ८४५ पृ० २६, ३२

२१२ उपर्युक्त, ऐटिश्चन, ट्रीटीज, एगेजमेण्ट्स व सनदें, भाग ३, पृ० १३५-१३७

२१३ सदरलैण्ड का हविडसन को पत्र, १८ फरवरी १८४०, एफ० पी० २३ मार्च १८४० न ५५

२१४-२१७ सदरलैण्ड का हेमिल्टन को पत्र, २ मार्च १८४०, एफ० पी० २३ मार्च १८४० न० ५

२१८-२१६ लडलो का मानसिंह को पत्र, ३० मार्च, १६ अप्रेल, २० अप्रेल, १८४१, खरीता बही न० १३, पृ० ४२७-४३० जोध०)

२२० लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, ३ मई १८४३, आर०ए०ओ० फाइल न० १४ अ, जोधपुर (६) १८४३ पृ० ८५-११०

२२१. सदरलैण्ड की गवर्नर-जनरल के सचिव को रिपोर्ट ७ अगस्त १८४७, एफ० एस० ७ अगस्त १८४७ न० ८४५, पृ० ४१ व ४३

२२२. देखिए यही अध्याय भाग 'ई'

२२३. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, १४ मई १८४३ आर० ए० ओ० फाइल न० १४ अ जोधपुर (६) १८४३ पृ० १३६-१४४

२२४ गवर्नर-जनरल के सचिव का सदरलैण्ड को पत्र, २३ जून १८४३ आर०ए० ओ० फाइल न० १४ अ जोधपुर (६) १२४३ पृ० १६८

२२५. सदरलैण्ड की गवर्नर-जनरल को रिपोर्ट ७ अगस्त १८४७ एफ० पी० ७ अगस्त १८४७ न० ८४५ पृ० ४४



अध्याय : ८

मारवाड़ में मराठा प्रभाव

(क) राजनैतिक

मुगल सम्राट औरगजेब और उसके बाद के बादशाहो की नीतियो के परिणाम-स्वरूप मराठा राष्ट्रीयता का उत्थान हुआ और राजपूत राज्यो ने मुगल आधिपत्य से स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष किया। जहाँ शिवाजी के नेतृत्व मे विघटित मराठी प्रवृत्तियाँ एक राजनैतिक रगमच प्राप्त कर राष्ट्रीयता के रूप मे सगठित हो गयी वहाँ राजपूत शासक अपनी पृथक् इकाइयो मे बने रहे। राजपूत राष्ट्रीयता का विकास ऐतिहासिक दृष्टि से असभव था। मराठो की तरह उनकी पृष्ठभूमि मे कोई सास्कृतिक आन्दोलन नही था, जो उन्हे प्रेरणा दे पाता। मुगल पतन के काल मे मराठा राज्य का साम्राज्यवादी प्रसार उत्तर भारत की ओर हुआ। विरोधी शक्ति के रूप मे राजपूत शासक विभाजित, कमजोर और अत्यन्त अयोग्य थे। बडी आसानी से मराठा शक्ति उन पर छा गयी, परन्तु मराठा साम्राज्यवाद न तो मुगल साम्राज्य की तरह केन्द्रीय शासन का आकाक्षी था और न बाद के अग्रेजी साम्राज्य की तरह सगठित शोषण-कर्ता ही। उसके प्रभावी क्रियाकलाप चौथ और सरदेशमुखी की वसूली तक ही सीमित थे। इससे न तो राजनैतिक सम्बन्ध विकसित हो सके और न प्रशासकीय नियत्रण ही स्थापित किया जा सका।

मारवाड मराठा सम्बन्ध शिवाजी और जसवतसिंह से ही प्रारम्भ हुआ। जसवत-सिंह एक मुगल सूबेदार था और मराठो के प्रति उसका दृष्टिकोण मुगल राजनीति से प्रभावित था। १७२८ ई० मे पेशवा बाजीराव प्रथम ने मारवाड को 'सरजामी' क्षेत्र बनाकर मल्हारराव होल्कर को वहाँ से धन वसूल करने का अधिकार दिया।[१] यह मराठों की एकतरफा घोषित नीति थी। अपने सैनिक बल से कर वसूल करने की इस नीति मे कोई राजनैतिक औचित्य नही था। मारवाड के शासक अभयसिंह ने मराठों के इस हस्तक्षेप को 'सर्वोच्च शक्ति' के रूप मे कभी मान्यता नही दी बल्कि उसकी दृष्टि म मराठे 'गनीम' थे, जो उससे धन वसूल करते थे। राठौड शासक इतना शक्तिशाली नहीं था कि वह उनके सैनिक अभियानो को मारवाड म रोक सके। अत, जब कभी मराठे मारवाड मे आये, (१७३६,[२] १७४१[३] और १७४८[४]) तो महाराजा को कर देना पडा। परन्तु १७५६ की राठौड सिंधिया सधि के बाद मारवाड कानूनी तौर पर मराठो का करद राज्य बन गया।[५] राठौड व मराठों का

इस प्रकार का सम्बन्ध १८१८ तक रहा।[6] मारवाड से लगातार धन वसूल करना ही मराठों की राजनैतिक महत्ता थी, यो वे महाराजा की मराठा-विरोधी नीति को कभी पसद नही करते थे।[7]

प्रारम्भिक मारवाड-मराठा सम्बन्धो के समय, जब मारवाड एक सरजामी क्षेत्र था, राठोड राजधानी मे मराठी स्वार्थों के रक्षा हेतु पेशवा की ओर से एक 'पडित' नियुक्त किया जाता था।[8] १७५६ के बाद मारवाड मे पेशवा ने अपना 'वकील' रखना शुरू किया जो उसके व मराठो के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व कर सके।[9] वकील प्रतिदिन पेशवा को रिपोर्ट भेजता था, पेशवा से निर्देशन प्राप्त करता था और मारवाड मे मराठा नेताओ की गतिविधियो की सूचना भेजता था। कर एकत्र करने का उसका दायित्व होता था। वह सम्पूर्ण धनराशि का हिसाब किताब रखता था और इसके लिए उसे कार्यालय भी रखना पडता था, जिसमे उसके सहयोगी सहायता करते थे। सक्षेप मे, वह कर का सग्रहकर्ता था और राज्य म मराठो का राजदूत भी था।[10]

१७५६ की सधि के शीघ्र बाद मे, पेशवा ने पण्डित सदाशिव को जोधपुर मे अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। उसे रामसिंह के प्रदेशों से भी कर एकत्र करने का भार सौंपा गया।[11] कृष्णाजी जगन्नाथ एक अन्य वकील था जो विजयसिंह के दरबार मे लम्बे अर्से तक रहा।[12] ज्यो ज्यो सिंधिया का प्रभाव मारवाड मे बढता गया, मराठों को दिया जाने वाला कर सिंधिया के द्वारा पेशवा को भेजा जाने लगा। इस पर महादजी ने अपने प्रतिनिधियो को भी जोधपुर मे नियुक्त करने की नीति अपनायी। उसका प्रतिनिधि पडित रामाराव सदाशिव १७६१ से १७६३ के बीच रहा।[13] ये वकील मारवाड के आन्तरिक मामलो मे गहन अभिरुचि लेते थे। जुलाई १७६३ मे विजयसिंह की मृत्यु के पश्चात् दोनो, रामराव सदाशिव व कृष्णाजी जगन्नाथ ने भीमसिंह को समर्थन दिया, जिसके फलस्वरूप वह गद्दी प्राप्त कर सका।[14]

वकील के अलावा मारवाड मे अन्य मराठा पदाधिकारियों मे कमवीसदार महत्वपूर्ण था। वह एक राजस्व अधिकारी होता था और प्रदेश मे मराठो की कर-वसूली की देखरेख करता था। फसल कटने के समय वह गाँवो म उपस्थित रहता था और मराठो को दिया जाने वाला हिसाब उसी समय वसूल करता था। कभी-कभी कस्टम चुगी से भी वह मराठो कर की धनराशि एकत्र करता था। उसकी सहायता के लिए नायब कमवीसदार होते थे। कमवीसदार उनके कार्यों का निरीक्षण करता था तथा वकील को अपने क्षेत्र म महाराजा के पदाधिकारियो की गतिविधियो से अवगत कराता रहता था। समय-समय पर वकील के कार्यों, हिसाब-किताब रखने व कर एकत्र करने मे सहायता देने के लिए पेशवा फडनवीश, चिटणीस, अर्जीनवीस, मजुमदार, अमलदार, कारकुन आदि की नियुक्ति करता था। राज्य मे मराठा के हितो का उत्तरदायित्व वकील का होता था।[15]

कभी-कभी पेशवा अपने विशेष प्रतिनिधि भी भेजा करता था। यथा समय उन्हें

सैनिक अधिकार भी दिये जाते थे। १८११ से १८१७ तक दौलतराव सिंधिया और यशवतराव होल्कर के प्रतिनिधि के रूप म क्रमशः बापूजी सिंधिया और अमीरखा मारवाड की राजनीति मे महत्त्वपूर्ण भाग लेते रहे। १८१५ मे इन्द्रराज सिंघवी की हत्या और दो वर्ष बाद मानसिंह को गद्दी से हटाने मे अमीरखा का प्रमुख हाथ था।[१६] जब भी मराठे राजदूत और प्रतिनिधि मारवाड मे आते तो उनका भव्य स्वागत किया जाता था।[१७] राज्य की ओर से उनके लिए सुरक्षा का प्रबन्ध किया जाता था तथा उनकी सुविधा के लिए सारी वस्तुएँ उपलब्ध करायी जाती थी।[१८] समय समय पर आवश्यकतानुसार इन प्रतिनिधियो की सहायता से मारवाड के शासक आतरिक विरोध एव विद्रोह का दमन करते थे। इसके बदले मे न सिर्फ सैनिक खर्च ही दिया जाता था बल्कि उन्हे कई अन्य पुरस्कारो से सम्मानित और सतुष्ट किया जाता था। ऐसी स्थिति मे मराठे सरदार अपने प्रतिनिधियो की सिफारिश पर अधिक महत्त्व देते थे। जब महाराजा विजयसिंह ने अपने विद्रोही पुत्र जालिमसिंह के विरुद्ध महादजी की सहायता चाही तो सिंधिया ने उस समय तक कोई सहायता नही दी जब तक कि जोधपुर स्थित उसके प्रतिनिधि ने सही स्थिति से अवगत नही कराया। उसकी सिफारिश पर न सिर्फ सैनिक सहायता दी गयी बल्कि महादजी ने विजयसिंह के उत्तराधिकारी के रूप मे शेरसिंह का 'युवराज' भी मान लिया।[१९]

जोधपुर शासक भी अपने प्रतिनिधियो को ग्वालियर मे, सिंधिया के दरबार मे, नियुक्त करते थे। सिंधिया इन राजदूतो वकीलो व प्रतिनिधियो की बडी देख-रेख करता था। १८१३ से १८१८ मे व्यास जगरूप राठोड राजदूत की तरह ग्वालियर में रहता था, जिसकी सुरक्षा, निवास एव सुविधाओ का बहुत खयाल रखा जाता था। उस जोधपुर के राज्य-कोष से ४००) रुपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता था। परन्तु यह राशि उसे लगातार प्राप्त नही होती थी और कभी-कभी तो वर्ष भर बकाया इकट्ठा हो जाता था। ऐसी स्थिति मे सिंधिया उसे खर्चे के लिए धन उपलब्ध कराया करता था।[२०]

राठोड शासको ने मराठा नागरिको व सेना के कप्तानो को अपनी राजकीय सेवा मे लेने का नीति अपनायी,मल्हारराव होल्कर के कहने पर अभयसिंह ने फरवरी १७४७ मे गोपाल त्र्यम्बक राव को ४००) रुपये माह पर अपनी सेवा मे नियुक्त किया।[२१] महाराजा मानसिंह ने दौलतराव सिंधिया की प्रशासनीय सेवा के एक सदस्य बाजेराव को, जो कि लेखा कार्यो का विशेषज्ञ माना जाता था अपनी सेवा मे ले लिया।[२२] यह व्यक्ति उसके लिए बडा सहायक सिद्ध हुआ। १८२७ म उसे जोधपुर की कचहरी का कार्य सौंपा गया।[२३] उसके पास काम खास रुक्क व पेशकशी रिकार्डो की देखरेख का कार्य भी रखा गया, जिसे वह अत्यन्त विश्वास के साथ करता था।[२४] १८०८ मे शिरजीराव घाटके की सेना का हीरासिंह सैनिक टुकडी सहित मारवाड की सैनिक सेवा मे ले लिया गया।[२५] इसी प्रकार १८१७ मे अजमेर के मराठा सूबेदार की सेवा मे नियुक्त कप्तान धनसिंह को मानसिंह ने अपने यहाँ नौकरी दी।[२६]

राठौड मराठा सम्बन्ध के कारण कई मराठे महाराजा के विश्वासपात्र बन गये थे। उन्हे राज्य मे जागीरें दी गयीं। परवतसर के पास गागवा,[27] डेगाना मे हरसौर[28], मेडता मे पाडुवाली और एवेली[29] और मारवाड की पूर्वी सीमा पर मण्डल[30] मराठा जागीरें थी। कुछ गाँव जैसे मकराना, 'इनाम' मे दिये गये थे।[31] जसवन्तराव होल्कर के परिवार के खर्च के लिये, जब वह १८०५-१८०६ तक मारवाड मे था, गोडवाड के गाव मसूडी और गोल्ली दिये गये थे।[32] जयप्पा सिंधिया की छत्री मे, जो कि नागौर के ताऊसर गाँव मे बनायी गयी थी, शिव मंदिर की स्थापना की गयी तथा उसका खर्चा कुडोली ग्राम की आय से दिया जाता था।[33] शासकों ने अपने हस्ताक्षरों और मुद्रा के साथ इन जागीरों की सनदें और ताम्रपत्र दिये।[34] यदि राज्य के पदाधिकारी और पडोसी जागीरदार मराठो की जागीरो म हस्तक्षेप करते तो राज्य की ओर से उन्हे सुरक्षा प्रदान की जाती थी।[35] जब कभी राज्य इन जागीरो को वापिस लेता तो इसके बदले मे अन्य व्यवस्था की जाती थी।[36]

मराठी राजनीतिज्ञों के लिए मारवाड का प्रदेश शरणार्थी आवास बन गया था। शम्भाजी व कवि कलश की हत्या के बाद, कवि कलश के परिवार पर आपत्तियो के बादल मँडराने लगे। १७०६ मे इस परिवार ने मारवाड मे शरण ली। उन्हें बिलाडा मे रखा गया। दुर्गादास ने मेडता के हाकिम को उनके खर्च के लिए प्रतिदिन एक रुपया पन्द्रह आने देने के आदेश दिये।[37] १८०० मे लक्ष्मण अनन्त (लखवादादा) ने दौलतराव से विद्रोह कर अपने परिवार को मारवाड भेज दिया।[38] जसवन्तराव होल्कर का परिवार १८०५-१८०६ तक जोधपुर मे रहा।[39] अप्पाजी भोसले ने अपने जीवन के बारह वर्ष जोधपुर मे ही बिताये, जहाँ उसकी मृत्यु के बाद राजकीय सम्मान के साथ उसका शव-दाह किया गया।[40]

(ख) आर्थिक

मराठो का मारवाड के आर्थिक जीवन पर प्रभाव उसी समय से पडने लग गया था जबसे उन्होने मारवाड में सैनिक अभियान कर शासक को धनराशि देने के लिए बाध्य किया। १७२८ से १७५६ तक समय समय पर जो धनराशि मराठो को दी जाती थी, वह न तो व्यवस्थित थी और न किसी नियम, संधि व समझौतो पर आधारित थी। शासक मराठा सैनिकों को अपने प्रदेश से दूर रखने के लिए धन देता था। फरवरी १७५६ मे महाराजा विजयसिंह और जनकोजी के बीच की सन्धि मे यह स्पष्ट कर दिया कि जोधपुर-शासक लगातार मराठो को वार्षिक कर देंगे।[41] यह कर १,५०,००० रुपया प्रति वर्ष निश्चित किया गया।[42] इसमे नजराना' भी शामिल था।[43] मारवाड म गोडवाड विजय के बाद शासको ने ३० हजार रुपये वार्षिक पृथक् रूप से कर देना स्वीकार किया।[44] यह कर होल्कर और पेशवा मे नही बाटा जाता था। इसे तो सिंधिया अपने कोष म ही जमा कराता था।[45] मारवाड के शासको ने कभी भी लगातार या पूरा कर नही दिया। अतः कर की बहुत सी धनराशि बकाया रहती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रायः दस

प्रतिशत कर तो कभी दिया ही नहीं गया।[४६] सिंधिया सामान्यतः कर में बीस प्रतिशत धनराशि की छूट दे देता था।[४७]

विजयसिंह ने मराठों को वार्षिक कर देने की जो शर्त स्वीकार की उसके पीछे यह विश्वास स्पष्ट था कि जोधपुर-शासक मराठों के आक्रमणों से सुरक्षित रहेंगे।[४८] इसके अनुसार शासक के शत्रुओं के आक्रमणों के समय मराठे उन्हें सहायता देने को बाध्य नहीं थे। ऐसी स्थिति में, जब उन्हें मराठों सैनिक सहायता की आवश्यकता होती, तो वे उन्हें अतिरिक्त धनराशि देते थे। १७४८ में अभयसिंह ने अपने भाई बख्तसिंह के विद्रोह को दबाने के लिए मल्हारराव की सहायता ११ हजार रुपयों में खरीदी थी।[४९] रामसिंह ने अपने प्रतिनिधि पण्डित जगन्नाथ को १७५१ में यह अधिकार दिया था कि वह होल्कर या सिंधिया को दस या बारह हजार की सेना के खर्च के लिए आवश्यक दो माह की अग्रिम राशि देकर उसकी सहायता के लिए वचनबद्ध कर ले।[५०] यहाँ तक कि बख्तसिंह ने भी राजसिंह चौहान के द्वारा होल्कर को दो लाख रुपये दिये, जिससे कि वह रामसिंह की सहायता न करे।[५१] मानसिंह और यशवन्तराव होल्कर में पारिवारिक स्तर पर अभिन्नता थी, फिर भी जयपुर के शासक जगतसिंह के विरुद्ध उसे दो लाख रुपये देकर ही सैनिक सहायता लेनी पड़ी।[५२]

शासकों के लिए देरी से कर देना तो एक सामान्य आचरण और प्रक्रिया बन गयी थी। इसका परिणाम भयंकर होता था। मराठे सेनापति समय-समय पर मारवाड़ में आते और कर के भुगतान के लिए जोर देते थे। शासक शर्तें स्वीकार करते और नई किश्तें निश्चित की जाती। साथ ही आने वाले सेनापति को तत्काल सैनिक खर्च देना पड़ता नहीं तो मराठे सैनिक व्यापारियों और कृषकों को लूट लेते थे। संवत् १८३५-३९। १७७८-१७८२ में महादजी को जो कर दिया गया उसकी निम्नलिखित किश्तें निश्चित की गयीं।[५३]

पाँच वर्ष के बकाया कर की कुल राशि	
१,८०,००० रुपये प्रतिवर्ष के हिसाब से	९,००,००० रुपये
सिंधिया द्वारा दी गयी छूट	२,००,००० रुपये
बकाया राशि	७,००,००० रुपये

मेड़ता के युद्ध (१७९०) के बाद विजयसिंह ने किश्तों में बकाया धन-राशि की अदायगी की।[५४] युद्ध की क्षतिपूर्ति भी किश्तों में दी जाती थी। यदि किश्तें लगातार दी जाती तो सिंधिया छूट भी देता था।[५५] कभी-कभी धन-राशि नकद न दी जाती तो कुछ गाँव मराठों के पास 'इजारा' के रूप में रख दिये जाते थे।[५६] १७ सितम्बर १७९२ को विजयसिंह ने बकाया राशि के १,६४,००० रुपयों के भुगतान के लिए मारवाड़ के उत्तर-पूर्व के मुख्य परगने मेड़ता, डीडवाना और नावा मराठों को इजारा में दे दिये।[५७] कभी शासक अपने साहूकारों को हुक्म देते थे कि वे मराठों का चुकारा कर दें। बाद में राज्य इन साहूकारों का ऋण चुकाया करता था।[५८]

सामान्यतः मराठे अग्रिम राशि मांगते रहते थे जो बाद में दी जाने वाली धनराशि में से काटकर हिसाब नियमानुकूल बना दिया जाता था।[५६] नकद धनराशि के अलावा शासकों को 'मरणा' भी देना पड़ता था। मरणे में मुख्यत हाथी, ऊँट, घोड़े, बैल, गहने, मूल्यवान कपड़े, हीरे-जवाहरात आदि दिये जाते थे।[६०] इनकी कीमत धनराशि में से वसूल कर ली जाती थी। कभी-कभी शासक होल्कर और सिंधिया के आदेशों पर वस्तुएं खरीद कर भिजवाते थे। यह राशि कर से काट ली जाती थी।[६१] सिंधिया के सेनापति जब उससे धन प्राप्त नहीं कर पाते थे तो वे शासक के पास उपस्थित होकर सिंधिया के कर में से भुगतान ले जाते थे। सिंधिया महाराजा भी इस प्रकार के भुगतान के सम्बन्ध में लिखित आदेश देता था।[६२] इस प्रकार सिंधिया के प्रत्येक सेनापति को कर में से उसके अंश को देने का उत्तरदायित्व शासक पर अनायास ही हो गया था।[६३]

मराठों और शासकों के बीच धन सम्बन्धी जो भी समझौता होता था, वह कागजी अधिक था, व्यावहारिक कम। यद्यपि भुगतान, जो किश्तों में किया जाता था, अधिक नहीं होता था, फिर भी कोष के लिए यह एक अतिरिक्त भार होता था। राज्य की वित्तीय स्थिति को देखते हुए यह असहनीय था। मराठों को दूर रखने के लिए इसके अलावा शासकों के पास कोई दूसरा तरीका भी नहीं था। धनराशि के समझौते को सही रूप से कभी मान्यता प्राप्त नहीं हुई। अतः जब-जब मराठे अपनी मांग लेकर आते और शासक उनकी मांग को पूरी नहीं कर पाते तो वे खेतियाँ लूट लेते एवं खाद्य-पदार्थ और चारा या तो ले जाते या नष्ट कर जाते।[६४] वित्तीय स्थिति को ठीक करने के लिए शासक जनता व जागीरदारों पर नये कर लगाते थे। विजयसिंह ने जागीरदारों पर 'रेखबाब' कर लगाया। पेशकश या 'हुक्मनामा' कर दुगना कर दिया। इससे जनसाधारण और जागीरदार असन्तुष्ट रहने लगे।

मराठे सिर्फ वार्षिक कर से ही सन्तुष्ट नहीं थे। जब कभी राज्य के विरुद्ध सैनिक अभियान करते तो वे नये नये प्रकार की कर राशि मांगते थे। १७६० के मेड़ता-युद्ध के बाद महादजी ने 'फौज-खर्च,' "दरबार खर्च,' 'खासा सवारी,' 'बराड' व 'बोला' की माग की।[६५] इनकी पूर्ण रकम ६०,०० ००० रुपये आंकी गयी।[६६] १८१२-१८१४ के बीच बापूजी सिंधिया ने इन करों के अलावा जो नये कर की धनराशि मांगी वह थी 'भेंट होली, 'भेंट दशहरा','गणेश चौथ' जो कि इन समारोहों के अवसर पर ली जाती थी।[६७]

कभी जनता व जागीरदारों से मराठा प्रत्यक्ष रूप से कर एकत्र करते थे, जिसे 'घोड़ी बराड' या 'घासदाणा' कहा जाता था। किसानों से प्रतिबीघा चार आना, अन्य से प्रति परिवार एक रुपया और जागीरदारों से उनकी वार्षिक आय के अनुसार निश्चित कर लिया जाता था।[६८] इसके अलावा शासन-पदाधिकारियों को अपनी आय के अनुसार मराठों को दण्ड, भेंट, नजराने (उत्तराधिकारी भेंट) व टीका देना पड़ता था। यदि उनकी मांगें पूरी नहीं की जाती तो एक बार उन्हें स्मरण-पत्र दिया

जाता था। देरी का अर्थ सैनिक कार्यवाही और आर्थिक व्यवस्था के ध्वंस की धमकी।[६६]

मराठे धनराशि एकत्र करने में न तो नैतिकता और न कानून की परवाह करते थे। कभी तो वे व्यापारियों के माल पर अधिकार कर लेते थे[७०] और कभी व्यापारियों को कैद बनाकर धन वसूल करते थे।[७१] राज्य में कोई भी वस्तु खरीद ली जाती थी, परन्तु उस पर लगा हुआ राज्य कर वे नहीं देते थे।[७२] उनके व्यापारियों को राज्य की ओर से सब प्रकार की सुविधा प्रदान की जाती थी।[७३] यहां तक कि जब मराठी सेना मारवाड में से गुजरती तो राज्य-कोष से उनके लिए खाद्य पदार्थ और नमक की व्यवस्था की जाती थी।[७४] संक्षेप में, मराठा आक्रमणों ने राज्य की आर्थिक अवस्था को ध्वस्त कर अराजकता का वातावरण पैदा कर रखा था।[७५]

(ग) सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध

समकालीन ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर एक शताब्दी तक के राठौड-मराठा सामाजिक सम्बन्ध का मूल्यांकन सम्भव है। महाराजा जसवंतसिंह दक्षिण में १६६३ से १६७० तक रहे। इससे दोनों जातियों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिला और सामाजिक स्तर पर उनके सम्बन्ध घनिष्ठ होने लगे। महाराजा ने शिवाजी को कई बहुमूल्य भेंटें भेजीं, जिनमें तीन घोड़े, तीन खासा, एक सरदार सरोपा, और १० ऊँट थे। शिवाजी ने भी इस भावना का आदर करते हुए अगस्त १६६७ में तीन राठौड प्रतिनिधियों को जो उपरोक्त भेंट मराठे राजा के पास ले गये थे, एक-एक हजार रुपया और एक एक घोड़ा दिया। अक्टूबर-नवम्बर १६६७ में जब सम्भाजी शाहजादा मुअज्जम से मिलने के लिए गया तो उस जसवंतसिंह के साथ ठहराया गया। राठौड शासक ने सम्भाजी की आवभगत शाही तरीके से की। जब सम्भाजी विदा होने लगा तो महाराजा की ओर से दो घोड़े, एक जोड़ा पहुंचा और कपड़े का एक थान भेंट किया गया। शिवाजी के लिए हीरों से जड़ित कटार व कपड़े के दो थान दिये गये।[७६]

दक्षिण में रहते हुए महाराजा ने एक नये नगर की नींव डाली जिसका नाम जसवंतनगर रखा गया।[७७] १६८१-१६८७ में दुर्गादास मराठा राज्य में रहा। उनके और सम्भाजी के प्रिय मित्र कवि कलश के बीच पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हो गये। वह कलश की पत्नी का 'राखीबंध भाई' बन गया।[७८] अप्रैल १७११ में दाभोई युद्ध के पूर्व पेशवा व जोराव महाराजा अभयसिंह के साथ एक माह तक रहा। उसे अहमदाबाद के शाही बाग में ठहराया गया और राठौड़ी आवभगत से उसकी सेवाशुश्रूषा की गयी। पेशवा ने १७३६ अप्रैल में अभयसिंह, रामसिंह व बख्तसिंह को खिलअत व सरोपा से विभूषित किया।[७९] मल्हारराव महाराजा अभयसिंह का घनिष्ट मित्र बन गया। १७४८ में जब होल्कर ने पुष्कर की यात्रा की तो महाराजा ने उसका शाही स्वागत किया और अपने डेरे के पास उसका डेरा लगवाया। दोनों ने एक ही चौकी पर खाना खाया, पगड़िया बदलीं और 'धर्म भाई' बन गये।[८०] तब से होल्कर और राठौड परिवारों के सम्बन्ध अति मधुर बने रहे।

ज्यो ज्यो समय बीतता गया, दोनो परिवार और निकट आते गये । जब कभी जोधपुर सिंहासन पर नया शासक बैठता तो होल्कर परिवार बहुमूल्य भेंटो के साथ 'टीका' भेजता था । १७४६ मे अभयसिंह की मृत्यु के बाद रामसिंह गद्दी पर बैठा तो मल्हारराव ने कई कपडे और एक हाथी टीके मे भेजा ।[८१] विजयसिंह के साथ भी मल्हारराव के सम्बन्ध अच्छे बने रहे ।[८२] १० जनवरी, १८०४ को यशवतराव होल्कर ने बलवतराव के हाथ मानसिंह के लिए टीका भेजा ।[८३] इस प्रकार नये शासक को टीका भेजना होल्कर-राठौड परिवारो के लिए एक सामान्य आचरण हो गया था । जून-अक्टूबर १८०६ मे नाद मे मानसिंह-यशवतराव होल्कर मिलन दोनो परिवारो के आपसी सम्बन्धो का चरम उत्कर्ष था ।[८४]

मारवाड के शासकों की ओर से नये होल्कर शासक को भी 'टीके' भेजे जाते थे । मल्हारराव के उत्तराधिकारी तुकोजी होल्कर का जब राज-तिलक १७६६ मे हुआ तो विजयसिंह ने आमोपा नवनराय और पडित जीवनराम के साथ उनके लिए टीका भेजा ।[८५] जब कभी होल्कर परिवार की ओर से माग आती तो अत्यन्त प्रसन्नता से राठौड शासक उसे पूरी करते थे । १७६४ मे मल्हारराव ने अच्छी नस्ल के बैल मागे तो शीघ्र ही खुले बाजार मे प्राप्त न होने पर तोपखाने से एक बैल जोडी इन्दौर भेज दी गयी ।[८६] अहल्याबाई होल्कर अपने मन्दिर निर्माण के लिए मकराणा के सफेद सगमरमर की माग करती रहती थी । महाराजा ने ३० अप्रेल १७८४ की सनद द्वारा मकराणा के पत्थर भेजने की लगातार व्यवस्था करा दी ।[८७] जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है,[८८] मानसिंह जसवन्तराव होल्कर की पत्नियो का राखीबध भाई बन गया था । जब १८०६ मे मारवाड से वे विदा होने लगी तो मानसिंह ने उन्हें दो जडाऊ साडियाँ, दो कीमखाब और चार दुशाले दिये । इनके साथ वालो को भी भेंट दी गयी ।[८९] १८११ मे जवतराव होल्कर के उत्तराधिकारी की समस्या हल करने के लिए, उसकी एक पत्नी तुलसीबाई ने प्रार्थना की तो मानसिंह ने अपनी सेवाएँ तत्काल दे दी ।[९०] प्रतिवर्ष तुलसीबाई और लाखाबाई मानसिंह को राखिया भेजतीं और बदले मे उन्हे भेंट प्राप्त होती थी ।[९१]

सिंधिया की ओर से जो मराठा सरदार मारवाड मे राजनैतिक, सामाजिक व पारिवारिक कार्यों के लिए आते थे, उनका सादर सम्मान होता था और बहुमूल्य भेंटो से उन्हें प्रसन्न रखा जाता था । न सिर्फ ऐसे अवसरों पर उन पर काफी खर्च किया जाता बल्कि जब वे विदा होते तो सिंधिया और उनके पदाधिकारियो के लिए बहुमूल्य भेंटे भेजी जाती थी । १७६६ मे प० अन्ताजी जब जोधपुर से विदा होने लगे तो उन्हें एक सरोपा और २००) रुपये दिये गये । उनके साथ सिंधिया के मत्री बेहारजी तक्पीर के लिए ४५००) रु०, एक घोडा, एक पाग, कीमखाब के दो थान, एक पोतिया और छापल कपडे के आठ थान भेजे गये ।[९२] जब महादजी का प्रतिनिधि गढवा फकीरजी जनवरी १७९१ मे जोधपुर आया तो उसकी अगवानी करने के लिए

राज्य के पदाधिकारी राजधानी से ३ मील आगे भेजे गये।[९३] जब तक वह जोधपुर मे रहा, उस पर प्रति दिन दो सौ रुपया खर्च किया जाता था।[९४] जब वह १३ मई, १७६३ को जोधपुर से विदा हुआ तो, उसे एक हाथी, एक घोडा, ५००० रु० ग्यारह प्रकार के कपडे, दक्षिणी कुसूमल (कोरपान) का एक दुपट्टा, दो जडाऊ तलवारें, एक जडाऊ पहुँचा, एक जडाऊ सिरपेंच, मोतियो का एक हार और उसकी पत्नी के लिए एक जोडी सोने की चूडिया तथा तीन साडिया, (दो लाल रंग की और एक जीणदार) दी गई।[९५] जुलाई १७६१ मे जमातदार हजारीसिंह जोधपुर आया। महाराजा उससे अपने खास महल मे मिले और अपने पास बिठाया। उस पर प्रति दिन ३००) रु० खर्च किये।[९६] जब शिरजोराव घाटगा का पुत्र हिन्दू राव १८१६ में जोधपुर आया तो उस पर ५०) रु० प्रतिदिन खर्च के आदेश दिये गये।[९७] जोधपुर दरबार मे उपस्थित होने वाले मराठा सरदार शासको के प्रति राज्य-नियमानुसार आचरण करते थे। जब भी वे दरबार में उपस्थित होते तो महाराजा को 'नजर' (भेंट) प्रस्तुत करते एव उन पर निछरावल की जाती थी, जो कि उनके प्रति भक्ति की सूचक थी। वे बिना सीख (प्रस्थान की आज्ञा) लिये जोधपुर से प्रस्थान नही करते थे।[९८] दरबार में रहते हुए वे उन सभी समारोहो मे भाग लेते जो राज्य द्वारा आयोजित किये जाते थे। १८ अप्रेल १७६१ को गढवा फकीर जी ने राज्य द्वारा आयोजित गणगौर समारोह मे भाग लिया और रात्रि भर उस उत्सव से सम्बन्धित आमोद-प्रमोद कार्यक्रम मे उपस्थित रहा।[९९] जो कोई भी मराठा प्रतिनिधि दिवाली के अवसर पर जोधपुर में उपस्थित रहता तो उन्हे राजकीय पदाधिकारियों के समान भेटें प्राप्त होती थी।[१००] दोनों परिवारो के शाही विवाह के अवसरो पर घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध देखने को मिलता है। तूगा के युद्ध (१७८७) के एक वर्ष पूर्व विजयसिंह ने महादजी सिंधिया की पुत्री की शादी के अवसर पर चार मोहरें और १०) रुपये भेजे तथा उसकी पत्नी के लिए लहरिया कोरमल्ला की दो साडिया भेजीं[१०१] दौलतराव की पुत्री की शादी के अवसर पर मानसिंह ने व्यास जसकरण के साथ एक जुलाई १८१७ को चार हजार रुपये और कपडों के चार थान भेजे।[१०२] जुलाई १८२२ में उसकी दूसरी लडकी की शादी के समय महाराजा ने हजार रुपये भेजे।[१०३] प० बाजीराव की पुत्री की शादी प० रामचन्द्र से हुई। बरात अजमेर से जोधपुर आयी। मानसिंह ने किले में सम्पूर्ण बरात को ३ मई १८३० को भोज दिया। इसके अलावा प० रामचन्द्र को सोने के कडे मोतियों की माला व दुशाला भेंट किया तथा उसके चार मित्रों को दुशाले दिये गये।[१०४]

जब कभी मराठा सरदार शत्रुओं पर विजय पाते तो जोधपुर के शासको की ओर से उन्हें बधाईया भेजी जाती थीं। महादजी द्वारा अलीगढ पर अधिकार होने पर विजयसिंह ने बधाइया भेजीं।[१०५] महादजी ने १७८२ के मारवाड मे पडे अकाल की सहायता के लिए महाराजा को १५,००० रुपये भेजे।[१०६] मराठा सेनापतियों व पदाधिकारियो के समय-समय पर बीमार पडने पर, जोधपुर के प्रसिद्ध वैद्यो को

उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए भेजा जाता था। सिंधिया के दीवान बाजी नरसिंह की बीमारी के समय सहायता की गयी थी।[१०७]

मारवाड के शासकों की धार्मिक भावना की मराठा नेता बहुत इज्जत करते थे। उनके प्रभाव-क्षेत्र में शासकों के गुरुओं के पलायन करते समय सुरक्षा का उत्तरदायित्व मराठों का होता था। १७६६ में विजयसिंह के गुरु गोसाई मुरलीधर ने गोकुल की यात्रा की। महादजी ने उनके ठहरने की व्यवस्था की तथा मार्ग में उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया।[१०८] भीमसिंह की प्रार्थना पर अम्बाजी इंगले ने उनके गुरु को उत्तरी भारत के धार्मिक स्थलों की तीर्थ-यात्रा का सुप्रबन्ध किया।[१०९] सिरजीराव घाटगा ने जुलाई १८०८ में मानसिंह को लिखा कि श्यामजी महाराज के मन्दिर, जो जयपुर के निवाई क्षेत्र में थे, हर स्थिति में सुरक्षित रहेंगे तथा आक्रमण करने वालों या लूटने वालों से उनकी सुरक्षा की जाएगी।[११०]

राठौड़ मराठा सम्पर्क से जोधपुर की कला और स्थापत्य कला पर कोई मराठी प्रभाव नहीं हुआ। नागौर के पास ताऊसर में जयप्पा सिंधिया के अवशेषों पर छतरी का निर्माण कराया गया। इसमें मराठी शैली का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता। यह तो राजपूत शैली से प्रभावित मुगल स्थापत्य कला का प्रतीक है। यह छतरी ७ फीट ऊँची चौकोर चबूतरे पर बनी हुई है। इसका गुम्बद मुगल शैली का है और नक्काशी में स्थानीय प्रभाव है।[१११] छतरी के मध्य में गुम्बद के आंतरिक शून्य भाग के नीचे शिवलिंग है।[११२] यद्यपि मराठे जोधपुर में कला के नाम पर कुछ भी निर्मित नहीं कर सके, तथापि महाराष्ट्र में उनकी कला के विकास में मारवाड की महत्त्वपूर्ण देन रही। इन्दौर उज्जैन और ग्वालियर में मराठों ने संगमरमर पत्थर के कई मन्दिर बनवाये। संगमरमर मारवाड की मकराणा खान से भेजा जाता था।[११३] जोधपुर जिले के मोती महल की असंख्य पतली छिद्रमयी लकड़ी की पत्तियों और बरामदा-प्रणाली की कला का प्रभाव इन्दौर के होल्कर महलों के मुख्य द्वार पूना में नाना फड़नवीस के निवासस्थान, नागपुर के पुराने मोसलावद के पश्चिमी नगारखाना पर पड़ा प्रतीत होता है।[११४]

(ड) मूल्यांकन

करीब एक शताब्दी से अधिक समय तक (अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में) मारवाड के राठौड़ शासकों और मराठों का आपसी सम्पर्क रहा। प्रारम्भ में मराठों और बाद में अंग्रेजों ने मारवाड के राजनैतिक जीवन पर छाने का प्रयास किया। उत्तरी भारत में इसका जितना सबल एवं लगातार विरोध मारवाड के राठौड़ों ने किया, उतना किसी ने भी नहीं किया। यह वास्तव में इस प्रदेश की जनता व शासकों की वीरता, साहस और शानदार कार्यों की परम्परा थी कि वे मराठों का और बाद में अंग्रेजों का सामना कर सके। इतनी लम्बी अवधि तक उनके संघर्ष का यदि सूक्ष्म विवेचन किया जाए तो उनकी प्रशंसा ही करनी

होगी क्योंकि एक छोटा-सा राज्य, जिसका अधिक भाग रेतीला है और जिसके साधन कम थे, भयकर अवरोधो के होते हुए भी सघर्ष करता रहा। अत उन कारणो एव स्थितियों का मूल्याकन आवश्यक है जिनसे उन्हे शक्ति और सघर्ष के लिए प्रेरणा मिलती रही।

एक शताब्दी तक मराठो और अग्रेजो से सघर्ष करते रहने का सबसे मुख्य प्रेरक तत्व राठौडो की अवरोध करने की परम्परा है। उन्हे अपने वश की शुद्धता एवं कुलनता पर गर्व था। उनका वह दृढ विश्वास था कि वे शत्रुओ से लोहा लेने के लिए पैदा हुए हैं। राव सिंह से जोधाजी तक शत्रुओ से सघर्ष की प्रेरणा से उन्हे आत्मविश्वास और आत्म-बल मिलता रहा अतः भयकर सकटकाल मे भी वे नही घबराये। जब उन्होने सार्वभौम मुगल सत्ता को स्वीकार कर लिया तब भी वे इस भावना का परित्याग नहीं कर सके कि वे पापियो से लडने के लिए ससार मे पैदा हुए हैं। यही कारण है कि मुगल बादशाहो ने मारवाड मे उनके वशानुगत अधिकार को चुनौती नही दी और जब उन्होंने इस नीति का परित्याग किया (जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद) तो उन्हे जन-विद्रोह (१६७९ से १७०७ तक) का सामना करना पडा। इसका परिणाम यह हुआ कि राठौडो ने एक ओर अपनी परम्परागत प्रतिष्ठा को बनाये रखा, दूसरी ओर मुगल साम्राज्य के पतन के द्वार खोल दिये।

उनके सघर्ष की सफलता उन किलों के कारण भी थी जो मारवाड के चारों ओर बने हुए थे[११५] जैसे मेडता नागोर, जोधपुर, डीडवाना और जालोर। जब कभी सघर्ष के दौरान उन्हें सुरक्षा के लिए आवश्यक हो वे इन किलो मे चले जाते और वहाँ से आक्रमणकारी के विरुद्ध अपना सघर्ष चालू रखते थे।[११६] इससे उनमे स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम हो गया और यही भावना उनमे शक्ति और विश्वास पैदा करने लगी तथा उनकी सुरक्षात्मक शक्ति को दृढता प्रदान करती रही।

राठौड की सामतवादी व्यवस्था भी उनकी सफलता का एक कारण थी। सारे सामन्त राज्य को अपना सयुक्त उत्तरदायित्व समझते थे अतः राज्य की सुरक्षा हेतु वे अपनी जान हमेशा हथेली पर रख कर चलते थे। इस सामन्ती प्रथा ने देशभक्त, वीर और योग्य ठाकुर पैदा किये जो इस वश और देश के लिए गौरवमय थे। जहाँ भारत के अन्य स्थानो पर सामन्त व्यवस्था केन्द्रीय राज्य शक्ति के लिए निरर्थक और बाधक सिद्ध हुई, वहाँ मारवाड मे यह शक्तिशाली सस्था के रूप मे विकसित हुई। राठौड सामन्तो की युद्ध के समय अल्पकालीन सूचना पर सैनिको को एकत्रित करने की विधि में अद्वितीय सगठन की सफलता निहित थी।[११७]

उपर्युक्त परिस्थितियाँ हर समय और हर युग मे समान नहीं थी। वे सामन्त जिन्होने राजपूती शौर्य के उदाहरण प्रस्तुत किये और जो युद्ध काल मे केसरिया बाना पहनकर यश अर्जित करते थे, १९ वी शताब्दी के प्रारम्भ से पतन की ओर बढने लगे। इस युग के सामन्त राज्य के सामान्य हित की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत

हियों पर अधिक ध्यान देने लगे। रामसिंह के समय राठौड सामन्तों का अपने शासक को त्यागना एवं रामसिंह का जयप्पा से मिलना आदि राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए।[115] जोधपुर के मुख्य जागीरदार पोकरण के सवाईसिंह और उसके चांपावत और मेडतिया राठौड मानसिंह का साथ छोड कर मारवाड मे मराठो और पिंडारियो को ले आये।[116] यहाँ तक कि युवराज भी इनसे जा मिला।[120] अत इन सामंतो के कार्यों को समाप्त करने तथा अपनी स्वतन्त्र इकाई को बनाये रखने के लिए राठौड शासकों ने पडोसी प्रदेशो से वेतन भोगी सैनिको को भर्ती करना शुरू किया।[121] इसमे राठौड जागीरदारों का सैनिक और राजनैतिक प्रभाव कम होने लगा। १८२१ में उन्होने कर्नल टॉड को जो प्रतिवेदन दिया,[122] उससे उनका राज्य के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट प्रकट होता है।

विजयसिंह के अंतिम जीवन-काल से मारवाड के राठौडो की युद्ध करने की क्षमता का पतन होने लग गया था। जब डी०बोईन के तोपखाने ने मेडता-युद्ध (१० सितम्बर १७९०) मे उषा-काल मे गोले दागने शुरू किये तो उसके प्रभाव का मार्मिक वर्णन कर्नलटॉड ने अपने ग्रन्थ मे किया है उससे राठौडो की युद्ध-कला की अधोगति स्पष्ट दिखाई देती है। टॉड लिखता है कि,[123] सब ओर गडगडाहट थी, विरोध बडा कमजोर था, सेनापति भाग गये। सुदूर आउवा और आसोप के ठाकुरों के कैम्प मे खडबडाहट की चेतावनी पहुँची। आसोप अफीम खाकर गहरी निद्रा मे तल्लीन था। बडी मुश्किल से उसके साथी ने उसे जगाकर शोचनीय स्थिति से अवगत कराया, उसके कैम्प के सभी लोग भाग गये थे, सिर्फ वही अकेला वहाँ था। इस प्रकार रण-क्षेत्र मे राठौडो का मनोबल आक्रान्ता मराठा शक्ति का विरोध करने की क्षमता नही रखता था। मराठे निशंक मारवाड को लूटते रहे, और उनके देश को नष्ट करते रहे और उनके शासको से लगातार कर वसूल करते रहे। मारवाडी नागरिको, सामन्तों और शासको की नैतिकता पतनावस्था की ओर थी। परिणामस्वरूप मराठा शक्ति के पतन के बाद सार्वभौम शक्ति के रूप में जब अंग्रेज भारत मे छा गये, तो उन्होने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और बिना विरोध के राठौड राज्य को अपना 'अधीनस्थ राज्य' बना लिया।

● ● ●

सन्दर्भ

१. पे०द० का (नयी सीरीज) भाग (१) ६
२. पे०द० का (१४), १४
३. उपर्युक्त (२७) २
४. दयालदास री ख्यात (२) ७१-७२; मारवाड़ री ख्यात (२) पृ० १६०
५. पे०द० का (२१) ८२; ऐतिहासिक पत्र १४२; दयालदास री ख्यात (२) ८२
६. एटिचिसन : ट्रीटीज, एंगेजमेण्ट्स व सनदें (३) पृ० १२८-१२६
७. महादजी का विजयसिंह को पत्र, आश्विन सुदी ७, वि०सं० १८४३। २६ सितम्बर १७८६, (पो०फो० नं० ६, पत्र नं० ६५ जोध०); हथवही नं० २, पृ० १३४
८. बाजीराव का जयसिंह को पत्र, आषाढ बदी ७ वि०सं० १७८८। १५ जून १७३१ (कपड़—जय०)
९. जोधपुर ग्रेथील २; हथवही नं० (२) पृ० १३४; राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ४०८, दोहा ६६५
१०. एस०एस० आई०एस० (१), (२), १८, १६, २०, १६०
११. राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ४०८, दोहा ६६५
१२. जोध० ग्रेथील १-१२६
१३-१४. भीमसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी ६ वि०सं० १८४६। १७ जुलाई १७६३ (म०द०नं० ४, पृ० ५०—जोध०)
१५. जोधपुर ग्रेथील १-२६; एस०एस०आई०एम० (१), ६, १७, ४८, १५१ (२) ४१, १२२; राठौड़ दानेश्वर वंशावली, पृ० ४०८, दोहा ६६५
१६. देखिए अध्याय पाँच खण्ड (४)
१७. हकीकत बही नं० ५ पृ० १६०
१८. उपर्युक्त नं० ८, पृ० ४८०, नं० ६, पृ० २-४, ३७
१९. विजयसिंह का महादजी को पत्र, पौष सुदी १४, वि०सं० १८४८। ८ जनवरी १७६२ (म०द०नं० ४, पृ ४८ जोध०)
२०. पत्र, चैत बदी ५, वि०सं० १८७५। १६ मार्च १८१८
२१. एस०एस०आई०एम० (२), ४१
२२. बाजीराव को खास रुक्का, भाद्रपद सुदी २, वि०सं० १८६०। २ अगस्त १७८३ (म०द०नं० ५, पृ० ७३ जोध०)

२३ पत्र कार्तिक सुदी ५, वि०स० १८८४। २५ अक्टूबर १८२७ (जमा खर्च फाइल न० ४४, ढोलिया–जोध०)

२४ हयवही न० ४, पृ० १८२ जोध०

२५. पी०आर०सी० (११) २६७; मानसिंह का दौलतराव सिंधिया को पत्र, भाद्र पद वदी ३ वि०स० १८७५। २४ अगस्त १८०८ (अ०ब०न० ५, पृ० १०)

२६ पी०आर०सी० (१४), ३२१, हकीकत वही न० (१०) पृ० ११८

२७. विजयसिंह का महादजी को पत्र, भाद्रपद बदी १४ वि०स० १८३५। ३१ अगस्त १७७८ (अ०ब०न० ४, पृ० ३७ जोध०)

२८ दौलतराव मानाराव बाबले का विजयसिंह को पत्र, श्रावण बदी १३, वि०स० १८४८। २७ जुलाई १७९१ (पो०फो० न० ६, पत्र ६० जोध०)

२९. विजयसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी १, वि०स० १८४७। २ जुलाई १७९१ (अ०ब०न० ४, पृ० ४६ जोध०), स्पीयर्स का सदरलैण्ड को पत्र, १४ जनवरी १८४२,आर०ए०ओ० फाइल न० १७,जोध० १८४२ पृ० १

३० विजयसिंह का महादजी को पत्र, बैसाख बदी १४, वि०स० १८४८। २० अप्रेल १७९२ (अ०ब०न० ४, पृ० ४६ जोध०)

३१ उपर्युक्त, भाद्रपद सुदी १२, वि०स० १८४८। १९ सितम्बर १७९१ (अ०ब० न० ४, पृ० ४७)

३२ हकीकत बही न० ६, पृ० ३१, जोध०

३३. विजयसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी १, वि०स० १८४७। २ जुलाई १७९१ (अ०ब०न० ४, पृ० ४५ जोध०)

३४. महादजी का विजयसिंह को पत्र, भाद्रपद सुदी ५ वि०स० १८४०। १ सितम्बर १७८३, भाद्रपद बदी ४, वि०स० १८४८। १७ अगस्त १७९१ (पो०फो० न० ६, पत्र नं० ४५ व ६१ क्रमशः जोध०)

३५ उपर्युक्त को पत्र, भाद्रपद सुदी ५, वि०स० १८४०। १ सितम्बर १७८३ (पो०फो० न० ६, पत्र न० ४५); विजयसिंह का महादजी को पत्र, भाद्रपद बदी १४, वि०स० १८३५। ३१ अगस्त १७७८; ज्येष्ठ सुदी ४, वि०स० १८४९। १३ जून १७९३, (अ०ब०न० ४, पृ० ३७ व ५० जोध०)

३६. भीमसिंह का दौलतराव सिंधिया को पत्र, कार्तिक सुदी,१३,वि०स० १८५२। २४ नवम्बर १७९५ (अ०ब०न० ४, पृ० ५३ जोध०)

३७. दुर्गादास का दीवान भगवानदास (माईजी का मन्दिर बिलाड़ा) को पत्र, आषाढ सुदी १३, वि०स० १७६२। १२ जुलाई १७०६, (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, ग्रन्थ (१))

३८. पी०आर०सी० (६), १४

३९. हकीकत बही न० (६) पृ० २–४ जोध०

४०. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, १५ जुलाई १८४० (सदरलैण्ड का टोरेन्स को

पत्र, १८ जुलाई १८५० मे सलग्न एफ०पी० ३ अगस्त १८४० नं० १२३)

४१ पे०द० का भाग (२१) ८२, एतिहासिक पत्र १४२

४२ महादजी का विजयसिंह को पत्र, ज्येष्ठ बदी ५, वि०स० १८२६ । ८ जून १७६६ (पो०फो० न० ६, पत्र न० ८ जोध०)

४३ उपर्युक्त, पौष सुदी १, वि०स० १८४७ । ५ जनवरी १७६१ (पो०फो० ६, पत्र न० ६७ जोध०)

४४ ४५ उपर्युक्त चैत्र बदी ५, वि०स० १८२६ । २३ मार्च १७७२, (पो०फो० न० ६, पत्र २०, २१ जोध०)

४६ ४७ मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, १५ जनवरी १८१८, एफ०एम० ६ फरवरी, १८१८, न० १०२

४८ महादजी का विजयसिंह को पत्र आश्विन सुदी ७, वि०स० १८४३ । २६ सितम्बर १७८६ (पो०फो० ६ पृ० न० ५५)

४९ मारवाड री ख्यात (२), पृ० १६०

५० हिगर्ण दफ्तर (१) ५६

५१ राठौड़ वंशेश्वर वंशावली पृ० ३६६, दोहा ४१३

५२ ए० सेटोन का एन०बी० एडमोन्स्टन को पत्र, २६ जनवरी १८०७, एफ०पी० १२ फरवरी १८०७ न० ६६

५३ हुक्की भाग (२), पृ० १२४-१२५, विजैशाही और वृन्दावन मुद्राओं का परिवतन अ क १ १ २६ (सदाशिव का मेहता अखेचन्द को पत्र, ज्येष्ठ सुदी ६, वि०स० १८६२ । २७ मई १८०६ (अ०व०न० ५, पृ० ६७)

५४ जमा खर्च की फाइल न० ४४, (ठोलिया-जोध०)

५५ महादजी का विजयसिंह को पत्र, पौष सुदी १, वि०स० १८४७ । ५ जनवरी १७६१ (पो०फो० ६, पत्र ५७)

५६ सिंधवी इन्द्रराज का नाजर मोतीराम को पत्र, फाल्गुन बदी ७, वि०स० १८६४ । १८ फरवरी १८०८ (अ०व०न० ५ पृ० २४५)

५७ ५८ जमाखर्च फाइल न० ४४ (ठोलिया-जोध०)

५९ १७६६ म महादजी ने जोधपुर से कर का आधा भाग अग्रिम ले लिया था । पेशवा ने यह स्वीकार किया कि जो भाग महादजी को दिया गया था वह उसे नहीं दिया जाएगा । (विजयसिंह का महादजी को पत्र, ज्येष्ठ बदी १२, वि०स० १८२२ । ४ जून १७६६ अ०व० न० ४, पृ० २४ जोध०, पे०द० का भाग (२६), पृ० १२८, गढवा फकीरजी ने २५००० रुपय (५५५ मोहरें, जो कि दस हजार के मूल्य की थीं तथा १५००० की हुंडियाँ, जो कि १७६१ मे जयपुर म भुगतायी गयी) अग्रिम लिये, जिसका हिसाब १७६२ के कर मे नियमानुकूल कर लिया गया (जमा खर्च फाइल-ठोलिया-जोध०)

६० ५ जनवरी १७९२ को दस हजार के चार हाथी, ४७७ ऊँट जिनका प्रत्येक का मूल्य २०० रुपये था और १२५ रुपये जोड़े के ४४० जोड़े बैल महादजी को भेजे गये थे (जमा-खर्च फाइल न० ४४ ठोलिया जोध०)

६१. धनसिंह ने १७९२ में राज्य से ४००० रुपये मूल्यवान गहने खरीदने के लिए जिसे बाद में महादजी के कर में से काट लिया गया (जमा-खर्च फाइल न० ४४ ठोलिया–जोध०)

६२ १७९२ में पण्डित रामाराव सदाशिव की जमानत पर धनसिंह को जोधपुर राज्य-कोष से २०,००० रुपये दिलाये गये जिससे कि वह अपनी सेना को वेतन दे सके। (जमा-खर्च फाइल न० ४४, ठोलिया–जोध०)

६३-६४ महादजी का विजयसिंह को पत्र, ज्येष्ठ सुदी ५, वि०स० १८१६। ८ जून १७९६ (पो०फो० नं० ६, पत्र ८, जोध०)

६५-६६. महादजी का विजयसिंह को पत्र, पौष सुदी १ वि०स० १८४७। ५ जनवरी १७९१ (पो०फो० नं० ६, पत्र न० २७ जोध०), फौज खर्च–जो कि सेना-निर्वाह के लिए लिया जाता था।
दरबार खर्च—जो कि सिंधिया दरबार के निर्वाह के लिए था।
बराड़—भिन्न-भिन्न पेशों पर कर
बोला—यह बोलबा था, मुरदा-कर

६७ एफ विल्डर का डेविड ऑक्टरलोनी को पत्र, २७ सितम्बर १८१८, अजमेर रिकार्ड (राज० अभिलेखागार)

६८. वि०स० १८१७ बस्ता नं० ५८ भण्डार (१) कोटा रिकार्ड (राज० अभिलेखागार) घोड़ी बराड़ या घासदाणा—खेतों से मराठा घोड़ों को दूर रखने के बदले ये चार आना प्रति बीघा ली जाती थी।

६९. महादजी का विजयसिंह को पत्र, चैत्र बदी ५, वि०स० १८२९। १३ मार्च १७७२ (पो०फा०न० ६, पत्र न० १८)

७० विजयसिंह का महादजी को पत्र, पौष सुदी ७, वि० स० १८३२। २८ दिसम्बर १७७५ (प्र० ब० नं० ४, पृ० ३५ जोध०)

७१ मानसिंह का बापूजी सिंधिया को पत्र, वैसाख सुदी ३ वि०स० १८६४। २८ अप्रैल १८०८ (प्र०ब० न० ५, पृ० ४२-४३ जोध०)

७२. महादजी का विजयसिंह को पत्र, भाद्रपद बदी ४, वि०सं० १८४७। १७ अगस्त १७९१, भाद्रपद सुदी ६, वि०स० १८४९। २६ अगस्त १७९२ (क्रमश पो०फो० न० ६, पत्र ६१, प्र०ब० न० ४, पृ० १३३ जोध०)

७३. तुकोजी होल्कर का विजयसिंह को पत्र, आषाढ़ बदी ६, वि०स० १८४१। ९ जून १७८४ (पो०फो० २ ब (१) पत्र न० ४ जोध०)

७४. विजयसिंह का महादजी को पत्र, पौष बदी १, वि०स० १८४८। ११ दिसम्बर १७९१ (प्र०ब०न० ४, पृ० ४८); मानसिंह का जसवन्तराव का

पत्र, वैशाख बदी ४, वि०स० १८६६, १६ अप्रेल १८१३ (प्र०ब०न० ५, पृ०६१)

७५ एफ०पी० २६ सितम्बर १८३६ न० ३६

७६. मारवाड री ख्यात (१), पृ० २४१-२४२

७७ हुयवही न० ४, पृ० १७८-१७६

७८. दुर्गादास का दीवान भगवानदास (ग्राईजी मन्दिर बिलाडा) को पत्र, ग्रापाढ सुदी १३, वि०स० १७६३। १२ जुलाई १७०६ (काशी प्रचारिणी पत्रिका भाग (१), मु शी देवीप्रसाद का लेख 'कवि कलश')

७६ पे०द० का (३०) ३७४

८०. मारवाड री ख्यात (२), पृ० १५६; वश भास्कर (४), पृ० ३५३४-३५४२

८१. मारवाड री ख्यात (२) पृ० १५६

८२. विजयसिंह का जसवन्तराव बावले को पत्र, माघ बदी १२, वि०स० १८२५। ३ फरवरी १७६६ (प्र०ब०न ४, पृ० ८४ जोध०)

८३. हकीकत वही न ८, पृ० ४५०

८४ उपर्युक्त न०, ६, पृ० ७३-७६

८५. तुकोजी का विजयसिंह को पत्र, वैशाख बदी १०, वि०स० १८२६। १ मई १७६६ (पो०फो० न० २, व पत्र ३ जोध०)

८६ विजयसिंह का पडित गगाधर को पत्र, ज्येष्ठ सुदी १०, वि०स० १८२०। ६ जून १७६४ (प्र०ब०न० ४, पृ० १७ जोध०)

८७ सवाईराम का तिलकोजी पडसाजी को पत्र, वैसाख सुदी १०, वि०सं० १८४१। ३० अप्रेल १७८४ (प्र०ब०न० ४, पृ० २७१ जोध०)

८८ देखिए अध्याय पाच, खण्ड 'ब'

८९ हकीक्त वही न ६, पृ० २, ५, २२ व ३७

९० मानसिह का तुलसीबाई को पत्र, मार्गशीर्ष सुदी १५, वि०स० १८६६। ३० नवम्बर, १८११ (प्र०ब०न० ५, पृ० १०४ जोध०)

९१ हकीक्त वही न ६, पृ० ३७

९२ विजयसिंह का बेहारजी तकपीर को पत्र, माघ बदी ४ वि०स० १८२५। २६ जनवरी १७६६ (प्र०ब०न० ४, पृ० ६८ जोध०)

सगेसा—सिर से पैर तक के वस्त्र
पाघ — ५ गज लम्बा ग्रोर एक गज चौडा साफा
पोतिया— ५ गज लम्बा ग्रोर ढाई फुट चौडा साफा
थान — नौ हाथ लम्बा कपडा।

९३ हकीकत वही न० ५, पृ० १६० जोध०

९४-९५. उपर्युक्त, पृ० २०८

घसूमल — गहरा लाल रंग
कोरपाए-बिना धुला कोरा कपड़ा
सरपेचा साफे के चारों तरफ बांधने के लिये छोटी पाग
पतूप्रा — तौलिया-नुमा डेढ गज लम्बा दो फुट चौड़ा मोटा कपड़ा ।

९६ उपर्युक्त, पृ० २१६
९७ हकीकत बही नं० १०, पृ० १०६
९८ निछरावल शासक को धन भेंट करने का एक तरीका होता है । हकीकत बही नं० (५) पृ० १६७
९९ उपर्युक्त, पृ० २०४
१०० मेकनॉटन का एलवीस को एक पत्र, ३० अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३९ न ३० (अप्पाजी को १८२९ से जब तक उनकी मृत्यु नहीं हुई तब तक दिवाली के अवसर पर ३०० रुपया भेंट में दिया जाता था)।
१०१. हथबही नं० २ पृ० १६८
१०२ मानसिंह का दौलतराव को पत्र, प्रथम श्रावण बदी ३, वि०स १८७४ । १ जुलाई १८१७ (अ०ब० नं० ५, पृ० १८ जोध०)
१०४ हकीकत बही नं० ११ पृ० २४८
१०५ विजयसिंह का महादजी को पत्र श्रावण बदी ९, वि० स० १८३९ । २ अगस्त १७८२ (अ०ब०न ४, पृ० ४०, जोध०
१०६ महादजी का विजयसिंह को पत्र, श्रावण बदी २, वि०स० १८३९ । २६ जुलाई १७८२ (पो०फो० नं० ६, पत्र नं० ४४ जोध०)
१०७ उपर्युक्त, चैत्र बदी ११, वि०स० १७२५ । २ अप्रेल १७६६ (पो०फो० नं० ६, पत्र नं० ४, जोध०)
१०८ विजयसिंह का महादजी को पत्र, बैसाख सुदी ४, वि०स० १८२१ । ६ मई १८२६ (अ०ब०न० ४, पृ० २६, जोध०)
१०९ भीमसिंह का अम्बाजी इंगले को पत्र, फाल्गुन बदी ७, वि०स० १८५७ । ५ फरवरी १८०१ (अ०ब०न० ४, पृ० ७४ जोध०)
११० मानसिंह का एस०आर० भाटका को पत्र, श्रावण सुदी ६, वि०स० १८६५ । २८ जुलाई १८०८ (अ०ब०न० ५, पृ० ६७, जोध०)
१११ देखिए परिशिष्ट
११२. विजयसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी १, वि०स० १८४७ । २ जुलाई १७९१, (अ०ब०न० ४, पृ० ४५ जोध०)
११३ तुकोजी का विजयसिंह को पत्र, आषाढ बदी ६, वि०स० १८४१ । ९ जून १७८४ (पो०फो० नं० २, व फाइल नं० १, पत्र नं० ४ विजयसिंह का महादजी को पत्र, भाद्रपद सुदी १२ वि०स० १८४८ । ६ सितम्बर १७९१ (अ०ब०न० ४, पृ० ४७ जोध०)

११४. डा० एच० गोज का लेख 'मराठी कला और उसकी समस्या' (वी०सी०लॉ० स्मारिका ग्रन्थ भाग (२) १९४६, पृ० ४४१)

११५. होल्कर और सिंधिया ने १७३६ मे मेडता का घेरा डाला (पे०द० का (१४) १४)। लम्बे अरसे तक (१७५४-१७५६) घेरे के बावजूद जयप्पा सिंधिया नागोर का किला नहीं ले सका। इस घेरे के फलस्वरूप उसकी हत्या हुई। (पे०द० का (२१) ६७, ६६, (२७) १०६, ११६। १८०७ मे जोधपुर के किले की सुदृढ़ नाकेबन्दी के कारण ही राठोड़ अमीरखा और मराठो के घेरे का सफलतापूर्वक सामना करते रहे। (पी०आर०सी० (२) २३०), जालोर किले मे मानसिंह भीमसिंह के हाथो बचा रहा। टॉड (२) पृ० १०७६-१०८०), अक्टूबर १७५५ मे मराठो से हार जाने के बाद अनिरुद्धसिह ने डीडवाना के किले मे शरण ली। (पे०द० का (१६) ७६, ७७)

११६ शासक नागोर पर हमेशा अपना अधिकार बनाये रखते थे क्योंकि इसके उत्तर मे रेगिस्तान था, जहां वे समय पड़ने पर सुरक्षा हेतु भाग सकते थे। (पे०द० का नयी सिरीज) (१) १८६)

११७ टॉड (२) पृ० ११२०, लिखता है कि मारवाड़ में २४ घराने सामन्तो के थे, जिनमे सिर्फ दो ही विदेशी थे। ये सभी एक ही वंश के थे।

११८. पे०द० का (१६) ६०; उपर्युक्त, नयी सिरीज, भाग १, १७७

११९. पी०आर०सी० (११) २१०, २२४, २२५

१२० हकीकत बही न० १०, पृ० ८४, मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०नी० १३ जनवरी १८१६ न० २७

१२१. टॉड (२) पृ० १०६७

१२२ टॉड (१) पृ० २२८–२३०

१२३ टॉड (२) पृ० ८७६–८८०



कसूमल — गहरा लाल रंग
कोरपाण–बिना धुला कोरा कपड़ा
सरपेचा　साफे के चारों तरफ बांधने के लिये छोटी पाग
पत्तूपा — तोलिया-नुमा डेढ गज लम्बा दो फुट चौड़ा मोटा कपड़ा।

९६ उपर्युक्त, पृ० २१६

९७ हकीकत बही नं० १०, पृ० १०६

९८ निछरावल शासक को धन भेंट करने का एक तरीका होता है। हकीकत बही नं० (५) पृ० १६७

९९ उपर्युक्त, पृ० २०४

१०० मेकनॉटन का एलवीस को एक पत्र, ३० अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २३ जनवरी १८३९ न ३० (अप्पाजी को १८२६ से जब तक उनकी मृत्यु नहीं हुई तब तक दिवाली के अवसर पर ३०० रुपया भेंट में दिया जाता था)।

१०१. हथबही नं० २ पृ० १६८

१०२ मानसिंह का दौलतराव को पत्र, प्रथम श्रावण बदी ३, वि०स १८७४। १ जुलाई १८१७ (प्र०ब० नं० ५, पृ० १८ जोध०)

१०४ हकीकत बही नं० ११ पृ० २४८

१०५ विजयसिंह का महादजी को पत्र श्रावण बदी ९, वि० स० १८३९। २ अगस्त १७८२ (प्र०ब०न ४, पृ० ४०, जोध०

१०६ महादजी का विजयसिंह को पत्र, श्रावण बदी २, वि०स० १८३९। २६ जुलाई १७८२ (पो०फो० नं० ६, पत्र नं० ४४ जोध०)

१०७ उपर्युक्त, चैत्र बदी ११, वि०स० १८२५। २ अप्रेल १७६९ (पो०फो० नं० ६, पत्र नं० ४, जोध०)

१०८ विजयसिंह का महादजी को पत्र, वैसाख सुदी ४, वि०स० १८२१। ६ मई १८२६ (प्र०ब०नं० ४, पृ० २९, जोध०)

१०९ भीमसिंह का अम्बाजी इंगले को पत्र, फाल्गुन बदी ७, वि०स० १८५७। ५ फरवरी १८०१ (प्र०ब०नं० ४, पृ० ७४ जोध०)

११०. मानसिंह का एस०आर० घाटका को पत्र, श्रावण सुदी ६, वि०स० १८६५। २९ जुलाई १८०८ (प्र०ब०नं० ५, पृ० ६७, जोध०)

१११ देखिए परिशिष्ट

११२. विजयसिंह का महादजी को पत्र, आषाढ सुदी १, वि०स० १८४७। २ जुलाई १७९१, (प्र०ब०नं० ४, पृ० ४५ जोध०)

११३ तुकोजी का विजयसिंह को पत्र, आषाढ बदी ६, वि०स० १८४१। ९ जून १७८४ (पो०फो० नं० २, ब फाइल नं० १, पत्र नं० ४ विजयसिंह का महादजी को पत्र, भाद्रपद सुदी १२ वि०स० १८४८। ९ सितम्बर १७९१ (प्र०ब०नं० ४, पृ० ४७ जोध०)

११४ डा० एच० गोज का लेख 'मराठी कला और उसकी समस्या' (वी०सी०लॉ० स्मारिका ग्रन्थ भाग (२) १६४६, पृ० ४४१)

११५. होल्कर और सिंधिया ने १७३६ मे मेडता का घेरा डाला (पे०द० का (१४) १४)। लम्बे अरसे तक (१७५४-१७५६) घेरे के बावजूद जयप्पा सिंधिया नागौर का किला नही ले सका। इस घेरे के फलस्वरूप उसकी हत्या हुई। (पे०द० का (२१) ६७, ६६, (२७) १०६, ११६। १८०७ मे जोधपुर के किले की सुदृढ नाकेबन्दी के कारण ही राठौड़ अमीरखा और मराठो के घेरे का सफलतापूर्वक सामना करते रहे। (पी०मार०सी० (२) २३०), जालोर किले मे मानसिंह भीमसिंह के हाथो बचा रहा। टॉड (२) पृ० १०७६-१०८०), अक्टूबर १७५५ मे मराठो से हार जाने के बाद अनिरुद्धसिंह ने डोडवाना के किले मे शरण ली। (पे०द० का (१६) ७६, ७७)

११६ शासक नागौर पर हमेशा अपना अधिकार बनाये रखते थे क्योंकि इसके उत्तर मे रेगिस्तान था, जहां वे समय पडने पर सुरक्षा हेतु भाग सकते थे। (पे०द० का नयी सिरीज) (१) १८६)

११७ टॉड (२) पृ० ११२०, लिखता है कि मारवाड म २४ घराने सामन्तो के थे, जिनमे सिर्फ दो ही विदेशी थे। ये सभी एक ही वश के थे।

११८. पे०द० का (१६) ६०; उपर्युक्त, नयी सिरीज़, भाग १, १७७

११६. पी०मार०सी० (११) २१०, २२४, २२५

१२० हकीकत बही न० १०, पृ० ८४, मेटकॉफ का जे० एडम्स को पत्र, २ दिसम्बर १८१५, एफ०पी० १३ जनवरी १८१६ न० २७

१२१ टॉड (२) पृ० १०६७

१२२ टॉड (१) पृ० २२८-२३०

१२३ टॉड (२) पृ० ८७६-८८०



अध्याय ६

ऐतिहासिक ग्रन्थ विवरण

मारवाड-मराठा सम्बन्ध काल (१७२४–१८४३) का इतिहास जानने के साधन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हैं। उनका वर्गीकरण निम्नलिखित है—

(क) फारसी तवारीख

(ख) फरमान, अखबारात और वकील रिपोर्ट (फारसी मे)

(ग) समकालीन मराठी ग्रन्थ

(घ) समकालीन मराठी पत्र

(ङ) समकालीन राजस्थानी खरीते और पत्र

(च) समकालीन बही अभिलेख (राजस्थानी में)

(छ) राजस्थानी—हस्तलिखित ग्रन्थ

(ज) संस्कृत—हस्तलिखित ग्रन्थ और पत्र

(झ) ख्यात साहित्य

(ट) अंग्रेजी अभिलेख (अप्रकाशित)

(ठ) अंग्रेजी अभिलेख (प्रकाशित)

(ड) प्रकाशित पुस्तकें

(ढ) गजेटियर

(ण) पत्रिकाएँ

(त) मानचित्र

(थ) पचांग

(क) फारसी तवारीखें

आलमगीरनामा—(फारसी मे, बिब्लिओथिका इण्डिका की प्रति)

लेखक मिर्जा मुहम्मद कासिम। यह ग्रन्थ औरंगजेब के प्रारम्भिक १० वर्षों का राजकीय इतिहास है। जसवतसिंह और औरंगजेब के बीच प्रारम्भिक सम्बन्धों पर यह ग्रन्थ प्रकाश डालता है। इसमे इन तथ्यों का भी उल्लेख है कि दक्षिण मे शिवाजी के विरुद्ध जसवतसिंह के क्या कार्य थे।

मआसिर ए आलमगीरी—(सरस्वती भडार लाइब्रेरी, उदयपुर की प्रतिलिपि: बिब्लिओथिका इण्डिका की प्रतिलिपि १८७०—फारसी मे)—लेखक मुहम्मद साकी मुस्तैदखा।

गुजरात में जसवतसिंह की सूबेदारी, शिवाजी–शाइस्ताखां काण्ड मे जसवतसिंह का भाग, दक्षिण मे मराठो के विरुद्ध उसके अभियान, जसवतसिंह की मृत्यु के बाद राठौडो का मुगल विरोध और मराठो से सहायता लेने के लिए दुर्गादास का दक्षिण की ओर प्रयाण, इस काल के मारवाड-मराठा सम्बन्ध के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।

मुन्तखब उल-लुबाब (बिब्लिओथिका इण्डिका की प्रतिलिपि, १८६९, फारसी में) लेखक मुहम्मद हाशिम खफी खा।

यह ग्रन्थ दो भागो मे है। एक भाग मे बाबर से शाहजहाँ तक की घटनाओं का वर्णन है। दूसरा ग्रन्थ औरगजेब के समय का इतिहास बतलाता है। खफी खा औरगजेब का समकालीन था। वह गुप्त रूप से इस ग्रन्थ की रचना करता रहा। जब मुगल बादशाह की मृत्यु हो गई तो उसने इस ग्रन्थ को प्रकट कर दिया। लेखक ने इसे अस्वीकार किया है कि शाइस्ताखा काण्ड मे जसवतसिंह का पूर्व निर्धारित भाग था। इसके अलावा राठौडो की मुगल विरोधी सैनिक गतिविधियाँ, दुर्गादास की दक्षिण यात्रा, शम्भाजी से उसकी मित्रता आदि पर भी नये तथ्य दिये है। १७१९ मे महाराजा अजीतसिंह के मराठो से मिलकर फर्रुखसियर को गद्दी से हटाने के प्रयत्नों के बारे मे भी विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

मआसिर उल उमरा—(बिब्लिओथिका इण्डिका की प्रतिलिपि १८८७–१८९५ फारसी मे) लेखक—शाहनवाजखा।

इस ग्रन्थ मे बाबर से लेकर औरगजेब के शासन के २२ वें वर्ष (१६८०) तक के मुगल सामतो, मनसबदारो और उच्च पदाधिकारियों के जीवन वृतात हैं।

नवश ए दिल खुश—(रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ की प्रतिलिपि, फारसी में) लेखक – भीमसेन

लेखक दक्षिण भारत मे मुगल प्रशासन का एक कर्मचारी था। १६७०–१७०७ की घटनाओ का वह चश्मदीद गवाह था। इस ग्रन्थ से मुझे ५ अप्रेल १६६३ की रात्रि मे शिवाजी के शाइस्ताखा पर आक्रमण व बाद की घटनाओ मे मराठा राठौड सम्बन्धो का मूल्याकन करने मे अत्यन्त सहायता मिली। इस ग्रन्थ से शिवाजी और जसवन्तसिंह के बीच १६६७–१६७० मे मधुर सम्बन्धो के बारे में तथ्य दिये हुए हैं।

फतूहात ए आलम गीरी—(रघुवीर लाइब्रेरी, सीतामऊ की प्रतिलिपि फारसी में, लेखक—ईश्वरदास नागर)

लेखक गुजरात के पाटन नगर का नागर ब्राह्मण था। जोधपुर मे मुगल शासन स्थापित हो जाने पर औरगजेब ने किले में इसे नियुक्त किया। वह राजस्थान मे ऐतिहासिक घटनाओं (१६५७–१६९८) का प्रत्यक्ष दर्शक था। इसके ग्रन्थ में राठौड-मराठा सम्ब ध पर कोई महत्वपूर्ण तथ्य नही प्राप्त हुआ फिर भी राठौड मुगल

सम्बन्धो के लिए यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ गुजरात मे जसवन्तसिंह की सूबेदारी के बारे मे तथा अजीतसिंह के मुगलो के विरुद्ध सैनिक संघर्ष के बारे में अधिकारपूर्ण तथ्य उपलब्ध कराता है।

मीरात ए एहमदी—(बिब्लिग्रोथिका इण्डिका की प्रतिलिपि, फारसी मे) लेखक—अली मुहम्मद खा।

इस ग्रन्थ के तीन भाग हैं। गुजरात मे राठौड सूबेदारी – जसवतसिंह, अजीतसिंह अभयसिंह के कार्यों के बारे म इस ग्रन्थ मे महत्त्वपूण तथ्य हैं। बाजीराव और अभयसिंह के बीच अहमदाबाद समझौता, बडोदा पर अधिकार करने के लिए मराठो और राठौडो की लडाइयाँ, पीलाजी गायक्वाड की हत्या तथा गुजरात में अभयसिंह के प्रशासन का इसमे विस्तृत वर्णन है।

सीयर मुताखरीन—(१६०२ आर केम्ब्रे एण्ड कम्पनी, कलकत्ता) लेखक—सैयद गुलाम हुसैन।

यह ग्रन्थ चार भागों मे है। फारसी से प्रथम बार इसका अनुवाद एक फ्रांसिसी एम० रैमण्ड (हाजी मुस्तफा) ने ३ खण्डो में किया। १७८४ मे नोटमन ने अग्रेजी मे अनुवाद कर तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिग्ज को भेंट किया। १६०२ में कलकत्ता की केम्ब्रे एण्ड कम्पनी ने, ११७ वर्ष बाद, अग्रेजी प्रतिलिपि को प्रकाशित कराया। इस तवारीख मे मुगल साम्राज्य के अन्तिम सात बादशाहो का इतिहास है। लेखक अपने जीवन मे मुगल राजनीति का सिर्फ दर्शक ही नही था बल्कि कुछ घटनाओ से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित भी था। इस ग्रथ के अनुसार फर्रुखसियर को गद्दी से हटाने मे बालाजी विश्वनाथ के नेतृत्व मे मराठा सेना ने भाग लिया था। इस सेना ने दिल्ली के नागरिको पर, जो बादशाह के पक्ष मे उठ खडे हुए थे, भयकर अत्याचार किये। इस ग्रन्थ के अनुसार १७५१ मे बखतसिंह को सलावत खा ने सहायता दी तथा पीपाड के युद्ध मे मराठे रामसिंह का समर्थन कर रहे थ।

तारीख ए हिन्द (इलियट और डाउसन भाग ८ म अनुवादित अश) लेखक—रूस्तम अली

१७३४ मे रामपुरा मे होल्कर व सिंधिया द्वारा राजपूत सयुक्त मोर्चे की हार, १७३६ मे इन मराठी नेताओ का मारवाड मे प्रवेश और नागोर के बखतसिंह से धन वसूली के सम्बन्ध मे तथ्य इस ग्रन्थ से प्राप्त होते हैं।

(ख) फरमान, अखबारात और वकील रिपोर्ट (फारसी) में

फरमान

मुगल बादशाहों द्वारा समय-समय पर मारवाड के शासको को फरमान दिये जाते थे। ऐसे करीब २० फरमानो का बीकानेर स्थित राजस्थान अभिलेखागार मे मुझे अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। उनम से कुछ महत्त्वपूर्ण पाये गये। १७१० मे मुगल बादशाह ने फरमान भेजकर जोधपुर राज्य पर अजीतसिंह के अधिकार को मान्यता दी। अहमदशाह अब्दाली के १७५५, १७५६ और १७६१ के

फरमान मराठों के सम्बन्ध में थे। १७५५ में अब्दाली विजयसिंह को मराठों के विरुद्ध सहायता देने को तैयार था; १७५९ में उसने राठौड़ शासक से मराठों के विरुद्ध सहायता की आशा की। १७६१ की पानीपत के युद्ध में विजय की सूचना देते हुए अब्दाली ने जोधपुर शासक से विजय के लाभ को स्थायी बनाने में सहयोग के लिए लिखा।

अखबारात-ए दरबार ए मुअल्ला (राजस्थान अभिलेखागार बीकानेर)

ये छोटे भूरे रंग के कागज के टुकड़े हैं। प्रत्येक टुकड़े में शाही दरबार की दैनिक दिनचर्या उल्लिखित है, जैसे बादशाह का खाना, उसका कार्य करना दरबार का समय, की गयी नियुक्तियाँ, सूबों से आने वाली लिखित सूचनाएँ, उन पर शाही टिप्पणी और आदेश दिया जाना आदि। ये अखबारात फारसी भाषा में हैं तथा १६६६ से १७१९ तक के पाये जाते हैं। औरंगजेब के शासनाधिकार के १० वें तथा १२ वें वर्ष के अखबरात से शिवाजी के आगरा से लौट आने के बाद दक्षिण में राठौड़ कूटनीति की क्रिया एवं प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करने में मुझे इनसे सहायता प्राप्त हुई। २४ वें वर्ष के अखबारात दक्षिण भारत में अकबर और दुर्गादास के आगमन पर प्रकाश डालते हैं। ४५ वें वर्ष के अखबारात में १७०० ई० में अजीतसिंह का औरंगजेब को समर्पण का दृष्टिकोण व्यक्त है। मरने के पूर्व औरंगजेब ने अजीतसिंह से गुजरात में सहायता चाही थी। उसके बदले में वह उसे मारवाड़ में कई सुविधाएँ देने को तैयार था। यह उल्लेख ५१ वें वर्ष के अखबारात में है।

वकील रिपोर्ट—(राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर)

ये रिपोर्ट फारसी भाषा में है। जयपुर के शासक मुगल दरबार में अपने वकील रखा करते थे। ये वकील दरबार में होने वाली खबरों को लिखकर या तो महाराजा के पास भेजते थे या जयपुर के दीवान को। इन रिपोर्टों में शाही दरबार में होने वाली गतिविधियाँ, आने जाने वाली सूचनाओं, आज्ञाओं और आदेशों का सारांश और बादशाह के हुक्म सम्बन्धी सूचनाएँ होती थीं। २९ शव्वल २५ वें वर्ष की वकील रिपोर्ट में दुर्गादास, अकबर और मराठों का १६८२ में अहमदाबाद की ओर पलायन और २६ वें वर्ष की रिपोर्ट में राठौड़ों के अहमदाबाद पर अधिकार का उल्लेख है। १७ जमद अव्वल २६ वें वर्ष की रिपोर्ट में लिखा है कि राठौड़ों ने अकबर और औरंगजेब के बीच समझौते की योजना रखी, जिसे बादशाह ने अस्वीकार किया।

(ब) समकालीन मराठी ग्रंथ

अब तक प्रकाशित समकालीन मराठी ग्रन्थों का उपयोग किया गया, जिनके आधार पर कई तथ्यों की सत्यता पर प्रकाश पड़ता है।

शिव छत्रपतिचें चरित्र (सम्पादक एम सार्गे १९१२ तृतीय संस्करण)

इस ग्रन्थ का लेखक कृष्णाजी अनन्त सभासद था। उसने इस ग्रन्थ की रचना १६९६ में की। वह शिवाजी का समकालीन था और उसके समय की कई घटनाओ का चश्मदीद गवाह था। इस ग्रन्थ मे दक्षिण मे जसवंतसिंह और शिवाजी के सम्बन्धो का उल्लेख है। शिवाजी की आगरा-यात्रा, शाही दरबार में जसवंतसिंह के मनसब पर शिवाजी की प्रतिक्रिया तथा १६६७-१६६९ मे शांतिकाल मे शिवाजी की सैनिक तैयारियो के बारे मे सभासद अधिकारपूर्वक लिखता है।

जेधे याची शाकावली (यदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित १९२७)

महाराष्ट्र के मावेल गाँव के जेधे परिवार ने, जो क्षत्रिय था, शिवाजी के समय से ऐतिहासिक घटनाओं को तिथि क्रम के अनुसार लिखा है। ये तिथियाँ शक सवत् मे हैं। १५४० शक सवत् से १६११ शक सवत् तक की घटनाओं का रिकार्ड है। इस ग्रन्थ से विस्तृत वर्णन नही पाया जा सकता। तिथि क्रमानुसार घटनाएँ एक या दो पक्तियो मे लिख दी गयी हैं। शिवाजी शाइस्ताखां घटना में जसवन्तसिंह का भाग, कोन्धाना पर राठौड सेना का आक्रमण, शम्भाजी का जसवतसिंह के कैम्प में जाना व १६६७ मे मुगल मराठा शांति तथा दुर्गादास और अकबर का दक्षिण मे पदार्पण आदि कई घटनाओ की तिथियो को अकित करने मे यह ग्रन्थ लाभदायक है। मैंने इस ग्रन्थ की पृष्ठ सख्या अकित न कर शक सवत् माह व तिथि के अनुसार उल्लेख किये हैं। जैसे १५८५ शक फाल्गुन।

(ड) समकालीन मराठी पत्र

मराठाच्यां इतिहासाची साधणें(वी०के० राजवाडे द्वारा सम्पादित १८९८ १९०२)—

१९०८ से १९२६ तक राजवाडे ने कई ऐतिहासिक पत्रो व अभिलेखों का सकलन किया और उनका २२ भागों म वर्गीकरण किया। भाग न १, २ व ६, ७ में सकलित पत्र मेरे विषय की दृष्टि से अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुए हैं। प्रथम भाग के पत्र स० ४४ मे जयप्पा द्वारा नागौर के घेरे के समय अकाल की स्थिति का चित्रात्मक वर्णन है। भाग ६ के पत्र स० ३२७, ३४१ मे पेशवा के स्पष्ट निर्देश हैं जो जयअप्पा को मारवाड अभियान के लिए दिये गये थे। इन निर्देशों मे कहा गया था कि शीघ्रातिशीघ्र अभियान समाप्त कर दिया जाए तथा मराठी सेना को पूर्व की ओर भेज दिया जाए।

ऐतिहासिक पत्रों आदि लेख (सम्पादक सखाराम सरदेसाई, काले और वाकसकर १९३०)

मेरे ग्रन्थ के लिए पत्र स० १२२, १२४, १२५ १२७, १३१, १३६, १४१ १४२ व १४३ उपयोगी पाये गये। पत्र स० १२२ और १२४ मे सिंधिया का मारवाड की ओर प्रयाण तथा मेडता के युद्ध मे उसको विजय का उल्लेख है। पत्र स० १४१ मे फरवरी १७५६ मे राठौड सिंधिया सधि की शर्ते दी गई हैं।

शवा दफ्तर कागजात (सलेक्शन पुराने पेशवा दफ्तर)

गोविन्द सखाराम सरदेसाई ने ४५ भागो मे १९३०-१९३५ के बीच इन तिहासिक पत्रो का सङ्कलन व सम्पादन किया है। पेशवाम्रो ने समस्त भारत में पने प्रतिनिधियो को पत्र लिखे थे। ये पत्र १७०४-१७८१ के बीच के पाये गये हैं। स ग्रन्थ के लिए भाग स० २, १०, १२, १३, १४, १५, २१, २२, २७, २६, ३० ३८ उपयोगी पाये गये हैं। भाग १४ का पत्र २३ के अनुसार होल्कर और सिंधिया १७३४ रामपुरा मे राजपूत सयुक्त मोर्चे को, जिसमे जोधपुर का अभयसिंह भी ामिल था, बुरी तरह हराया। भाग २७ के पत्र से यह मालूम होता है कि १७४२ मारवाड मे अकाल पड़ा तथा सिंधिया और होल्कर कालागुणा गाँव मे धन एकत्र रने गये तो उन्हें बड़ी मुश्किल से १००) रुपये प्राप्त भी हुए। इसके भाग के पत्र २७५ जो कि ६ जुलाई १७६१ को लिखा गया था, के अनुसार गोविन्दकृष्ण ने रघुनाथ राव को लिखा कि वह जोधपुर के विजयसिंह से वार्ता नही करे अन्यथा सिंधिया की प्रतिष्ठा पर बड़ा आघात लगेगा।

पेशवा दफ्तर कागजात (नई सीरीज)

श्री वी० बी० जोशी ने पेशवा दफ्तर के कुछ और पत्रों का सम्पादन किया है। इस पुस्तक का नाम मराठा शक्ति का प्रसार है। इसका प्रथम भाग उपयोगी रहा। पत्र स० ६ के अनुसार मारवाड मराठो की सरजामी में था, जिसे १७२८ मे पेशवा बाजीराव ने होल्कर को सौंपा था। पत्र स० ११७ का पत्र उसी दिन लिखा गया था जिस दिन मेड़ता का युद्ध हुआ, (१४ सितम्बर १७५४)। अब तक यह तिथि १५ सितम्बर समझी जाती थी। पानीपत युद्ध के बाद रामसिंह विजयसिंह सघर्ष की पुनरावृत्ति और मराठो का रामसिंह को समर्थन पत्र सख्या २४६ मे मिलता है।

सिंध शाही इतिहासाची साधनें (सम्पादक आनन्दराव फालके)

कोटा के गुलगुले परिवार ने राजस्थान, विशेषत कोटा राज्य मे मराठो के पत्राचार का सङ्कलन किया। ये पत्र चार भागो म वर्गीकृत किये गये हैं। भाग ३ का पत्र स० ३२० के अनुसार जुलाई १७५५ मे जयप्पा सिंधिया की हत्या हुई। भाग २ के पत्र ४१ मे मराठा सरदारो का जोधपुर राज्य की सेवा मे लिया जाना अंकित है। मराठो द्वारा कर वसूल करने का तरीका, मराठा पदाधिकारी एव उनके कार्यों का विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ मे मिलता है।

होल्कर शाहीच्या इतिहासाची साधनें (सम्पादक वि० वि० ठाकुर)

ये पत्र दो भागों मे सङ्कलित किये गये हैं। प्रथम भाग मे ४५६ पत्र हैं, और दूसरे म ३४६ पत्र। भाग प्रथम के पत्र २३६ के अनुसार जुलाई १७८६ मे विजयसिंह ने तुकोजी होल्कर के मार्फत महादजी को शान्ति प्रस्ताव भेजे थे। यशवन्तराव की

न० ६ मे सिंधिया से प्राप्त अभिलेख मिलते हैं। प्रत्येक फोलियो के अभिलेख जोधपुर शासको के क्रमानुसार व्यवस्थित हैं तथा प्रत्येक में सूची सकलित की गयी है। सबसे प्राचीनतम खरीता महाराजा जसवन्तसिंह के समय का है और फिर लगातार कई शासको के काल के खरीते मिलते हैं। अन्तिम मसौदा महाराजा उम्मेदसिंह (१९४७ ई०) का है। सामान्यत अजीतसिंह से मानसिंह (१७०७–१८४३) के खरीते पाये गये हैं। फोलियो सख्या दो (ब) फाइल स० १ मे मल्हारराव होल्कर का विजयसिंह को लिखा हुआ एक पत्र उसकी नयी नीति पर प्रकाश डालता है। मल्हारराव अभयसिंह का धर्म-भाई था तथा उसने महाराजा की मृत्यु के पूर्व उन्हे विश्वास दिलाया था कि वह रामसिंह का समर्थक बना रहेगा। परन्तु उक्त पत्र के अनुसार जो कि वि० स० १८०६ आश्विन सुदी १२ को लिखा गया था, उसने विजयसिंह को जोधपुर का सिंहासन प्राप्त करने पर बधाई दी। एक अन्य पत्र (वि० सं० १८२८ आषाढ़ बदी २) फोलियो स ६ पत्र स १३) से महादजी का मेवाड मे अपने स्वार्थों की सुरक्षा का उत्तरदायित्व विजयसिंह को सौंपने का उल्लेख पाया जाता है।

राजस्थान अभिलेखागार बीकानेर के जोधपुर विभाग मे कई ऐसे पत्र मिले हैं जो महाराजा अभयसिंह ने १७३०–१७३३ के बीच गुजरात से दिल्ली स्थित अपने वकील भडारी अमरसिंह को लिखे थे। इन पत्रो से मराठ-राठौड सघर्ष का एक नया स्वरूप तथा तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का विस्तृत चित्र उपलब्ध होता है। वि० स० १७८२ कार्तिक सुदी १२ को लिखा गया एक पत्र राठोडो के उस सघर्ष का वर्णन करता है जो उन्होने बिना मुगल सहायता से गुजरात मे मराठो से किया था। पीलाजी गायकवाड की डाकोर मे हत्या के सम्बन्ध मे विस्तृत जानकारी महाराजा के उस पत्र से प्राप्त होती है जो उसने वि० स० १७८८ वैसाख सुदी १३, एवम् चैत्र सुदी ११ को भण्डारी अमरसिंह को लिखे थे। अभयसिंह की बडौदा विजय तथा मराठों के २४ किलो पर अधिकार का उल्लेख वि० स० १७८९ भाद्रपद बदी एकम से प्राप्त होता है।

(छ) समकालीन बही अभिलेख (राजस्थानी मे)

जोधपुर विभाग मे कई बहियाँ उपलब्ध हैं, जिनसे इस ग्रन्थ की रचना मे महत्वपूर्ण एवं तथ्यपूर्ण सामग्री जुटायी गयी है। बहियो हस्तलिखित है हकीकत बही, हथबही, खास रुक्का बही, खरीता बही और अर्जी बही।

हकीकत बहियाँ

इन बहियों मे जोधपुर शासको की दिनचर्या, उनके पलायन और मुख्य स्थानों पर उनकी यात्राओ का वर्णन है। उनके दरबार मे उपस्थित होने वाले महत्त्वपूर्ण राजनैतिक व्यक्तियो के बारे मे भी ये बहिया प्रकाश डालती हैं। महाराजा विजयसिंह के शासन के बारहवें वर्ष (सवत् १८२१) से इन बहियो का लिखना प्रारम्भ किया गया, जो कि महाराजा हनवन्तसिंह (१९५२) के शासन तक चलता रहा। प्रत्येक

वही मे प्रत्येक शासक के पाँच से दस वर्षों तक का इतिहास सगृहीत है । इस ग्रन्थ की दृष्टि से बही न० ११ तक की बहियाँ ही उपयोगी हैं । इनकी सहायता से सही तिथियाँ उपलब्ध हो सकी है । बही स० ६ पृष्ठ ४,२२ और ५७ पर १८०५ से १८०६ तक मारवाड मे होल्कर-परिवार के प्रावास का वर्णन पाया जाता है । बही स० १० के पृष्ठ स० ८० ८४,८६,८६ अमीरखा द्वारा सिंघवी इन्द्रराज और आयस देवनाथ की हत्या का वर्णन है । जोधपुर मे अप्पाजी भोंसले की यात्रा और महामन्दिर मे उनके निवास सम्बन्धी तथ्य बही न० ११. पृ० २१८ से उपलब्ध होते हैं ।

हथबहियाँ

इनकी स० ५ है । इस ग्रन्थ की रचना के लिए प्रथम ४ उपयोगी थी । इन बहियो से मराठो को दिये गये करों के बारे मे विस्तृत जानकारी मिलती है । महादजी सिंधिया को वि०स० १८३५ से १८३६ तक जो कर दिया गया उसकी विस्तृत व्याख्या हथबही स० २ पृष्ठ सख्या १२४--१२५ पर अंकित है । हथबही स० ३, पृ० ४२- ४३ मे मानसिंह द्वारा अमीरखा के सेना-नायको, मुख्यतया रउद्दौला, को मारवाड की राज्य सेवा मे लिए जाने के सम्बन्ध मे समझौते का वर्णन है । हथबही स० ४ मे महाराष्ट्र मे राठौड उपनिवेश के बारे मे बताया गया है । इसमे उन उपनिवेशो का इतिहास, जनसख्या और कालान्तर मे मराठो को दिये जाने वाले कर के बारे मे जानकारी दी गयी है ।

खास रुक्का बहियाँ

इन बहियो मे मारवाड के शासको द्वारा अपने सामन्तो को दिये गये निर्देशो और आज्ञाओ की प्रतिलिपियाँ मिलती हैं । बही नम्बर २ के पृष्ठ सख्या २ पर मानसिंह द्वारा अपने सामन्तो को मराठों एव पठानो से मातृभूमि की रक्षा की अपील की प्रतिलिपि है । पृष्ठ तीन मे मानसिंह की वह कूटनीतिक योजना अंकित है जिसके द्वारा वह अमीरखा और सिरजी राव घाटगे को अपनी ओर करने म सफल हुआ ।

अर्जी बहियाँ

इनकी सख्या सात है । इस ग्रन्थ की रचना के लिए बही सख्या ४ व ५ ही उपयोगी हैं । इन बहियो मे मराठो से पत्र-व्यवहार की प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं । मारवाड के शासकों ने जो पत्र पेशवा, सिंधिया, होल्कर तथा उनके सेना नायको और प्रशासकों को लिखे उनकी प्रतिलिपियाँ इन बहियो मे उतार ली गयी हैं । ये पत्र १७५४ से १८४३ ईसवी तक के प्राप्त होते हैं । इन बहियो (बही न० ४ व ५) मे कुल पृष्ठ ४७४ हैं, करीब ७०० पत्रो की प्रतिलिपियाँ हैं । मेडता-युद्ध (सितम्बर १०, १७६०) के बाद जोधपुर शासक व दीवान खीची गोरधन ने वि०स० १८४६

आषाढ बदी १२ को महादजी, रानेखा और पण्डित आबा चिटणिस को संधि सम्बन्धी पत्र लिखे, यह तथ्य बही संख्या ४ पृष्ठ ६४ से उपलब्ध होता है।

इसी बही के पृष्ठ संख्या ५० के अनुसार भीमसिंह ने जोधपुर-स्थित मराठा प्रतिनिधियों के सहयोग से जोधपुर पर वि०सं० १८४९ आषाढ सुदी ६ को अधिकार कर लिया था। कृष्णाकुमारी काण्ड में सिंधिया का सहयोग प्राप्त करने के लिए मानसिंह ने विक्रम संवत् १८६२ माघ सुदी ६ को एक पत्र दौलतराव सिंधिया को लिखा कि वह उसके बदले में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में न सिर्फ सहायता ही देगा बल्कि होल्कर से उसके जो मतभेद हो गये थे वह भी दूर करा देगा। (अर्जी बही सं० पृ० ३-४)। इस बही के पृष्ठ संख्या १२० के अनुसार महाराजा मानसिंह ने अमीरखां को घाणेराव का किला उसके परिवार को सुरक्षित रखने के लिए दिया परन्तु इसकी प्राप्ति के बाद अमीरखां मारवाड़ की राजनीति को अति प्रभावित करने लगा।

ढोलियों के कोठार के अभिलेख

यह कोठार किले में स्थित था और 'श्री हजूर दफ्तर' के प्रत्यक्ष निरीक्षण में इसका प्रबन्ध किया गया था। यहां से प्राप्त कई अभिलेख मूलरूप में पाये गये है। इस कोठार से प्राप्त अभिलेख, जो इस ग्रन्थ के लिए उपयोगी हैं, निम्न रूप से वर्गीकृत हैं—

अर्जी फाइलें	—	संख्या १-६ और २२
अमल चिट्ठी फाइलें	—	७ और १०५
गांवों की उठतरी की फाइलें	—	संख्या २२
खतोकिताब फाइल	—	संख्या २८ और ३०
ताम्रपत्र फाइल	—	संख्या ४६
घोड़ा और सामान की फाइल	—	संख्या ३८७
इन्तजामी सीगा फाइल	—	संख्या ५८
रेख चाकरी और हुक्मनामा फाइल	—	संख्या ७१
सायर फाइल	—	संख्या ७६
इजारा फाइल	—	संख्या १०९ व ११०
जमाखर्च फाइल	—	संख्या ४३ व ४४
खास रुक्का व दीवानी परवाना फाइल	—	*संख्या १०७*
परवाना फाइल	—	संख्या १०७

अर्जी फाइल नं० ५ के पत्र (२१ मई, १७८६) के अनुसार तूंगा के युद्ध के बाद जयपुर के महाराजा प्रतापसिंह और विजयसिंह के बीच यह समझौता हुआ कि वे सिंधिया के साथ पृथक् से कोई समझौता नहीं करेंगे परन्तु बाद में प्रतापसिंह ने विजयसिंह के विरोध के उपरान्त भी महादजी के साथ पृथक् रूप से संधि कर ली।

जमा-खर्च फाइल नं० ४४ मे साभर समझौता १७६१ के द्वारा निश्चित युद्ध की क्षतिपूर्ति, बकाया धनराशि और वार्षिक कर का विस्तृत लेखा जोखा है।

बस्ते

राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर मे रगबिरगे बस्तो मे नाना प्रकार के अभिलेख, बहियाँ, ख्यातें, रजिस्टर, पत्र आदि सकलित है। इन बस्तो की सख्या १०३ है परन्तु इस ग्रन्थ की उपयोगिता के लिए सख्या ६,१४,२०,२८,३४,४०,४३,५२, ६०,६५,८०,६६ और १०१ वाले बस्तो के अभिलेखो का अध्ययन किया गया है।

(ज) राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ

अजीत ग्रन्थ

यद्यपि इस ग्रन्थ मे इस विषय के सम्बन्ध मे कोई महत्त्वपूर्ण तथ्यो की उपलब्धि नहीं हो सकी फिर भी कुछ घटनाओ के सम्बन्ध मे इस ग्रन्थ का महत्त्व है। इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि 'पुस्तक प्रकाश,' उम्मेद भवन जोधपुर मे पायी गयी। इसमे १६६६ ई० तक मारवाड के शासको का इतिहास वर्णित है। इस ग्रन्थ के दोहे ६३० मे दुर्गादास की दक्षिण यात्रा और दोहे १४२५–१४२७ के अनुसार उसकी मराठा छत्रपति शम्भाजी से मुलाकात का वर्णन है।

विजयविलास

यह ग्रन्थ बारहठ किशनसिंह द्वारा राजस्थानी भाषा मे रचा गया। टॉड के अनुसार इसमे एक लाख दोहे थे। परन्तु अब तक मूल प्रति के १५२ पृष्ठ राजस्थान अभिलेखागार मे जोधपुर विभाग के बस्ता न० १४ ग्रन्थ न० २८ मे सुरक्षित पाये गये है। यह ग्रन्थ अभयसिंह से लेकर विजयसिंह के शासन के द्वितीय वर्ष (१७५४) तक की घटनाओ का उल्लेख करता है। आधा भाग तो अभयसिंह और बख्तसिंह के बारे मे ही है। उसमे मराठो से सम्बन्ध के बारे मे यदा कदा उल्लेख है। विजयसिंह और जयप्पा के बीच युद्ध का वर्णन पृ०स० ११४ से १५२ तक है। समकालीन ग्रन्थ होने के कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमे मराठों के विरुद्ध सघर्ष का राजपूत दृष्टिकोण पाया जाता है। अत फारसी मराठी स्रोतों के लिए यह पूरक साधन है।

राठौड दानेश्वर वशावली (ग्रन्थ न० १४ बस्ता २८)

इसके लेखक के बारे मे कुछ भी ज्ञात नही है। परन्तु यह समकालीन ग्रन्थ है, जिसकी रचना विजयसिंह के शासन के प्रारम्भिक काल मे हुई थी। यह १७५६ तक मारवाड के इतिहास का वर्णन करता है। इसमे ४६३ पृष्ठ और ६६५ दोहे है। इसमे स्थान स्थान पर तिथियाँ दी गयी है। अन्य साधनो से प्राप्त तिथियो की तुलना करने पर ये तिथियाँ सामान्यत सही पायी गयी हैं। यह ग्रन्थ १६६२–१७५६ तक मराठा राठौड सम्बन्धो के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य देता है। मराठो के विरुद्ध राजपूत

शासकों का १७३४ में हुरडा सम्मेलन का वर्णन पृ० २६६–२७० के नम्बर ३६-८४ तक के दोहों से प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के लेखक के अनुसार यह सम्मेलन उदयपुर के महाराणा जगतसिंह की अध्यक्षता में हुआ था न कि जयसिंह की। इस सम्मेलन में विघटनकारी प्रवृतियाँ इसके समाप्त होने के पहले ही प्रविष्ट कर गयी थी। पृ० ३६६ के दोहे नम्बर ४१३ के आधार पर रामसिंह-बखतसिंह मध्य में होल्कर की तटस्थता का मुख्य कारण यह था कि बख्तसिंह ने होल्कर को राजसिंह के मार्फत तटस्थ रहने के लिए दो लाख रुपये दिये थे।

(त) संस्कृत के हस्तलिखित पत्र और ग्रन्थ

अजितोदय (हस्तलिखित प्रतिलिपि, पुस्तक प्रकाश, जोधपुर)

उस ग्रन्थ का रचयिता भट्ट जगजीवन था, जो अजीतसिंह और अभयसिंह का समकालीन कवि था। इसमें मराठा-राठोड सम्बन्धों पर मूल्यवान तथ्य उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ में ३२ सर्ग और ३१२ श्लोक हैं। इसमें १६६४ से १७२४ ई० (५० वर्ष) तक का वर्णन है। मराठों से सम्बन्ध हेतु सर्ग ११ १३,२२ २३ और २७ महत्वपूर्ण है। सर्ग ११ में दुर्गादास व अकबर की दक्षिण-यात्रा, सभाजी द्वारा उनका स्वागत, कवि कलश की मित्रता, कवि के पुत्र के नेतृत्व में राठोड़ों और मराठों का अहमदाबाद की ओर प्रयाण और दुर्गादास के मारवाड लौटने का वर्णन है। सर्ग २७ में अजीतसिंह द्वारा मराठों की सहायता से फर्रुखसियर बादशाह को पदच्युत करने के तथ्य वर्णित है।

अभयोदय (हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि, पुस्तक प्रकाश उम्मेद भवन जोधपुर)

ग्रन्थ का रचयिता भट्ट जगजीवन था। यह ग्रन्थ अजितोदय की तरह विस्तृत है। परन्तु इस विषय के लिए अधिक उपयोगी नहीं पाया गया।

शम्भाजी द्वारा रामसिंह (जयपुर शासक) को संस्कृत में लिखे गये दो पत्र (राजस्थान अभिलेखागार बीकानेर–जयपुर विभाग)

यद्यपि पत्रों में कोई तिथि अंकित नहीं है, तथापि उनके विषय के आधार पर यह माना जा सकता है कि वे सन् १६८२ में लिखे गये थे। पत्रों में शम्भाजी द्वारा जयपुर–नरेश रामसिंह से दुर्गादास को धन और सेना के रूप में सहायता की प्रार्थना है। शम्भाजी ने यह उल्लेख भी किया कि वह उत्तर की ओर सेना भेज रहा है, जिसमें कछवाह सेना भी मिल जानी चाहिए।

(थ) ख्यात साहित्य

मारवाड के इतिहास के रूप में ख्यातों की अत्यन्त महत्ता है ये मानसिंह (१८४३) तक का इतिहास वर्णित करती हैं। समकालीन ग्रन्थ होने के कारण इनमें लिखे तथ्यों पर अविश्वास नहीं किया जा सकता। इनकी रचना समकालीन फारसी

व राजस्थानी ग्रन्थो, राजकीय पत्रों, साहित्य ग्रन्थो आदि के आधार पर की गयी थी। जिन ख्यातों का प्रयोग इस ग्रन्थ की रचना मे किया गया है, वे निम्नलिखित हैं:—

नेणसी री ख्यात (ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर द्वारा प्रकाशित)

मारवाड़ री ख्यात (अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर—हस्तलिखित)

दयालदास री ख्यात (उपर्युक्त)

मूंडियाड़ ख्यात— (बस्ता नं० २० व ४० जोधपुर विभाग, राजस्थान अभिलेखागार)

बाँकीदास री ख्यात—(ओरियण्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर प्रकाशन)

टाटोडी इलाका री ख्यात (बस्ता नं० ४०, जोधपुर विभाग, राजस्थान अभिलेखागार)

मेलोनी ख्यात—(उपर्युक्त)

बातां री ख्यात—(उपर्युक्त, बस्ता नं० १०१)

(द) अंग्रेजी अभिलेख (अप्रकाशित) (नेशनल अभिलेखागार, नई दिल्ली)

दिल्ली, अजमेर और जोधपुर स्थित ब्रिटिश सरकार के एजेण्ट, रेजिडेण्ट और राजनैतिक पदाधिकारियों ने समय-समय पर गवर्नर जनरल या उसके सचिव के पास मारवाड़ व राठौड़ो से सम्बन्धित घटनाओं के बारे मे पत्र लिखे हैं एवं उनके द्वारा प्रत्युत्तर, आदेश व निर्देश प्राप्त किये हैं। ये पत्र एव अभिलेख दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार मे मूल रूप से सुरक्षित रखे हुए हैं। इनका काल १७८५ से १८४३ तक का है। ये अभिलेख न सिर्फ समकालीन व्यक्तियो के द्वारा ही लिखे गये हैं बल्कि घटनाओं के स्थल पर लिखे जाने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन अभिलेखो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है—

१. फॉरेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स (एफ० सी०)
२. फॉरेन पालिटिकल कन्सलटेशन्स (एफ० पी०)
३ राजपूताना एजेन्सी ऑफिस फाइल्स (आर० ए० ओ०) और
४. प्रासीडिंग्स ऑफ दी बोर्ड ऑफ डाइरेक्टर्स (प्रासीडिंग्स)

२६ मई १८१७ को मेटकॉफ ने जान एडम्स को एक पत्र मे इस बात की सूचना दी कि मानसिंह ने स्वेच्छा से अपने पुत्र छत्रसिंह को गद्दी नहीं सौंपी बल्कि अखेराज के दल ने उसे ऐसा करने को बाध्य किया (फॉरेन पालिटिकल कन्सलटेशन्स १४ जून १८१७ न० १३)। लार्ड विलियम बैंटिक ने २ दिसम्बर १८३४ को मानसिंह को आगाह किया कि यदि वह सुप्रबन्ध के प्रति उदासीन रहा तो जोधपुर पर उसका अधिकार अल्पकालीन माना जाएगा। (राजपूताना एजेन्सी आफिस फाइल नं० ५, जोधपुर २-१८३४)

अजमेर और जोधपुर का इतिहास (हस्तलिखित राजस्थान अभिलेखागार)

इस ग्रन्थ के रचयिता गुलाम नादिर थे, जिन्होंने १८१७ में इसकी रचना की। यह अजमेर और जोधपुर का संक्षिप्त इतिहास है। अजमेर किले के भिन्न-भिन्न मराठा और राठौड़ सूबेदारों का इसमें उल्लेख है। दिसम्बर १७८७ में राठौड़ों के अधिकार में और फिर १७९०-१७९१ में पुनः मराठों के अधिकार में यह नगर किस प्रकार आया इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

(घ) अंग्रेजी अभिलेख (प्रकाशित)

'कलेण्डर फार कोरेसपोण्डेन्स' (१० भाग)
'ईस्ट इण्डिया मिलिटरी कलेण्डर' भाग ३ (१८२६)
पूना रेजीडेन्सी कोरेसपोण्डेन्स (१४ भाग) १९३७-१९५३
जेन्किन्स कृत 'रिपोर्ट ऑन दी टेरीटोरीज ऑफ नागपुर' (१८२७)
'सलेक्शन फ्रोम लेटर्स, डिस्पेचेज एण्ड अदर पेपर्स' (बाम्बे सचिवालय में सुरक्षित-मराठा-भाग) सम्पादक सर जी० डब्ल्यु० फोरेस्टर (१८८५ बम्बई)
'ट्रीटी एनगेजमेन्ट्स एण्ड सनदें' भाग ३, सम्पादक ऐटिंसिन (५ वां संस्करण, १९२९)
'वेलजली डिसपेचेज' (५ भाग) सम्पादक मार्टिन मोण्टेगोमरी (१८३६)

(न) प्रकाशित पुस्तकें

हिन्दी

विश्वेश्वर नाथ रेऊ : मारवाड़ का इतिहास (भाग २)
गौरीशंकर हीराचन्द ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास (भाग १-२)
जगदीशसिंह गहलोत : मारवाड़ का इतिहास
: राजपूताने का इतिहास (भाग ४)
रामकरण आसोपा : मारवाड़ का मूल इतिहास
श्यामलदास : वीर-विनोद (भाग ३)

राजस्थानी

बाँकीदास : ऐतिहासिक वार्ता ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर (१९६१)
करणीदास : सूरजप्रकाश (उपर्युक्त १९६२)
सूर्यमल मिश्रण : वंश भास्कर (१८४१ में लिखित)
वीरभाण : राजरूपक (नागरी प्रचारिणी सभा काशी, वि० सं० १९९८)

अंग्रेजी

ए० सी० बनर्जी : पेशवा माधवराव (१९४३) राजपूत स्टेट्स

एण्ड द ईस्ट इण्डिया कम्पनी (१९५१)

बी० एन० रेऊ — ग्लोरीज़ ऑफ मारवाड एण्ड ग्लोरियस राठौड (१९४३)

बी० डी० बसु — राइज ऑफ क्रिश्चियन पॉवर इन इण्डिया, भाग ४ व ५

बर्नियर — ट्रैवल्स इन मुगल इण्डिया (तृतीय सस्करण) सम्पादक आर्चीबाइल्ड ए. कास्टेबल (१९३४)

कैम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया — भाग ४ व ५ (१९२९)

दशरथ शर्मा — अर्ली चौहान डायनेस्टीज

डिगे — पेशवा बाजीराव एण्ड मराठा एक्सपैन्शन (१९४४)

इलीयट और डाउसन : द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स हिस्टोरियन्स (भाग ७ व ८, १८७७)

फ्रीडम स्ट्रगल इन हैदराबाद, — भाग १ (१८०० १८५७)

फोर्ब्स — रासमाला भाग २ (१८६६)

जोन मॉलकम — मेमोयर्स आफ सेन्ट्रल इण्डिया (भाग २, १८३२)

जी० एन० शर्मा — मेवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स (१९५१)

जी० एस० सरदेसाई . न्यू हिस्ट्री ऑफ द मराठाज (भाग ३, १९४८)

जे० ग्राण्ट डफ : हिस्ट्री ऑफ द मराठाज (भाग ३, १९१२)

हबीबुल्ला — फाउण्डेशन आफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया

हैमिल्टन वाल्टर : ज्योग्राफीकल, स्टेटीस्कल एण्ड हिस्टोरिकल डिस्क्रीप्शन आफ हिन्दुस्तान (भाग २, १८२०)

एच० जी० कीन — माधवराव सिंधिया (१८९१)

हर्बर्ट कॉम्पटन • पर्टीकुलर एकाउण्ट ऑफ द यूरोपियन मिलिटरी एडवेंचर्स ऑफ हिन्दुस्तान (१७८४-१८०३)

हेनरी टी० प्रिन्सेप : मेमोयर्स ऑफ अमीरखां (१८३२) हिस्ट्री ऑफ पोलिटिकल एण्ड मिलट्री ट्रान्जेक्शन्स (लार्ड हेस्टिग्ज के समय)(भाग २, १८२५)

हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ इण्डियन पीपल, भाग ५ व ६

एस० एन० सिन्हा - राइज आफ द पेशवाज (१९५४)

इरविन :	लेटर मुगल्स (भाग २ १९२२)
यदुनाथ सरकार	हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब भाग ५) फाल ऑफ मुगल एम्पायर (प्रथम तीन भाग १९४९-५२, चतुर्थ भाग १९५०)
	शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स (५ वा संस्करण)
	हाउस ऑफ शिवाजी
के० के० दत्ता	सर्वे ऑफ सोशल लाईफ एण्ड इकोनोमिक कण्डीशन्स इन इण्डिया इन एटीन्थ सेंच्युरी (१९६१)
किनकेड एण्ड पारसनीस	ए हिस्ट्री ऑफ द मराठा पीपुल (भाग ३, १९२२)
के० एस० लाल	हिस्ट्री ऑफ खिलजीज
मनुची	स्टोरिया द मोगोर (भाग ४, १९०७ ८)
एम० एस० मेहता	लार्ड हेस्टिंग्ज एण्ड द इण्डियन स्टेट्स (१९२५)
एन० आर० खडगावत	राजस्थान्स रोल इन द स्ट्रगल ऑफ १८५७ (१९५७)
ओर्मी	हिस्टोरिकल फ्रेग्मेण्ट्स ऑफ द मुगल एम्पायर (१७८२)
कानूनगो	शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स
रघुबीरसिंह	मालवा इन ट्रांजीशन (१९३६)
शारदा, एच० बी० :	अजमेर, पिस्टोरियल एण्ड हिस्टोरिकल
एस० पी० शर्मा	ए स्टडी ऑफ मराठा डिप्लोमेसी (१९५९)
एस० एन० सेन	इंग्लिश रिकार्ड्स ऑन शिवाजी (१९५१)
	फारेन बायोग्राफीज आफ शिवाजी
सतीशचन्द्र	पार्टीज एण्ड पालिटिक्स एट द मुगल कोर्ट १७०७-१७४० (१९५९)
टाड	एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान (३ भाग, क्रुक सम्पादित १९२०)
ट्रेवेनियर, जान बेपटिस्ट :	ट्रेवल्स इन इण्डिया (१८८९ वी० बाल द्वारा सम्पादित)
वी० एस० भार्गव :	मारवाड एण्ड द मुगल एम्परर्स
वोलर जे० टालबॉयज :	समेरी ऑफ द एफेयर्स ऑफ द मराठा स्टेट १६२७-१८५६ (१८७८)

विल्सन : मिल्स हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इण्डिया, भाग ७ से ९ तक (१८४८)

डब्लू० डब्लू वेब : द करेन्सी ऑफ हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना

(य) गजेटियर

इम्पीरियल गजेटियर : प्रोविंशियल सीरीज राजपूताना १९०८

गजेटियर ऑफ दी बाम्बे प्रेजीडेन्सी भाग १ व २ (१८७७)

राजपूताना गजेटियर, भाग ३ ए० : वेस्टर्न राजपूताना एण्ड बीकानेर एजेन्सी (१९०९)

सलेक्शन फ्रॉम कलकत्ता गजेटियर्स १७८४-१८२७ (भाग ५, १८६४)

गजेटियर्स ऑफ द टेरीटोरी अण्डर द गवर्नमेंट ऑफ ई० आई० कम्पनी एण्ड नेटिव स्टेट्स इन द काण्टीनेण्ट ऑफ इण्डिया (लेखक थार्नटन एडवर्ड) (१८५४)

एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ मारवाड़ १८८३, १८८४

(फ) पत्रिकाएं

इण्डियन हिस्टोरिकल रिकार्ड कमीशन प्रोसीडिंग्स (१९३८ से)

इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स (१९३८ से)

जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री

न्यू इण्डियन एण्टीक्वेरी (१९२९, १९३८)

वरदा (भाग ४, वर्ष ४)

डेमोक्रेटिक वूथ (फरवरी १९६१)

(ब) नक्शे

गुजरात व मारवाड़ के गाँवों व नगरों की स्थिति हेतु गजेटियर ऑफ बाम्बे प्रेसीडेन्सी,

राजपूताना गजेटियर, भाग ३ अ, एव सर्वे डिपार्टमेण्ट ऑफ इण्डिया के राजपूताना के नक्शे व अन्य नक्शों के आधार पर अध्ययन किया गया।

(भ) पंचांग

जे० एस० गहलोत : ऐतिहासिक-तिथि-पत्रक वि० सं० १७००-१९०० (हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर, १९६२)

●●●

परिशिष्ट 'क'

मारवाड़ का शासन प्रबन्ध १७२४-१८४३

(क) शासक

राठौड़ शासक को 'महाराजा'[१] और 'राजेश्वर'[२] शब्दों से सम्बोधित किया जाता था। उसकी राजकीय मुद्रा पर 'भानुतेजस्वरूपेण महीमध्ये' और 'महामाया श्री हिंगुल राजप्रसाद छत्रपति महाराजधिराज राजराजेश्वर महाराजा' वाक्यांश अंकित रहते थे, जिससे यह प्रतीत होता था कि उसकी उत्पत्ति अर्द्ध दैविक थी।[३] महाराजाओं का ध्वज 'पचरंगा' कहलाता था, जिसमें पीला, सफेद, हरा, भगवा और लाल रंग होते थे। ध्वज के मध्य 'बाज' पक्षी चिह्नित था। उसके परिवार की देवी 'चामुण्डा' थी तथा वह शक्ति, शैव और वैष्णव धर्म का उपासक था।

शासक सर्वोच्च शक्तिशाली होता था। उसी में व्यवस्थापिका (विधाननिर्मात्री), न्यायपालिका एवं कार्यकारिणी शक्तियाँ केन्द्रित थी। प्रशासन के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्तियाँ उसके आदेशों से ही होती थी। उसकी सद्इच्छा पर ही पदाधिकारी अपने पदों पर रह सकते थे।[४] वह सर्वोच्च सेनापति भी होता था। सभी प्रकार की कूटनीतिक नियुक्तियाँ उसके नाम से ही होती थी।[५] वह किसी से युद्ध कर सकता था, शान्ति संधि पर हस्ताक्षर कर सकता था। परन्तु फिर भी उसकी शक्तियाँ सीमित थीं। वह परम्पराओं, अलिखित रीति-रिवाजों और हिन्दु शास्त्रों का उल्लंघन नहीं कर सकता था।[६] मुगल सूबेदार के रूप में वह अत्यन्त कमजोर शासनाध्यक्ष बन चुका था।

(ख) सामन्ती कुलीनतन्त्र

मारवाड़ का शासक राठौड़ राजपूत वंश का होता था। यद्यपि जनसंख्या की दृष्टि से राठौड़ अल्पसंख्यक थे, तथापि शासन पर उनका एकाधिकार था।[७] राठौड़ परिवार का छोटे-से छोटा सदस्य अपने को पूर्वजों के नाम पर राज्य का उत्तराधिकारी मानता था।[८] अतः राज्य पर उसका अधिकार उतना ही सुरक्षित था, जितना शासक का। सिद्धान्ततः राज्य पूरे 'राठौड़ परिवार' का समझा जाता था, जो राजनैतिक दृष्टि से जागीरदार' वर्ग से सम्बोधित होता था। शासक तो समानों में प्रथम' ही माना जाता था।

जागीरदारों को राज्य के लिए सैनिक सेवा और शासक के लिए व्यक्तिगत सेवा देनी पड़ती थी। उसके बदले में उन्हें जागीरें दी जाती थीं।[९] महाराजा

अजीतसिंह के समय ४६ जागीरदार थे जिनकी वार्षिक आय ७,००० से ४०,००० रुपये तक थी।[10] इनकी मुख्य जागीरें निम्न थी . आहोर, आसनिमावास आऊवा, बगडी, बलुन्दा, भाखरी, बूडसा, चामण्ड, चण्डावल, घाणेराव, हरसोर, जावलिया खेंजडला, खेरवा, खीवसर, कुचामण, मारोठ, मीठडी, नीमाज, पोकरण, रायपुर, रास, रीया और रोहट। १८३६ में इन जागीरो की वार्षिक आय पन्द्रह हजार से एक लाख रुपयो तक हो गयी थी।[11] राज्य की भूमि के दो तिहाई क्षेत्र में जागीरदारों की भूमि थी एवं उसकी कुल आय करीब चालीस लाख रुपये थी।[12]

राज्य इन जागीरदारो से कई प्रकार के कर लेता था। प्रमुख कर 'रेख' थी, जो एक सैनिक कर होता था और आमदनी का आठवा भाग होता था। एक हजार रुपये की 'रेख' के साथ जागीरदार को एक घोडा भी देना पडता था। जब किसी भी जागीरदार की मृत्यु हो जाती तो राज्य उसकी जागीर जब्त कर लेता था। फिर उसके उत्तराधिकारी के नाम पुनः दे दी जाती थी इसके लिए उत्तराधिकारी को 'हुक्मनामा'—कर देना पडता था। इस कर की राशि उसकी जागीर की वार्षिक आय की तीन चौथाई होती थी। इसके अलावा जागीरदारो से प्रशासन खर्च के लिए 'जगीरायत', और 'मुत्सद्दी-खर्च' नाम के कर भी लिये जाते थे।[13]

सामंत वर्ग का राज्य की प्रशासनिक, राजनैतिक और सैनिक गतिविधियो पर बड़ा प्रभाव था। मराठो से युद्ध करने के पूर्व विजयसिंह को इनकी स्वीकृति लेना आवश्यक हो गया था।[14] नये शासक की मान्यता इन्ही के द्वारा दी जाती थी।[15] कई ठाकुरो को विशेष शक्तियां प्राप्त थी। 'प्रधान' के पद पर आऊवा या पोकरण के ठाकुर ही नियुक्त किये जाते थे।[16] वे नयी जागीरो के पट्टे पर प्रतिहस्ताक्षर करने का अधिकार रखते थे।[17] बगडी ठाकुर अपने दाहिने अगूठे से शासक के राजतिलक पर रक्त-तिलक लगाते थे।[18] सीमा सुरक्षा का उत्तरदायित्व परिहार जागीरदारों को ही दिया जाता था।[19]

समय-समय पर शासक इस वर्ग को प्रसन्न रखने हेतु 'ताजीम', 'खास-पसाव', 'सीसल' की पदवियो से विभूषित करता था[20] और पैरो मे सोने के कडे पहनने की सुविधा देता था।[21] कुछ जागीरदारो को 'दरबार' मे उपस्थित होने के लिए किले मे प्रवेश करने पर 'पालकी' के प्रयोग की इजाजत दी जाती थी और कुछ को प्रवेश करने पर 'नगाडे' बजाने का अधिकार दिया जाता था।[22] शासक के परिवार की सातवी पीढी तक के किसी जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर राज्य मे बारह दिन का शोक मनाया जाता था।[23]

शासक के व्यक्तित्व पर ही जागीरदारो के राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित थे। शक्तिशाली शासको ने जागीरदारो को अपने नियन्त्रण में रखने मे महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त की थी।[24] परन्तु कमजोर शासक के लिए एक समस्या बन जाते थे। विजयसिंह ने उन्हे नियन्त्रण मे रखने के लिए[25] प्रत्यक्ष सैनिक भर्ती कर

स्थायी सेना का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया।[२६] लगातार कर देने पर इनकी जागीरें जब्त करनी शुरू की। शासकों ने जागीरों में 'सासन' और 'डोली' प्रदान करने का एकाधिकार अपने पास ही रखा। समय-समय पर जागीरदारों के हिसाब की जाँच करायी जाती थी। इसके लिए राज्य इनसे 'दाणा' कर लेता था।[२७] कभी-कभी राठौड़ ठाकुरों के प्रभाव को शून्य करने हेतु शासक बाह्य क्षेत्र से आने वाले ठाकुरों को जागीरें प्रदान करता और प्रशासकीय क्षेत्र में उन्हें ऊँचे पद देता था। टॉड ऐसे ठाकुरों को विदेशी ठाकुर कहता है, जिनमें प्रमुख थे, ईंदा के परिहार, खेजड़ला के भाटी, भीलमभोर के भाटी और सोलाई के राणावत (गुहिलोत)।[२८]

(ग) केन्द्रीय प्रशासन

शासक राज्याध्यक्ष होता था। वह कई सलाहकारों की सहायता से प्रशासन चलाता था। ये सलाहकार उसके द्वारा नियुक्त किये जाते थे तथा उसकी स्वेच्छा पर ही पदासीन रह सकते थे। प्रशासन का मुखिया 'हजूरी दीवान' या 'मुसाहिब' कहलाता था। जब कभी शासक लम्बे समय तक राज्य के बाहर रहता या युद्ध के लिए जाता तो आन्तरिक प्रशासन का उत्तरदायित्व 'हजूरी दीवान' को सौंपा जाता था। उस समय वह 'देश दीवान' के नाम से सम्बोधित होता था।[२९]

दीवान के कई कर्त्तव्य होते थे। वह नागरिक प्रशासन का प्रधान होता था। वह परगनों के हाकिमों के कार्य का निरीक्षण करता, उन पर नियन्त्रण रखना, और समय-समय पर निर्देशन भी देता था। वह 'श्री हजूर दफ्तर' मुखिया भी था। प्रधानतः वह राजस्व एवं वित्तीय अधिकारी था। उसकी सहायता के लिए दो नायब दीवान होते थे। एक का कार्य 'दिवान-कार्यालय' की देखरेख करना था और दूसरे को कोष का कार्य सौंपा जाता था। वह कार्यालय क़िले की फतहपोल पर स्थित था।[३०]

नियुक्ति के समय दीवान को 'दीवानगी दुपट्टे' से विभूषित किया जाता था, जिसका रंग हल्का लाल (गुलाबी) या पीला होता था। उसे कार्य की शपथ लेनी पड़ती थी। इस समारोह में दीवान शासक पर पाँच रुपये 'निछरावल' करता था। तब शासक उसे दीवान के नाम की 'मोहर' देता था, जो उसके काल तक रखी जाती थी। नये दीवान के लिए नयी मोहर बनायी जाती थी।[३१]

दीवान के अलावा राज्य का अन्य मुख्याधिकारी 'प्रधान' होता था। उसकी नियुक्ति शासक करता था परन्तु सामान्यतः पोकरण और आउवा के ठाकुर ही इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। इसका कोई कार्यालय नहीं था। इस पद की महत्ता इसमें थी कि एक तो वह राठौड़ सामन्तों का सिरमौर होता, दूसरा यह कि जागीर के पट्टों पर महाराजा के हस्ताक्षर के साथ-साथ उसके हस्ताक्षर भी होते थे।[३२]

राज्य की स्थायी सेना 'बख्शी' के अधीन रखी जाती थी। सामान्यतः दीवान और बख्शी के पद पैतृक थे। कर्नल सदरलैण्ड के अनुसार राज्य में दो या तीन

मन्त्रियो के पद होते थे। बारी बारी से दीवान या बख्शी पद पर नियुक्त मन्त्री एक दूसरे पद पर नियुक्त किए जाते थे।[33] बख्शी के कर्त्तव्य वे ही होते थे, जो मुगल प्रशासन मे बख्शी के थे। उसका मुख्य कार्य सेना मे वेतन वितरण करना था। वह नये सैनिकों की भर्ती भी करता था तथा युद्ध क्षेत्र में सेना का सचालन भी करता था।

दीवान और बख्शी के अलावा 'वकील' भी एक महत्वपूर्ण प्रशासकीय व्यक्ति होता था। वह अन्य राज्यो मे राज्य का प्रतिनिधित्व करता था। इस काल के महत्वपूर्ण वकील थे अमरसिंह भण्डारी, जो मुगल दरबार मे अभयसिंह का प्रतिनिधि था,[34] व्यास जसकरण जो मानसिंह के प्रतिनिधि के रूप में ग्वालियर मे १८१३-१८१८ तक रहा,[35] और आसोपा विशनराम, जो दिल्ली के ब्रिटिश रेजीडेण्ट के साथ रहता था और जिसने मानसिंह के नाम पर फरवरी १८१८ को आंग्ल-राठोड सन्धि पर हस्ताक्षर किये थे।[36]

राज्य का एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी 'किलेदार' था।[37] उस पर किले की सुरक्षा का उत्तरदायित्व था। शासक अपने विश्वास पात्र को ही इस पद पर नियुक्त करता था। कुछ महत्वपूर्ण किलेदार थे, खीची सुन्दरदास, जो रामसिंह और बखतसिंह के समय जोधपुर का किलेदार था,[38] किलेदार नगजी, जो प्रारम्भ मे मानसिंह का अत्यन्त विश्वास पात्र व्यक्ति था, परन्तु १८१६ मे विद्रोही बन गया अत उसे मृत्यु दण्ड दिया।[39]

अन्य पदाधिकारियो मे 'ड्योढीदार'[40] जो कि महाराजा के महलों का पहरेदार होता था, 'पुरोहित'[41] जो कि राज्य के धार्मिक समारोह की देखभाल करता था, तथा कभी कभी उसे अत्यन्त गुप्त कार्यों के लिए अन्य राज्यों मे भी भेजा जाता था, कम महत्त्व के व्यक्ति नहीं होते थे। 'धाभाई' और 'खास-पासवान' व्यक्तिगत परिचारक होते थे।[42] 'खानसामा' गृहकार्य को देखता था।[43] 'कोतवाल' न सिर्फ नगराध्यक्ष होता था बल्कि पुलिस पदाधिकारी भी था। उसके पास नगर के कोट दरवाजों की चाबियां रखी जाती थी तथा वह 'कोतवाली चबूतरा' न्यायालय की अध्यक्षता भी करता था।[44]

महाराजा बखतसिंह ने 'पियाद-बख्शी' का नया पद स्थापित किया था। यह पदाधिकारी अहलकारों, मुत्सद्दियों कारबारियों और नवो-तो-सन्दो को वेतन वितरण करता था।[45] अन्य कार्यालयों मे मुख्य थे। 'दफ्तर दस्तरी'[46] जहां महत्वपूर्ण खरीते, बहियां पत्र, अभिलेख आदि रखे जाते थे, 'दफ्तर मीर मुशी'[47] जहाँ फारसी में लिखे हुए पत्रादि रखे जाते थे और 'जवाहर खाना' जो कि किले में स्थित था और बहुमूल्य हीरे, जवाहरात गहनों आदि का भण्डार गृह था। शासकों ने 'मिरदा'[48] पद की स्थापना की, जो कि डाक आदि लाने ले जाने का कार्य करता था।

इसके अलावा शासक के घरेलू कार्यों की देख-रेख करने के लिए कई विभाग थे, जैसे, 'ठोलियों का कोठार,' यह हजूर दीवान के अधीन था और इसमें शासक की तलवारें, ढालें, बिस्तर, व्यक्तिगत पत्र आदि रखे जाते थे,[५०] अन्न का कोठार, जहाँ भोजन-सामग्री संग्रहीत की जाती थी; इसका अध्यक्ष 'दीवानी मुसरिफ' होता था।[५१] 'आबदारखाना' (जल विभाग); 'रसोवडा' (रसोईघर), 'बाग का कोठार' (बाग विभाग), 'सेज खाना' (वस्त्रादि विभाग) 'फर्राशखाना' (फर्नीचर व कैम्प आदि की व्यवस्था का विभाग), और 'जनानी ड्योढी' (अन्तःपुर विभाग)।[५२]

(घ) जिला प्रशासन

प्रशासकीय सुविधा के लिए मारवाड़ को परगनों में विभाजित किया गया। अभयसिंह और बखतसिंह के समय परगनों की संख्या अठारह थी।[५३] जब १७३० ई० में गोडवाड़ मारवाड़ का एक भाग बन गया तो परगनों की सीमा पुनः निर्धारित की गयी, और उनकी संख्या तेईस कर दी गयी, बाली, बिलाड़ा, डीडवाना, जालौर, जैतारण, जसवन्तपुरा, जसवन्तगढ़ जोधपुर, मारोठ, मेड़ता, नागौर, नावाँ, पचपदरा, पाली, परबतसर, फलोदी, साचोर, सकड़ा, शेरगढ़, शिव, सिवाना और सोजत।[५४]

परगने (जिला) का मुख्याधिकारी 'हाकिम' कहलाता था, जिसकी नियुक्ति दीवान की सलाह पर शासक करता था। हाकिम परगने के लिए न सिर्फ राजस्वधिकारी ही था, बल्कि दण्डनायक और न्यायाधीश भी था। वह वार्षिक प्रतिवेदन शासक के दरबार में भेजता था। उसके न्याय-निर्णयों की अपीलें हो सकती थी, वह निश्चित बजट से अधिक खर्च नहीं कर सकता था, परन्तु परगने में शांति व कानून व्यवस्था बनाये रखने के उसके अधिकार पर्याप्त थे।[५५]

हाकिम जागीरदारों से प्राप्त होने वाले सभी कर एकत्र करता था।[५६] उसका कार्यालय परगना कचहरी कहलाता था।[५७] इस कचेडी (कचहरी) में चुगी, उत्पादन-कर एवं भूमि-कर जमा कराया जाता था।[५८] हाकिमों को 'अमील' एवं नवी-सी-सन्दा की नियुक्ति करने के अधिकार प्राप्त थे।[५९] परन्तु इनका स्थानान्तर वह नहीं कर सकता था। यह अधिकार 'दीवान' का होता था।[६०] जब्त की हुई जागीर पर राज्य की ओर से अधिकार करने का उत्तरदायित्व भी हाकिम का होता था।[६१]

परगनों में अन्य पदाधिकारी थे कानूनगों,[६२] जो राजस्व रिकार्डों की देख-रेख करता था; 'कन्वाडी'[६३] जो कृषि की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता था, सहणा (शहना)[६४] और चौवडो।[६५] परगनों के मुख्य नगरों में 'कोतवाल' की नियुक्तियाँ होती थी। वह प्रधानतः पुलिस पदाधिकारी था परन्तु कभी-कभी हाकिम के निर्देशनों पर 'न्यायिक जांच' का कार्य भी करता था। वह व्यापारियों तथा महाजनों से कर वसूली करता, जिसे 'कोतवाली पेदाइश' कहा जाता था।

उसके पास नगर के प्रत्येक घर की सूची होती थी तथा घरो के पट्टे देने का कार्य उसको सौंपा जाता था।[६६]

परगने को तहसील (तालुका) मे विभाजित किया जाता था। इस इकाई का मुख्याधिकारी 'थानेदार' होता था। वह हाकिम के प्रति उत्तरदायी होता था। तहसील गावो मे विभाजित थी। प्रत्येक गाँव मे एक पचायत होती थी तथा राज्य 'चौधरी' गाँव का मुखिया होता था।[६७]

(ड) सैनिक प्रशासन

इस काल के प्रारम्भिक वर्षों मे शासक सैनिक दृष्टि से जागीरदारो पर पूर्णतया निर्भर था। युद्ध-काल मे जागीरदारों द्वारा दी गयी सैनिक सख्या ही राज्य की सैनिक शक्ति होती थी। सिद्धान्तत प्रत्येक जागीरदार को शासक की सेवा में एक निश्चित सख्या मे सैनिक देने पडते थे, जिनका खर्च वह स्वय वहन करता था। मारवाड के शासक मुगलो के सूबेदार थे। अत इनकी पारिवारिक सेना का खर्च मुगलकोष से भी लिया जाता था। जसवन्तसिंह और अजीतसिंह की सेना मे भाटी, मडेचा, पत्तोत, जैमलोत, ऊदौत, मेड़तिया, जोधा, चांपावत और कूमावत खांप के राजपूत जागीरदारो की सेना मुख्य होती थी। सेना मे सवार, पैदल, रथ ऊँट और तोपखाना होता था। जब कभी सेना रण के लिए प्रस्थान करती तो उसमें चारण, कायस्थ, बनिया, कामदार, ब्राह्मण, खास-पासवान, ऊँट सवार, और वेतन वितरण पदाधिकारी भी होते थे।[६८]

विजयसिंह के समय से राज्य मे स्थायी सेना का सगठन किया जाने लगा। इस सेना मे रहेले, अफगान, सिधी और पूरबियों की भर्ती की जाती थी। इन्हें नकद वेतन दिया जाता था। ये बन्दूकधारी होते थे तथा तोपखाने का सचालन भी करते थे। आवश्यकता पडने पर राज्य सन्यासियों, विशेषत नागा और दादूपन्थी साधुओं की ब्रिगेड भी तैयार करता था।[६९]

मानसिंह के अन्तिम वर्षों मे राज्य की सैनिक शक्ति का नियत्रण अग्रेजों के अधिकार मे चला गया था। उन्होंने १८३५ मे 'जोधपुर लीजन' की स्थापना ऐरनपुरा में की। इस सेना में २५४ अश्वारोही, ७३६ पैदल, २२२ भील और ३१ तोपची थे। कुल १२४६ सैनिक होते थे। इसका वार्षिक खर्च एक लाख पन्द्रह हजार रुपया था, जो जोधपुर-कोष से दिया जाता था।[७०]

(च) न्याय और कानून

शासक न्याय का आधार और स्रोत होता था। वह प्रदेश का अन्तिम न्यायालय भी था तथा सिर्फ वही कानूनी तौर पर मृत्यु दण्ड दे सकता था। राजधानी में स्थित मुख्य न्यायालय को 'कारखाना अदालत' कहते थे। इसमे चार न्यायाधीश होते थे। महत्वपूर्ण मुकदमों का निर्णय करने के लिए शासक विशेष न्यायालय की स्थापना करता था, जिसमे राय के अलावा दीवान, बख्शी और चार न्यायाधीश होते थे।[७१]

परगना-स्तर पर 'कारकून' और 'इजलास नवीस' की सहायता से हाकिम न्याय प्रशासन करता था। इन अदालतों से अपीलें 'कारखाना अदालत' मे भेजी जाती थीं। साधु अपराधियो के लिए जो अदालतें होती थी, उनकी अध्यक्षता पुरोहित करता था, जिसके लिए चार अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति भी की जाती थी। 'नाथो' के मुकदमे महामन्दिर के आयसजी महाराज के दरबार मे भेजे जाते थे।[७२]

कुछ जागीरदारो को न्याय के अधिकार प्राप्त थे। परन्तु उनके द्वारा दिये गये निर्णयो की अपील मुख्य 'कारखाना अदालत' मे की जा सकती थी।[७३] गाँवो मे न्याय करने के अधिकार पचायतों के पास थे। इसकी अपीलें परगना हाकिम के न्यायालय मे की जा सकती थी।[७४] साधारणत गाँवो मे मध्यस्थता द्वारा आपसी झगडो को निपटा दिया जाता था। [७५] सेना मे अनुशासन भग करने पर, अपराधियो को विशेष अदालत मे उपस्थित कराने का उत्तरदायित्व सैनिक टुकडी के कप्तान का होता था, अन्यथा वह दण्ड का भागी होता था।[७६]

समकालीन ग्रथों, अभिलेखों, बहियों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्राणिक दड प्रचलित नही था।[७७] दड साधारण थे। चोरी करने पर सिर्फ अर्थ-दण्ड की व्यवस्था थी।[७८] भयकर अपराधियो को तहखाने मे रखा जाता था। राजनैतिक अपराधी जोधपुर किले के भीतर 'सलीम कोट' मे नजरबद किये जाते थे।[७९] शासक के जन्म-दिवस, राजतिलक एव पुत्र उत्पन्न होने पर कैदियो को मुक्त करने की व्यवस्था प्रचलित थी।

(छ) राजस्व प्रबन्ध और कर-प्रणाली

राजस्व विभाग दीवान के अधीन होता था। वह हवाला' और 'खालसा' भूमि से राजस्व एकत्र करने की व्यवस्था का निर्देशन देता, निरीक्षण करता तथा नियन्त्रण रखता था। 'हवलदार' [८०] या 'गुमाश्ता' [८१] जिनकी नियुक्ति दीवान नहीं करता था, भूमिकर एकत्र करते थे। कभी-कभी यह कर 'इजारा' प्रणाली द्वारा भी एकत्र किया जाता था।[८२] राज्य की आय के अन्य साधन थे—परगना व तहसील आय, जागीरदारो पर कर, चु गी और उत्पादन शुल्क।[८३]

लोगों का मुख्य धधा कृषि था। भूमि को 'बापी,' 'मागली,' 'हासिली', 'सासन' 'डोली,' 'पसैता,' 'जागीरी,' और 'भूम' मे वर्गीकृत किया जाता था। किसी निश्चित प्रणाली से सभी स्थानो पर भूमिकर एकत्र करने की व्यवस्था नही थी। सामान्यतः 'लाटा', 'कूंत', "काकर-कूंत," 'मुक्ता,' बीघोडी और घूघरी प्रणालियाँ प्रचलित थी।[८४] उपज का एक तिहाई भाग राज्य का भाग माना जाता था। मारवाड मे प्रति तीसरे वर्ष अकाल पडने से कृषि उत्पादन पर बडा दुष्प्रभाव पडता था।[८५]

कृषि-कर के अलावा राज्य की आय का मुख्य साधन चु गी-कर (कस्टम) था। यह सामान्यत 'इजारा'—प्रणाली द्वारा एकत्र किया जाता था। नीलामी के द्वारा सबसे अधिक बोली बोलने वाले को चु गी वसूल करने का अधिकार दिया जाता

था।[८६] जहाँ-जहाँ पर राज्य चुंगी वसूल करने के लिए अपने कर्मचारियों की नियुक्ति भी करता था। ये कर्मचारी चुंगी दरोगा कहलाते थे। जो परगना हाकिम के नियन्त्रण में रखे जाते थे। इस प्रकार एकत्र की हुई धनराशि परगना-कोष में जमा करायी जाती थी।[८७] जिन वस्तुओं के आयात पर चुंगी लगती थी, उनमें मुख्यतः घी-तेल, ऊँट, घोड़े, चमड़ा, सींग, हाथी दाँत, कपड़ा, रेशम, चंदन, रंग, अफीम, मिर्च-मसाला अखरोट, सूखा मेवा, पोटाश, नारियल, कम्बल, ताँबा, लोहा।[८८]

नाना प्रकार के अन्य कर भी प्रचलित थे, 'बराड' घासमारी' 'घरबार', सवार-खर्च 'दाणा' और 'फौज बल'।[८९] कर्नल सदरलैण्ड के अनुसार शादियों के समारोहों पर भी कर लगाया जाता था।[९०]

साँभर, डीडवाना, पचपदरा और नावाँ की नमक की झीलों से राज्य की आय होती थी। 'ठोलिया के कोठार' के प्रलेखों में 'जमा-खर्च फाइल' के दिनांक २० नवम्बर १८०० के प्रलेख के अनुसार,[९१] १७९९ ई० में नमक की झीलों से राज्य की आय थी। पचपदारा से एक लाख रुपया, डीडवाना से पचास हजार रुपया, नावाँ से सत्तर हजार रुपया और साँभर से उनसठ हजार सात सौ पचास रुपया। १८४७ में कर्नल सदरलैण्ड अपने प्रतिवेदन में साँभर झील से वार्षिक आय तीन लाख रुपया बताता है।[९२]

राज्य की आय बढ़ाने के लिए अन्य साधन भी आवश्यकतानुसार काम में लाये जाते थे। कोतवाल को आदेश दिये जाते थे कि नगरों में महाजनों से धन वसूल करे। टॉरेन्स ने ६ अगस्त १८२८ को एक पत्र कोलब्रुक को प्रेषित कर सूचित किया कि जोधपुर शहर के सराफों ने हड़ताल कर दी। उनकी दूकानें बन्द पायी गयीं क्योंकि कोतवाल उनसे जबरदस्ती बीस हजार रुपयों की वसूली करते समय उचित आचरण नहीं करता था।[९३] १८४२ में मानसिंह ने 'दफतरी' पद छः हजार रुपयों में बेच दिया था।[९४] कभी-कभी शासक 'बिलों' का भुगतान करने के लिए अपने पदाधिकारियों, महाजनों तथा ओसवालों के नाम 'चिट्ठी' कर देता था।[९५] एक तरफ से ओसवाल महाजन राज्य के बैंकर थे।[९६] अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में ये महाजन भारत के पूर्वी भाग में जाकर बस गये और 'जगत सेठ' कहलाने लगे।[९७]

कुछ समकालीन प्रलेखों से राज्य की वार्षिक आय का लेखा-जोखा प्राप्त किया जा सकता है। सर चार्ल्स मेटकॉफ के अनुसार १८०५ ई० में राज्य की आय पचास लाख रुपया वार्षिक थी।[९८] संवत् १८८४ के कार्तिक बदी ५ (२५ अक्टूबर, १८२७ जमा-खर्च फाइल न० ४४) की ओली में अंकित जुलाई से अक्टूबर, १८२७ माह तक की राज्य की आय चार लाख, चौहत्तर हजार दो सौ निन्नानवे रुपये छः आना थी।[९९] कर्नल सदरलैण्ड ने १० जून १८३९ के अपने प्रतिवेदन में राज्य की आय बीस लाख रुपये वार्षिक बतलायी है।[१००] विल्सन के अनुसार यह आय सैंतीस लाख रुपये थी।[१०१]

सन्दर्भ

१. प्रथम बार जसवतसिंह 'महाराजा' पद से सम्बोधित किया गया था। (मुम्रासिर-उल-उमरा भाग ३, पृ० ६००)
२ मुहम्मद शाह रंगीले ने अभयसिंह को 'राज राजेश्वर' की पदवी दी। (अभयोदय सर्ग ४, दोहा ११,१२)
३ अजीतसिंह का राय खीमसी को पत्र, ज्येष्ठ वदी ३, वि०सं० १७७०। २१ अप्रेल १७१४ (खरीता, बस्ता नं० ६६ जोध०)
४ सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १६३६, एफ०पी० २४ जुलाई १८३६ नं० ३८
५. हुकमहो नं० ३ पृ० ४२--४३
६. मानसिंह का गवर्नर जनरल को पत्र, जो उसे १६ अक्टूबर १८२६ को प्राप्त हुआ, एफ०पी० ७ नवम्बर १८२६ नं० ५
७. १८१८-१८१६ ई० के वर्ष मे, मारवाड की कुल जनसख्या में ५/८ जाट, २/८ राठौड राजपूत और १/८ अन्य जातियाँ थीं (टॉड २, पृ० ११०५)
८ मारवाड के सामन्तो का कर्नल टॉड को पत्र, श्रावण सुदी २, वि०सं० १८७८। ३१ जुलाई १८२१ (टॉड १, पृ० २२८--२३०)
६. गाँवों की उटन्तरी की फाइल नं० २२, ठोलियाँ--जोध० (बस्ता नं० ५६, ६०,६५ और १०१ मे जागीर प्रदान के प्रलेख भरे पडे हैं)
१० मुडियाड ख्यात (अजीतसिंह) पृ० १३--१४, बस्ता नं० ४० जोध०
११ सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३६, एफ०पी० २४ जुलाई १८३६ नं० ३६ परिशिष्ट
१२ उपर्युक्त--परिशिष्ट नं० ५, खालसा भूमि से आय सिर्फ २० लाख रु० की थी।
१३. पत्र दिनांक, ११ जिल्हाद, ३ रा शासन--वर्ष। १ जनवरी १७१०, बकाया रिपोर्ट नं० १७२४, जय०; पत्र, दिनांक पौष बदी ७, वि०सं० १८६६। २५ दिसम्बर १८१२, अमल की चिट्ठी की फाइल नं० १०५, ठोलियाँ जोध०, मेडतिया ख्यात (२) ग्रन्थ नं० १, पृ० १२४८, ग्रन्थ नं० १४, पृ० १३५५--५६, बस्ता नं० १०१; मलोनी ख्यात, ग्रन्थ नं० ३६ पृ० १२, बस्ता नं० ४०, जोध०, सोना फाइल, ठोलिया जोध०)
१४ विजय विलास, पृ० १२६

१५. विजयसिंह का महादजी को पत्र, पौप सुदी १४, वि०स० १८४८ । ८ जनवरी १७९१ (ग्र०ब०न० ४, पृ० ४८)

१६-१७. एलवीस या मेकनॉटन को पत्र, २१ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २६ दिसम्बर १८३८, न० २७

१८ राठौड दानेश्वर वशावली पृ० ३३८ दो० २४९–२५०

१९. परिहार (ई दा) ख्यात पृ० २६--२७, बस्ता न० १०१ जोध०

२० भाटी (भीलम खीर) ख्यात ग्रन्थ न० २३ पृ० ९–१०, बस्ता न० १०१; बाला ख्यात, ग्रन्थ नं० ४, पृ० १७७- १७८ बस्ता न० १०१ । महाराजा द्वारा हाथ उठाकर अभिनन्दन को 'कुरब' कहा जाता था, 'खास पसाव' (खास पासवान) व्यक्तिगत परिचारक को कहा जाता था, दरबार मे महाराजा के दायी ओर बायीं ओर बैठने की राजाज्ञा को 'मिसल' कहा जाता था ।

२१. हकीकत बही न० ४, पृ० ४४९, खास रुक्का फाइल न० १०७, ढोलिया-जोध०

२२ भाटी (भीलमखीर) ख्यात, ग्रन्थ न० २३, पृ० ९--१० बस्ता न० १०१, बाला ख्यात, ग्रन्थ न० ४, पृ० १७७-१७९, बस्ता न० १०१ जोध०

२३ हुषबही न० २, पृ० १७८

२४ हुषबही न० ३, पृ० ४२–४३, न० ४, पृ० २२८ २२९

२५ राठौड कनीराम बदनसिंह रतनसिंगोत (नीमाज) को पट्टा, पौष सुदी ५, वि०स० १७९८ । ३१ दिसम्बर १७४१, मेडतिया ख्यात २, ग्रन्थ १४ पृ० १३५५-१३५६ बस्ता न० १०१ जोध०)

२६ अजीतसिंह का सिकदार दयालदास को पत्र, चैत्र बदी ७, वि०स० १७६६ । १० मार्च १७१० (खरीता, बस्ता न० ६६ जोध०); सदरलेण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून, १८३९, एफ०पी० २४ जुलाई १८३९ न० ३८

२७ राठौड सुरताणसिंह को पट्टा, भाद्रपद बदी ९, वि०स० १८०९ । २२ अगस्त १७५२, मेडतिया ख्यात (२) ग्रन्थ न० १४, पृ० १३५६, बस्ता न० १०१, जोध० ।

२८ सदरलेण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३९, एफ०पी० २४ जुलाई १८३९ न० ३८, टॉड (२), पृ० १२०, परिहार (ई दा) ख्यात, ग्रन्थ १५ पृ० २६-२७, बस्ता न० १०१, जोध०

२९. सिंघवी सिवराज का विजयसिंह को पत्र, ज्येष्ठ सुदी १०, वि०स० १८३२ । २७ मई १७७६ (अर्जी फाइल न० ५, ढोलियॉं—जोध०), मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० २२–२३, बस्ता नं० ४० जोध० एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ मारवाड पृ० २७९

३०. हथबही न० १, पृ० १, जमा खर्च फाइल न० ४३ ढोलिया--जोध०, ऑक्टरलोनी का जे० एडम्स को पत्र, ७ जनवरी १८१६, एफ०पी० ३० जनवरी १८१६, न० ५८
३१. हकीकत, बही न० १०, पृ० १०७, जमा-खर्च फाइल न० ४३, ढोलियां जोध०, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १२७, बस्ता न० ४०—जोध० ' एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ मारवाड पृ० २८२–२८४
३२ एलवीस का मेकनॉटन को पत्र, २१ अक्टूबर १८३८, एफ०पी० २६ दिसम्बर १८३८ न० १७, मानसिंह की दृष्टि म 'प्रधान' का पद चयनित था, किसी जागीरदार वश का अधिकार नही माना जा सकता था (सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, १० जून १८३९, एफ०पी० २४, जुलाई १८३९ न० ३८)
३३ सदरलैण्ड का वेडॉक को पत्र, २० अक्टूबर १८३९, एफ०पी० २४ फरवरी १८४० न० ३४ पेरा १६
३४. अभयसिंह का भण्डारी अमरसिंह को पत्र, कार्तिक बदी २, वि० स० १७८७। १६ अक्टूबर १७३० जोध०
३५ पत्र, दिनाक चैत्र बदी ५, वि० स० १८७५। ३१ मार्च १८१८, सतोखिताब फाइल न. ३०, ढोलियां–जोध०
३६ मारवाड री ख्यात (४) पृ ८१-८४, ऐचीसन ट्रीटीज, एनगेजमेण्ट्स एण्ड सनद्स (३) पृ० १२८-१२९
३७-३८ मुडियाड ख्यात (बखतसिंह) पृ० १०, बस्ता न० २० जोध०
३९ जो० येर्धान २, हकीकत बही न० ६, पृ० ४४
४० मानसिंह का गोमाजी सिंधिया को पत्र, आषाढ बदी १३ वि० स० १८६८। ६ जुलाई १८१२ (अ० ब० न० ५, पृ० ५४ जोध०), हकीकत बही न० १०, पृ० ११७
४१. हथबही न० ४, पृ० २२५-२२६
४२ उपर्युक्त, मुडियाड ख्यात (अजीतसिंह) पृ० १६-१७, बस्ता न० ४० जोध०
४३ उपर्युक्त, मुडियाड ख्यात (बखतसिंह) पृ०, १०बस्ता न० २०, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० २२-२३, बस्ता न० ४० जोध०
४४ मुडियाड ख्यात (बखतसिंह) पृ० १०, बस्ता न० २०, विजय विलास पृ० १६ दोहा ४०, राठोड दानेश्वर वशावली पृ० ३२०, दो० १५०-१६१
४५ हथबही न० ४ पृ० २२-२२६, जमा-खर्च फाइल न० ४३, ढोलियो-जोध०, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोट आफ मारवाड, पृ० ४७७
४६ लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, ६ फरवरी १८४३ पृ० २९२ आर० ए० ओ० १४ ■ जोधपुर (६) १८४३
४७ एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड, पृ० ७७२
४८ जमा खर्च फाइल न० ४३, ढोलियां जोध०, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड, पृ० ७७२

४९ मुडियाड ख्यात (अजीतसिंह) पृ १७-१८, बस्ता न ४० जोध०, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड पृ० ६०८-६०९

५० पत्र, दिनाक ज्येष्ठ बदी ३, वि० स० १८७६। १ मई १८२०, घोडा और सामान की फाइल न० ३७, ढोलियाँ-जोध०

५१ पत्र, दिनाक ज्येष्ठ बदी १३, वि० स० १९०२। जनवरी १८४३, उपर्युक्त फाइल

५२ जे० आई० एच० पत्रिका भाग (३४) पार्ट (१) पृ० ७२ मे डा० जी० एन० शर्मा का लेख 'सोसाइटी एण्ड कल्चर आफ राजस्थान एज रीवील्ड, फ्राम द इसाब बहीज ऑफ दफ्तरी रिकार्ड ऑफ जोधपुर'

५३ मनसब ग्रन्थ (हस्तलिखित) बस्ता न० ६६ जोध०

५४ ५५ हथबही न० ४ पृ० ५५-५७, एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड पृ० ६-७

५६ पत्र, दिनाक पौष बदी ७, वि०स० १८६९। २५ दिसम्बर १८१२, अमल की चिट्ठी की फाइल न० १०५, ढोलियाँ जोध०

५७ इजारा फाइल न० ११० ढोलियाँ—जोध०

५८ हथबही न० ४, पृ० २२५-२२६

५९-६० पी० आर० सी० (८) पत्र, न० १३२, पृ० १७७ मेहता विजयमल को मेहता सरदारमल, नागौर को पत्र, इन्तजामी सीगा फाइल न० ५८, ढोलियाँ जोध०

६१ गोडवाड के हाकिम के नाम पत्र, श्रावण बदी १०, गाँवो की उठन्तरी फाइल न० २२, ढोलियाँ जोध०

६२. विजयसिंह का महादजी को पत्र, कार्तिक बदी ८, वि० स० १८४८। ३ नवम्बर १७९१ (अ० ब० न० ४, पृ० ४७ ४८)

६३ ६४ टॉड (२) पृ० ११११

६५ हथबही न० ३ पृ० ४२, राठोड दानेश्वर वशावली, पृ० ४८, दो० ६६५; एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट ऑफ मारवाड पृ० ७०९ ७१०

६६ हथबही न० ४, पृ० ४२ टाटोडी ख्यात पृ० ६ बस्ता न० ४० जोध०, टॉड (२) पृ० १११२-१११४, उक्त पत्रिका' (१९६१) मे डॉ० जी० एन० शर्मा का लेख 'हवाला एण्ड ड्योढी बहीज आफ मारवाड'

६७ मुडियाड ख्यात (जसवन्तसिंह) पृ० १७६, बस्ता न० २०, जोध०, नैनसी ख्यात (१) पृ० ११४

६८. हथबही न० ३, पृ० ४२ ४३, न० ४, पृ० २२८ २२९, विजय-विलास पृ० ११६ दोहा ३६

६९. ग्यानमल का निर्भयराम को पत्र, फाल्गुन सुदी ४, वि०स० १८४२। ४ मार्च १७८६ (अ० ब० न० ४, पृ० २७४)

७० विल्सन (८) पृ० ३१४, थार्टन (२) पृ० ३३७, ऐचीसन (३) पृ० १३५

७१　हयवही न० ४, पृ० २२६
७२　उपर्युक्त पृ० ५७ ५८, २२६, सायर की फाइल न० ७८, ढोलियां जोध०
७३　बाकुन्दा के महाजनो का महाराजा को पत्र, आषाढ बदी ३, अर्जी फाइल न० ३, ढोलिया जोध०, सूरतराम का ठाकुर रतनसिंह को पत्र, बैशाख बदी ८, वि०स० १८८० । २१ अप्रेल १८२४, खतो किताब फाइल न० २८, ढोलियां-जोध०
७४-७५ हयवही न० ४, पृ० ४२
७६　परदेशी सेना के रसालदार का मुचलका, मार्गशीर्ष सुदी १०, वि०स० १८८७ । २५ नवम्बर १८३० (हय वही न० ४ जोध०)
७७　कर्नल सदरलैंड की रिपोर्ट, ७, अगस्त १८४७ न० ८४५ पृ० ३०
७८　मेहता विजयमल का भावा कचेडी के कारकूनो के नाम पत्र, (अर्जी फाइल न० ५ ढोलियां जोध०)
७९　एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड, पृ० ७१६
८०　पत्र, दिनाक पौष बदी ६, हजारा फाइल न० ११०, ढोलियां-जोध०
८१.　पत्र, दिनाक २२, रबी-उल आखीर, द्वितीय शासन वर्ष । २७ अप्रेल १७३४ जय०
८२　बखतसिंह का अमरसिंह को पत्र, पौष सुदी ५, वि०स० १७६२ । ८ दिसम्बर १७३५ तारीता, बस्ता न० ६६ जोध०
८३　हयवही न० १, पृ० ६–७, जमा-खर्च फाइल न० ४३, ढोलियां जोध०
८४　हयवही न० ४ पृ० ६५ ६७, विजयसिंह का महादजी को पत्र, भाद्रपद बदी १४, वि० स० १८३५ । २१ अगस्त १७७८ (प्र० ब० न० ४, पृ० ३७), मेडतिया ख्यात (२) पृ० १३५५ ५६,बस्ता न० १०१ जोध०,एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट आफ मारवाड पृ० ३५३-३५५
राजस्थानी शब्दो (बापी, मांगली, हासिली, सासन, ढोली, पुर्सता, जागीरी, भ्रम, लाटा, कूंत, काकर कूंत, मुक्ता, बिगोडी, घूघरी की व्याख्या के लिये देखिए परिशिष्ट "ख"
८५　पी०आर०सी० (१४) १३६, मुडियाड ख्यात (मानसिंह) पृ० १०५ १०८ बस्ता न० ४० जोध०, सबसे भयकर अकाल १८१० १८१२ मे पडा ।
८६ ८७ जमा-खर्च फाइल न० ४३, ढोलियां जोध०, हयवही न० १, पृ० ६ ७, सायर फाइल न० ७६, ढोलिया जोध०, खास रुक्का व परवाना बही न० १ पृ ७६
८८　टॉड (२) पृ० १०७, चार्टन (२), पृ० ३२४
८९　बराड 'घासमारी" घरवाब 'सवार खच' (फौजबल) की व्याख्या के लिए, देखिए परिशिष्ट 'ख'
९०　सदरलैंण्ड रिपोर्ट ७, अगस्त १८४७, न० ८४५ पृ० ३०

९१. जमा-खर्च फाइल नं० ४३, ढोलिया जोध०

९२ सदरलैण्ड रिपोर्ट, ७ अगस्त १८४७, न०८४५ पृ० ११

९३ टॉरेन्स का कोलब्रुक को पत्र, ६ अगस्त १८२८, एफ०पी० ५ सितम्बर १८१८ न० २०

९४. लडलो का सदरलैण्ड को पत्र, ६ फरवरी १८४३, आर०ए०ओ० १४, अ० जोध० (६) १८४३, पृ० २६२

९५. विजयसिंह का नन्दवाना के बोहरो का पत्र, पौष बदी ३०, वि०स० १८२३। ३१ दिसम्बर १७६६ (अ०ब०न० ४, पृ० २८६,) जमा-खर्च फाइल न० ४४, ढोलिया-जोध०)

९६. मेकनॉटन का एलबीस को पत्र, ६ अक्टूबर १८३८, एफ० पी० २३ जनवरी १८३६ न० २७; जमा खर्च फाइल न० ४४, ढोलिया-जोध०

९७ के०के० दत्ता पृ० १७२ (डा० दत्ता के अनुसार हीरानन्द साहु का परिवार मारवाड से बगाल व बिहार की ओर गया। वे वहीं व्यापार करने लगे। बाद मे वे 'जगत सेठ' कहलाने लगे।)

९८ हेमिल्टन (२) पृ० ६०

९९. जमा-खर्च फाइल न० ४४, ढोलियां जोध०

१००. एफ०पी० २४ जुलाई १८३६ नं० ३८, परिशिष्ट नं० ५७

१०१. विल्सन (८) पृ० ४४७

परिशिष्ट 'ख'

ग्रन्थ मे प्रयोग किए गए राजस्थानी शब्द

उठाणी (गावो की)	—	जागीरदारो को दिये गये गावो को राज्य द्वारा पुन अधिकार मे लेने की प्रणाली ।
काकर कूंन्त	—	खडी फसल पर कर प्राप्त करने की प्रणाली ।
कामदार	—	प्रतिनिधि
कुरब	—	अतिथि का स्वागत करने हेतु शासक द्वारा हाथ खडा करना ।
कूंत	—	अन्दाज से, तौले बिना, उपज म से राजकीय भाग लेने की प्रणाली ।
खरीता	—	शासको का अन्य शासको को राजकीय पत्र ।
खासा	—	व्यक्ति परिचारक
खासा सवारी	—	शासक के निजी यातायात के साधन ।
खास पसाव	—	खास पासवान (व्यक्ति परिचारक)
खेडा	—	क्षेत्रीय सेना की टुकडी
ख्यात	—	शासको की उपलब्धियो एव प्रमुख घटनाओं के विवरण ग्रन्थ ।
गुमाश्ता	—	दीवान या साहूकार का प्रतिनिधि
घूघरी	—	कर के रूप मे निश्चित अनाज लेने की प्रणाली
घरव ड	—	गृह कर
घसियारा	—	घास का व्यापार करने वाला समूह
घाट	—	देसूरी और चारभुजा नगरों के बीच का पहाडी भाग
घास दाणा	—	मराठों के घोडों को खेतो से दूर रखने का कर
घोडी बराड	—	घास दाणा
जागीरी	—	राज्य द्वारा जागीरदार की भूमि को जब्त करने पर जागीरदार के निर्वाह के लिए छोडी हुई भूमि ।
जुहार	—	प्रणाम करने की विशिष्ट शालीन विधि
थरदार	—	बहुमूल्य जवाहरात
थान	—	नो हाथ लम्बा कपडा

दरबार खर्च — राज्य दरबार की व्यवस्था हेतु कर
दाणा — जागीरदारों के हिसाब की जाच के लिए राज्य-शुल्क
धणी — मालिक
धरणा — बैठक-हड़ताल
धाभाई — शासक की धाया का पुत्र
नगारची — ढोल नगाड़े बजाने वाले
नवी तो-सन्दा — लेखा-लिपिक
निछरावल — शासक को भेंट देने की विशेष प्रक्रिया
टोलियाँ — निवाड़ की खाट
डोली — जागीरदार द्वारा ब्राह्मण को दी गयी कर-मुक्त भूमि।
पचरगा — जोधपुर राज्य का ध्वज
पाघ — साफा (५ फीट लम्बा, १ फीट चौड़ा)
पुच्छोत्रा — वस्तुओ की निकासी पर पाच प्रतिशत कर
पुर्सता — जागीरदारो के कर्मचारियों को दी गयी कर-मुक्त भूमि
पोतदार — कोस लिपिक
पोतिया — साफा (५ गज लम्बा, २ १/२ फीट चौड़ा)
प्रधान — मुख्य सामन्त, जिसे भूमि के पट्टो पर हस्ताक्षर करने का अधिकार प्राप्त था।
फौज खर्च — सेना के खर्च के लिए कर
फौज-बल — राज्य की सीमा-सुरक्षा हेतु सीमान्त गांवो पर कर
बराड — व्यवसाय कर
बाब — कर
बापी — पिता द्वारा पुत्र को दी गयी भूमि।
बीघोडी — भूमि की नपाई करने के बाद उपज पर प्रति बीघा कर, नकद या अनाज के रूप मे, लेने की प्रणाली
बोला — बोलवा, सुरक्षा कर
भगवा — गेरुवा रंग
भरणा — मिश्रित वस्तुएँ जैसे जवाहरात, पशु, कपडे आदि
भूम — राज्य सेवा के बदले मे दी गयी भूमि
भोमियो — सामन्त
मागली — ब्राह्मणों को दी गयी पट्टे की भूमि
मिसल — शासक के दांयी-बायी ओर बैठने की स्थिति
मुक्ता — प्रति बीघा उपज का नकद कर
मुतसद्दीखर्च — प्रशासन के खर्च के लिए जागीरदारों पर विशेष कर

रुक्का	—	छोटा पत्र
रेख	—	जागीरी आय पर आठ प्रतिशत कर सैनिक खर्च हेतु।
साटा	—	उपज को तौल कर खेत पर ही राज्य का हिस्सा लेने की प्रणाली
सरदार	—	सामन्त
सरपेच	—	छोटी पाग, जो साफे पर बाँधी जाती है।
सरोपा	—	सिर से पाव तक के वस्त्र
सवार खर्च	—	अश्वारोही सेना के खर्च के लिए कर
सासन	—	जागीरदारी के क्षेत्र में शासन द्वारा दान दी हुई कर-मुक्त भूमि
सीख	—	विदा
शाहूकार	—	महाजन, व्यापारी
हासिली	—	खालसा भूमि
हुकमनामा	—	जागीरदारों पर उत्तराधिकार-कर

●●●